MAPH-108 (N)

समकालीन भारतीय दर्शन

खण्ड–01 विवेकानन्द

इकाई–1 भक्ति योग
इकाई–2 ज्ञान योग
इकाई–3 राज योग

खण्ड–2 श्री अरविंद

इकाई–4 विकासवाद
इकाई–5 अतिमानस

खण्ड–3 जे0 कृष्णमूर्ति

इकाई–6 जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण
इकाई–7 बुद्धि की सीमाएं

खण्ड–4 कृष्णचंद भट्टाचार्य

इकाई–8 विषयिता का सिद्धान्त
इकाई–9 स्वतंत्रता का क्रमिक अनुभूति

खण्ड–5 मानवेन्द्र नाथ राय

इकाई–10 दर्शन का कार्य
इकाई–11 नव मानववाद

खण्ड–6 पं. दीनदयाल उपाध्याय

इकाई–12 एकात्ममानववाद
इकाई–13 सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

खण्ड–7 बी.आर. अम्बेडकर

इकाई–14 सामाजिक दर्शन
इकाई–15 धार्मिक राजनैतिक चिन्तन

खण्ड–8 महात्मा गांधी

इकाई–16 सत्य अहिंसा
इकाई–17 सत्याग्रह
इकाई–18 सर्वोदय

.....00...00.....

MAPH-108 (N)
समकालीन भारतीय दर्शन

खण्ड–01 विवेकानन्द

इकाई 1 - भक्ति योग

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1. 2 भक्ति के लक्षण

1. 3 ईश्वर का दार्शनिक विवेचन

1.4 भक्ति योग का ध्येय - आत्मअनुभूति

1.5 गुरु की आवश्यकता

1.6 गुरु और शिष्य के लक्षण

1.7 अवतार

1.8 मंत्र

1.9 प्रतीक और प्रतिमा की उपासना

1.10 ईष्ठ निष्ठा

1.11 भक्ति के साधन

1. 12 पराभक्ति - त्याग

1.13 भक्त का वैराग्य प्रेमजन्य होता है

1.14 भक्ति की स्वाभाविकता और केंद्रीय रहस्य

1.15 भक्ति की अभिव्यक्ति के रूप

1.16 विश्व प्रेम और उससे आत्म समर्पण का उदय

1.17 सच्चे भक्त के लिए पराविद्या और पराभक्ति एक है

1.18 प्रेम का त्रिकोण

1.19 प्रेम के दिव्य आदर्श की मानवीय अभिव्यक्ति

1.20 सारांश

1.21 उपयोगी पुस्तकें

1.22 बोध प्रश्न

----------0000----------

1.0 प्रस्तावना

भक्ति मार्ग शुद्ध प्रेम का मार्ग है; जिसमें जिससे प्रेम है वह कोई सीमित वस्तु नहीं बल्कि स्वयं परमेश्वर है। विवेकानंद का कहना है की भक्ति मार्ग मात्र भक्ति से ईश्वर प्राप्ति का मार्ग है यदि प्रेम को हम इतना व्यापक तथा सघन बना सकें कि सब कुछ उसमें समाविष्ट हो जाए, सब के लिए शुद्ध प्रेम जाग जाए तो यही ईश्वर-भक्ति है ।

सामान्य पूजा, अर्चना आदि भक्ति मार्ग का सरलतम स्तर है । इस स्तर पर मूर्ति पूजा , ईश्वरीय प्रतीक के रूप में प्रतिमाओं का महत्व है । इसके बाद के स्तर में पूजा का रूप सघन तथा अधिक व्यापक हो जाता है । इस स्तर में ईश्वर प्रार्थना , ईश्वर का नाम लेना इईश्वरीय का कीर्तन ईश्वर संबंधी श्लोक का भावना पूर्ण उच्चारण आदि जीवन के अंश बन जाते हैं विवेकानंद का मानना है कि भक्त जब इस स्तर पर पहुंच जाता है तब उसके लिए ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता उसकी सारी भावनात्मक शक्ति ईश्वरी अनुभूति से परिपूर्ण हो जाती है अंतिम स्तर में भक्ति तथा भगवान का अंतर भी समाप्त हो जाता है भक्त ईश्वर में लीन हो जाता है यह एक विशिष्ट आंतरिक अनुभूति है ईश्वर दर्शन है जहां भक्त ईश्वर में लीन आत्मा हो जाता है भक्ति मार्ग का चरम लक्ष्य यही है यह ईश्वर प्राप्ति इस अर्थ में भी है क्योंकि यह अनिवार्य एक तत्व की भावनात्मक अनुभूति है

1.1 उद्देश्य

भक्ति योग में स्वामी जी ने बताया कि किस तरह भक्ति योग के माध्यम से सर्वोच्च सत्य को प्राप्त किया जा सकता है यह मार्ग है हृदय का प्रेम और भावना का यह मार्ग उन लोगों के लिए है जिन्हें शुष्क तर्क नहीं पसंद और जो भावनाओं को महत्व देते हैं यह हमारे प्रेमियों का मार्ग है यह एक ऐसा मार्ग है जो हृदय के माध्यम से हमें इस अवस्था के दर्शन करता है जिसके दर्शन एक दार्शनिक बुद्धि द्वारा योगी आत्मा अनुसंधान द्वारा और कमी तीव्र कम द्वारा करता है। भक्ति योग से आशय अपने इष्ट देवता में अनुराग रखकर आंतरिक विकास करने से है भजन कीर्तन व सत्संग करना इत्यादि से इसकी प्राप्ति हो सकती है

1. 2 भक्ति के लक्षण

निश्चल रूप से ईश्वर अनुदसंधान की ही भक्ति योग है। प्रेम ही इसका आदि मध्य और अवसान है भगवान के प्रति परम प्रेम ही भक्त है इस प्रेम के द्वारा कोई काम में सांसारिक वस्तु की प्राप्ति नहीं हो सकती भक्ति कर्म ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठ धर्म है क्योंकि इन तीनों में साध्य विशेष ही इनका लक्ष्य है किंतु भक्ति स्वयं साध्य एवं साधन रूप है भक्ति की एक

बड़ी विशेषता यह है कि वह हमारे परम लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति के निमित्त अत्यंत सहज और स्वाभाविक मार्ग है लोग कहते हैं आमुख व्यक्ति गुरु भक्त है अमुक व्यक्ति राजभक्त है यह उन्हीं के लिए कहा जाता है जो गुरु या राजा के आदेशन वर्ती हैं तथा जो लोग उनके आदेशनिवर्तन को ही लक्ष्य करके कार्य करते हैं इसी प्रकार लोग कहते हैं की पतिव्रता स्त्री प्रवासी पति का ध्यान करती है तो यहां भी एक रूप संग्रह और अभी चिन्ह ध्यान ही लक्षित किया गया है यही भक्ति है भगवान ने स्वयं कहा है जो मुझ में निरंतर आसक्त है और प्रेम से मेरी उपासना करता है मैं उसकी बुद्धि और भावनाओं को वैसे संचालित करता हूं कि वह मुझे का लेता है इसलिए कहते हैं कि जिनको यह अनुभव आत्मक स्मृति प्रत्यक्ष में अति प्रिय लगते हैं परमात्मा उसी का वर्णन करता है उसी को वह परम पुरुष प्राप्त होता है भक्त शब्द द्वारा यही निरंतर स्मरण लक्षित किया गया है पतंजलि के ईश्वर प्राणी धान में प्राणी धान उसे व्यक्ति को कहते हैं जिसमें फल अपेक्षा ना हो तथा सर्व कम उसे परम गुरु को समर्पित हो और भगवान व्यास ने इसकी व्याख्या की है कि प्राणी धान उसे व्यक्ति विशेष को कहते हैं जिसके द्वारा योगी उसे परम पुरुष की कृपा को प्राप्त करता है और अपनी सारी वासनाओं से मुक्त होता है शांडिल्य के माता अनुसार ईश्वर में परम अनुवर्ती ही भक्ति है भक्त प्रहलाद ने कहा है की जैसी तीव्र आसक्ति अभिभिकीय पुरुषों की इंद्री विषयों में होती है इस प्रकार की तीव्र आसक्ति(प्रीति) मेरी ईश्वर में हो कि उसका स्मरण करते समय कहीं वह प्रीति मेरे हृदय से चली ना जाए। यह आसक्ति किसके प्रति उसी परम प्रभु ईश्वर के प्रति इसके समर्थन में एक प्राचीन आचार्य को उदित करते हुए अपने श्री भाष्य में रामानुज कहते हैं ब्रह्म से लेकर एक त्रिनपर्यंत संसार के समस्त प्राणी कम जनित जन्म मृत्यु के वश में हैं अतिरिक्त अविद्या युक्त हैं और परिवर्तनशील होने के कारण वे इस योग्य नहीं की ढेर विषय के रूप में सड़क के ध्यान में सहायक हो शांडिल्य के अनुरक्ति शब्द की व्याख्या करते हुए भविष्य काल कहते हैं कि उसका अर्थ है अनु यानी पक्ष और रक्त यानी आसक्ति अर्थात वह आवश्यक थी जो भगवान के स्वरूप और उसकी महिमा के ज्ञान के पश्चात आती है अन्यथा स्त्री पुरुष आदि किसी भी व्यक्ति के प्रति अंध आसक्ति को ही हम भक्त कहने लगें । अतः हम स्पष्ट देखते हैं कि आध्यात्मिक अनुभूति के निमित्त किए जाने वाले ऐसे मानसिक प्रयास या क्रिया ही भक्ति है जिसका प्रारंभ साधारण पूजा पाठ से होता है और अंत ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ एवं अनन्य प्रेम में।

1. 3 ईश्वर का दार्शनिक विवेचन

ईश्वर कौन है जिससे विश्व का जन्म स्थिति और प्ले होता है वही ईश्वर है वह परम सत्य परम आनंद शुद्ध नित्य मुक्त सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ परम चेतन और गुरुओं का भी गुरु है और सर्वोपरि है वह ईश्वर प्रेम स्वरूप है यह सारी परिभाषाएं निश्चय ही शगुन ईश्वर की हैं तो क्या ईश्वर दो हैं एक निर्गुण निर्विकार स्वरूप जिसे ज्ञानी नीति नीति करके प्राप्त करता है और दूसरा भक्ति का यह प्रेम रूप भगवान नहीं वह सच्चिदानंद भगवान ही यह निर्गुण ब्रह्म है वह सगुण और निर्गुण दोनों है भक्ति का उपवास से शगुन ईश्वर ब्रह्म से भिन्न अथवा पृथक नहीं है सब कुछ वही एक मेवाड़ द्वितीय भ्रम है ब्रह्मा का यह निर्गुण निरपेक्ष स्वरूप अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण प्रेमी एवं उपासना के योग्य नहीं इसलिए भक्त ब्रह्म के सापेक्ष भाव अर्थात परम नियंता ईश्वर को ही उपवास के रूप में ग्रहण करता है अतएव भक्ति का प्रयोग केवल सगुण ब्रह्म के प्रति हो सकता है देहाभिमानी पुरुष बड़े कष्ट से अव्यक्त गति प्राप्त कर सकता है संसार के सर्वोच्च मनोविज्ञान विद भगवान कपिल ने हजारों वर्ष पहले प्रमाणित किया कि हमारा अंतर अथवा बाय सब प्रकार का विषय ज्ञान या धरना के लिए मानवीय ज्ञान एक उपादान हैअपने शरीर से लेकर ईश्वर तक विचार करने पर मालूम होगा कि हमारे अनुरोध सब वास्तु ज्ञान में एक और वस्तु का सम्मिश्रण है वह वस्तु चाहे जो भी हो वास्तव में जहां तक संभव है मनुष्य यही सत्य समझ भी सकता है आते हो जो लोग कहते हैं की मानविभाव रूप ईश्वर सत्य है मिथ्या प्रहलाद करते हैं पाश्चात्य विज्ञान वाद और सर्वस्थिवाद में भी यही झगड़ा है वास्तव में सत्य शब्द के अर्थ पर ही सब झंझट है सत्य शब्द द्वारा जो भाव

प्रकट होता है ईश्वर भाव उत्सव में व्याप्त है जैसे जगत की अन्य अन्य वस्तु सत्य है वैसे ही ईश्वर भी सत्य है और जिस अर्थ में सत्य शब्द ऊपर प्रयुक्त है उसके अतिरिक्त उसका और कुछ अर्थ नहीं यही हमारी ईश्वर संबंधी वार्षिक धारणा है

1.4 भक्ति योग का ध्येय - आत्माअनुभूति

ईश्वर की कृपा से भक्त एक ऐसी अवस्था में पहुंच जाता है जहां पंडित प्रदर्शन बुद्धि बहुत पीछे छूट जाती है वह तर्क करके विश्वास नहीं करता वरुण वह प्राय प्रत्यक्ष देखा है वह और युक्ति तर्क नहीं करता वर्णन प्रत्यक्ष अनुभव करता है यही नहीं बल्कि ऐसे भी भक्त हैं जिन्होंने यह घोषणा की है कि वह तो मुक्ति से भी श्रेष्ठ है और क्या यह हमारे जीवन के सर्वोच्च उपयोगिता नहीं है फिर प्रत्येक मां की विशिष्ट आकांक्षाओं के अनुसार उपयोगिता का रूप भी बदलता रहता है पर जिनके लिए आत्म उन्नति के साधन एक जीवन के क्षणिक सुख एवं भोगों से अधिक महत्वपूर्ण है जिनकी दृष्टि में इंद्रियों की तुष्टि केवल एक न समझा बच्चे के खिलवाड़ के समान है उनके लिए भगवान और भागवत प्रेम ही मानव जीवन का सर्वोच्च एवं एकमात्र प्रयोजन है भक्ति दो प्रकार की होती है अपर या गौरी भक्ति और पर गाड़ी का अर्थ है साधन भक्ति अर्थात जिसमें हम भक्ति को एक साधन के रूप में लेते हैं और पर इसी की परिपक्व को अवस्था है जो लोग जड़वाड़ी हैं उनके अहिक एवं पारलौकिक जीवन का अध्याय केवल भोग है वही उनकी दृष्टि में मानव जीवन का सर्वस्व है वही उनका इस्तपूरथ हैअज्ञान और मतदांता के इस विचित्र मिश्रण में रंगे हुए यह लोग जितने सीक्रेट अपने असली रंग में आ जाएं और क्योंकि असल में हुए हैं उसी के योग्य संसार का उतना ही मंगल है धर्म अनुष्ठान और आध्यात्मिक अनुभूति का एक छोटा कण भी तनोट होती बकवासों और आंधी भावुकता से बढ़कर है हमें कहीं एक एक भी तो ऐसा आध्यात्मिक दिग्गज दिखा दो जो आज्ञा और मतदान देता की ऊसर भूमि से उपजा हो यदि यह न कर सको तो को बंद कर लो अपना मुंह खोल दो अपने हृदय के कपाट जिससे सत्य की शुभ उज्जवल करने भीतर प्रवेश कर सकें और जाकर बालकों के सदस्य भारत के उन ऋषि मुनियों के चरणों में बैठो जिनमें प्रत्येक शब्द के पीछे प्रत्यक्ष अनुभूति का बाल है

1.5 गुरु की आवश्यकता

जीवात्मा का पूर्णतया प्राप्त कर लेना बिल्कुल निश्चित है पुस्तकों का अध्ययन हमारे आध्यात्मिक विकास के लिए पर्याप्त नहीं है यही कारण है कि यद्यपि लगभग हम सब आध्यात्मिक विषयों पर बड़ी पंडित पूर्ण बातें करते हैं पर जब उन बातों को कार्य रूप में प्रेषित करने का यथार्थ आध्यात्मिक जीवन बिताने का अवसर आता है तो हम अपने को सर्वथा योग्य पाए हैं जीवात्मा की शक्ति को जागृत करने के लिए किसी दूसरी आत्मा से ही शक्ति का संचार होना चाहिए जिस व्यक्ति की आत्मा से दूसरी आत्मा में शक्ति का संचार होता है वह गुरु कहलाता है और जिसकी आत्मा में सत्य संचारित होती है उसे शिष्य कहते हैं सत्य संचारक गुरु के संबंध में कई वैगन है बहुत से ऐसे हैं जो स्वयं आज्ञा आसन होते हुए भी अहंकार से अपने को सर्वज्ञ समझते हैं यही नहीं यह लोग औरों को भी अपने कंधों पर लड़ने का दावा करते हैं आज्ञा से अच्छा अधिक अत्यंत निरुद्ध होने पर भी अपने को प्रकांड पंडित समझने वाले अंधे को राह बताने वाले अंधे के समान प्रत्येक पद पर फिसलने वाले ऐसे लोग चारों ओर घूमते हैं संसार ऐसे आदमियों से भरा पड़ा है सभी गुरु बनना चाहते हैं सभी भिखारी लक्ष्य लक्ष्य दान देना चाहते हैं जैसे यह भिखारी हास्यास्पद बन जाते हैं वैसे ही ऐसे गुरु लोग भी हैं

1.6 गुरु और शिष्य के लक्षण

सूर्य को प्रकाश में लाने के लिए मसाला की आवश्यकता नहीं होती जब सूर्य उदय होता है तो हम अपने आप जान जाते हैं कि सूरज उग गया इसी प्रकार जब हमारी सहायता के लिए गुरु का आगमन होता है तो आत्मा अपने आप जान लेती है कि उसे पर अब सत्य सूर्य की किरणें पड़ने लगी हैं सत्य स्वयं ही प्रमाण है उसे प्रमाणित करने के लिए किसी दूसरे

साक्षी की आवश्यकता नहीं वह सब प्रकाश है शिष्य के लिए यह आवश्यक है कि उसमें पवित्रता सच्ची ज्ञान पिपासा हो अध्याय व्यवसाय हो धार्मिक होने के लिए तन मन और वचन की शुद्धता नितांत आवश्यक है जब तक हमारे हृदय में धर्म के लिए सच्ची व्याकुलता ना उत्पन्न हो जाए तब तक विजय श्री हमारे हाथ न लग पाएगी यह कोई एक दो दिन की बात नहीं कुछ वर्ष या कुछ जन्म की बात नहीं इसके लिए संभव है हमें सैकड़ो जन्म तक इसी प्रकार संग्राम करना पड़े हो सकता है किसी को सिद्ध थोड़े समय में ही प्राप्त हो जाए पर उसके लिएहमें अनंत काल तक भी तैयार रहना चाहिए जोशी से इस प्रकार अध्याय व्यवसाय के साथ साधना में प्रति होता है उसे सीधी अवश्य प्राप्त होती है स्वामी जी के अनुसार शिक्षा देने में गुरु का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान होता है बिना गुरु के विद्यार्थी का सही मार्गदर्शन संभव नहीं गुरु में तीन बातें अवश्य होनी चाहिए पहले तो वह विषय का मर्मज्ञ ज्ञानी हो उसे उसके संबंध में पूरी जानकारी हो तथा शिष्य के मन में उठने वाले शंका का पूर्ण समाधान करने में वह समर्थ हो इतना ही नहीं गुरु कोशिश की आत्मा में प्रवेश कर उसमें ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न करना चाहिए गुरु की विधाता शिष्य के लिए वरदान बनती है वह चरित्रवान होना चाहिए

1.7 अवतार

श्री कृष्ण ने भागवत में कहा आचार्य मैं विजानियत अर्थात मुझे आचार्य समझो साधारण गुरु से भी ऊंची श्रेणी के गुरु होते हैं ईश्वर के अवतार यह तो स्पर्श द्वारा यही नहीं केवल इच्छा मात्र द्वारा दूसरे में भागवत भाव संचारित कर सकते हैं उनकी इच्छा मात्र से नीचे आती नीचे दुराचारी भी एक क्षण में साधु स्वरूप हो जाता है यह सारे गुरुओं के भी गुरु होते हैं यह मनुष्य में ईश्वर की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति रूप हैं इस मानव रूप धारी ईश्वर के अतिरिक्त हम और किसी उपाय से भगवान के दर्शन नहीं कर सकते ईश्वर मनुष्य की दुर्बलताओं को समझता है और मानवता के कल्याण के लिए मानव देव धारण करता है श्री कृष्ण ने अवतार के संबंध में गीता में कहा है जब जब धर्म की गिलानी होती है और अधर्म बढ़ता है तब तक मैं अवतार लेता हूं सजन की रक्षा और दोस्तो के नाश के लिए तथा धर्म संस्थापना अर्थ में युग युग में जन्म लेता हूं मूर्ख लोग मुझे जगदीश्वर के यथार्थ स्वरूप को न जाने न जाने के कारण मुझे न देदारी की अवहेलना करते हैं भगवान श्री रामकृष्ण कहते थे जब एक बहुत बड़ी लहर आती है तो छोटे-छोटे नल और गड्ढे अपने आप ही लबालब भर जाते हैं इसी प्रकार जब एक अवतार जन्म लेता है तो समस्त संसार में आध्यात्मिकता की बड़ी बाढ़ आ जाती है और लोग वायु के कान-कान में धर्म भाव का अनुभव करने लग जाते हैं

1.8 मंत्र

इस बड़े ब्रह्मांड में ब्रह्मा हिरण्यगर्भ अथवा महत्व ने पहले अपना नाम फिर अपना रूप प्रकट किया यही व्यक्त इंद्रिय ग्रह जगत रूप है जिसके पीछे अनंत निर्वाचनीय सपोर्ट रहता है सपोर्ट सारे जगत की अभिव्यक्ति कारक शब्द ब्रह्म है सारे नाम अर्थात भावों का सदैव संगी उपादान स्वरूप या अनंत सपोर्ट वह शक्ति है जिसके द्वारा भगवान इस संसार की सृष्टि करते हैं इस सपोर्ट के लिए केवल एक वाचक शब्द है ओम में और नित्य सपोर्ट में अनंत संबंध है ओमकार और केवल ओमकार ही वह शब्द है क्योंकि अब,उ,म यह तीन अक्षर एक साथ में ओम ऐसे उच्चरित होता है की सब प्रकार के शब्दों का यही साधारण वाचक शब्द हो सकता है अ सारे शब्दों की अपेक्षा काम विभेदित होता है अ कंठ से उच्चारित होता है और म होठों से और कंठ से उठकर जो शक्ति होठों तक लहराती है उसके द्वारा उ का उच्चारण होता है स्वाभाविक रूप से उच्चारण करने पर यही ओम सारे सब दो चरण व्यापार का सूचक है और किसी शब्द में ऐसी शक्ति नहीं है आज तो यही शब्द सपोर्ट का ठीक उपयोगी वाचक है और यही सपोर्ट ओंकार का स्वाभाविक वाच्य है इसलिए ओम और सपोर्ट एक ही है उपासक के मन में जिस समय जो तत्व प्रबल होता है उसे समय उसके हृदय में वैसे ही भाव उत्पन्न होते हैं महापुरुषों की गंभीर आध्यात्मिक अनुभूति से उठकर यही वाचक शब्द समूह भगवान और

जगत के विशेष भावों को प्रकाशित करते हैं और जैसे ओमकार अखंड ब्रह्म वाचक है वैसे ही अन्य अन्य मंत्र उसी परम पुरुष के खंड भावों के वाचक हैं यह सभी भागवत ज्ञान और प्रकृति ज्ञान लाभ करने में सहायक होते हैं

1.9 प्रतीक और प्रतिमा की उपासना

प्रतीक का अर्थ है वे वस्तुएं जो थोड़े बहुत अंश में ब्रह्म के स्थान में उपवास से रूप से भी ली जा सकती हैं प्रतीक द्वारा ईश्वर उपासना के संबंध में भगवान रामानुज कहते हैं जो वस्तु ब्रह्म नहीं है उसमें ब्रह्म बुद्धि करके ब्रह्मा का अनुसंधान प्रतीक उपासना कहलाता है प्रतीक शब्द का अर्थ है बाहर की ओर जाना और प्रति को उपासना का अर्थ है ब्रह्म के स्थान में ऐसी किसी वस्तु की उपासना करना जो कुछ या अधिक अंशु में ब्रह्म के सदस्य हो पर स्वयं ब्रह्म ना हो यदि प्रतिमा किसी देवता या किसी महापुरुष की सूचक हो तो ऐसी उपासना भक्ति प्रसूत नहीं है और वह हमें मुक्ति नहीं दे सकती पर यदि वह इस परमेश्वर की सूचक हो तो उसे उपासना से भक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त हो सकती है संसार के मुख्य धर्मी में से वेदांत बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म के कुछ संप्रदाय बिना किसी आपत्ति के प्रतिमाओं का उपयोग करते हैं

1.10 ईष्ठ निष्ठा

जो भक्त होना चाहता है उसे यह जान लेना चाहिए कि जितने मत हैं उतने ही पाथ हैं। विभिन्न धर्मो के विभिन्न संप्रदाय इस प्रभु की महिमा की विविध अभिव्यक्तियां हैं भक्ति योग हमें इस बात का आदेश देता है कि हम भगवत प्राप्ति के विभिन्न मार्गो में से किसी के भी प्रतिघटना ना करें किसी को भी अस्वीकार ना करें फिर भी जब तक पौधा छोटा रहे जब तक वह पढ़कर एक बड़ा पेड़ ना हो जाए तब तक उसे चारों ओर से रूठ रखना आवश्यक है आध्यात्मिकता का यह छोटा सा पौधा यदि आधा आरंभिक परिपक्व दशा में ही भावों और आदर्शों के सतत परिवर्तन के लिए खुल रहे तो वह मर जाएगा बहुत से लोग धार्मिक उदारता के नाम पर अपने आदर्शों को अनवरत बदलते रहते हैं और इस प्रकार अपनी निरर्थक उत्सुकता तृप्ति करते रहते हैं सदा नई बातें सुनने के लिए लालायत रहना उनके लिए बीमारी सा एक नशा सा हो जाता है क्षणिक स्नायुिक उत्तेजना के लिए ही वह नई-नई बातें सुनना चाहते हैं और जब इस प्रकार की उत्तेजना देने वाली एक बात का असर उसके मन पर से चला जाता है तब वह दूसरी बात सुनने को तैयार हो जाता है उनके लिए धर्म एक प्रकार से अफीम के नशे के समान है और बस उसका वही अंत हो जाता है सड़क के लिए आरंभिक दशा में यह एक निष्ठा नितांत आवश्यक है हनुमान जी के सामने उसे भी यह भाव रखना चाहिए या देवी परमात्मा दृष्टि से लक्ष्मीपति और सीमा पति सीता पति दोनों एक ही हैं अर्थात अपना भाव दृढ़ रखो यदि साधक सच्चे निष्कपट भाव से साधना करें तो इस बी से वटवृक्ष की तरह एक विशाल वित्त उत्पन्न होकर सब दिशाओं में अपनी शाखाएं और जेड फैलता हुआ धर्म के संपूर्ण क्षेत्र को आचारित कर लेगा तभी सच्चे भक्त को यह अनुभव होगा कि उसका अपना ही ईष्ट देवता विभिन्न संप्रदायों में विभिन्न नाम और विभिन्न रूपों में पूजित हो रहा है

1.11 भक्ति के साधन

भक्ति प्राप्ति के साधनों के संबंध में रामानुजाचार्य जी लिखते हैं विवेक विमुख अभ्यास क्रिया कल्याण अनावसाद अनुदर्ष द्वारा भक्ति प्राप्त होती है रामानुज के मत अनुसार विवेक का अर्थ है खाद्य खाद्य का विचार उनके मत से खाद्य पदार्थ अशुद्ध के तीन कारण हैं पहले जाति दोष दूसरा आश्रय दोष तीसरा निमित्त दोष अर्थात और किसी अशुद्ध वस्तु का। छुट्टियों में लिखा है की “आहार शुद्धो सत्वशुद्धि: सत्वशुद्धो ध्रुवा वृत्ति:” अर्थात सुधार करने से चित्त शुद्ध रहता है और चित्त शुद्ध होने से भगवान का निरंतर स्मरण किया जाता है

वास्तव में खाद्य खाद्य का विचार गोद है इसी को शंकराचार्य ने अपने बाहर से में अन्य प्रकार से संबोधित किया है उनके अनुसार जो एकत्र किया गया है वही आहार है आते हो आहार शुद्धि का अर्थ हो जाता है आसक्ति द्वेष अथवा मुंह शून्य

विषय विज्ञान यह दोनों व्याख्या है यह देवी आपस में विरोधाभासी होती हैं किंतु दोनों ही सत्य और आवश्यक हैं फिर आता है विमोक विमुक का अर्थ है मां की इंद्रियां विषय अभिमुख गतिक का निवारण करके उसे संयमित कर अपनी इच्छा के वश में करना और सारी धर्म साधना की नई यही है तदुपरांत अभ्यास अर्थात आत्म संयम का अभ्यास आता है जिससे मन सदा ही इस ईश्वर के चिंतन में लगा रहे। श्री कृष्ण जी ने गीता में कहा है है कौन थे अभ्यास और वैराग्य द्वारा यह पाया जा सकता है इसके बाद आती है क्रिया अर्थात यज्ञ जिसमें पंच महायज्ञ का संपादन करना चाहिए। कल्याण का अर्थ यहां है पवित्रता और इस पवित्रता की नींव पर ही भक्ति का प्रसाद संपूर्ण रूप से निर्भर है अनावसाद अर्थात बाल भक्ति प्रताप का एक और साधन है श्रुति कहती है यह आत्मा निर्बल द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता और जिनके चित्त में दुर्बलता है वह आत्म लाभ प्राप्त नहीं करते। जो मुक्त होने के इच्छुक हैं उन्हें तो सर्वदा प्रफुल्ल चित्र रहने की आवश्यकता है संतुष्ट चित्र व्यक्त ही अध्याय व्यवसाय सील हो सकता है किंतु हर्ष के स्थान पर हामिद प्रमोद में मतवाला ना बनना चाहिए इतिहास से हमारी गंभीर चिंतन को कठिन कार्य कर देता है अस्तु असम में है इससे मानसिक शक्ति समूह व्यर्थ ही क्षय हो जाती है इच्छा शक्ति जितनी ही दृढ़ होगी नाना भाव आवेशों से वह उतना ही काम विचलित होगी दुख जनित गंभीर भावेश जितना खराब है वैसा ही वह आमोद प्रमोद जब मन सामंजस पूर्ण होता है तो स्थिर शांत भाव द्वारा सभी प्रकार के आध्यात्मिक अनुभूति संभव है इन साधनों द्वारा कर्मचारी ईश्वर भक्ति का उदय होता है।

1. 12 पराभक्ति - त्याग

सब प्रकार के साधनों का उद्देश्य होता है आत्म शुद्धि सर्वसाधनों में त्याग ही सर्वश्रेष्ठ है उसके बिना कोई भी पर भक्ति के साम्राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता सब प्रकार के वैरागियों से भक्त योगी का वैराग्य ही अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है भक्ति का त्याग अत्यंत शहर स्वाभाविक होता है भक्ति के लिए जी वैराग्य की आवश्यकता है उसे किसी का कुछ नाश नहीं होता जैसे किसी क्रमशः बढ़ाते हुए प्रकाश के सामने अल्प प्रकाश स्वभाव उतारने आईएसपीआरवी हो जाता है इसी प्रकार भागवत प्रेम और माता के सम्मुख इंद्रियावृति और बुद्धि वृद्धि परिचालन जनित सारे सुख स्वभाव ते निष्प्रभ हो जाते हैं यह ईश्वर प्रेम क्रमशः बढ़कर एक ऐसे भाव को धारण करता है जिस पर भक्त कहते हैं तभी इस प्रेमी पुरुष के लिए किसी प्रकार के अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं रहती शास्त्र से कोई मतलब नहीं रहता प्रतिमा मंदिर भोजनालय विभिन्न धर्म संप्रदाय देश जाती यह सब छोटे सीमाबद्ध भाव उस छूट जाते हैं कुछ भी उसे बंद नहीं सकता कोई भी उसकी स्वाधीनता नहीं नष्ट कर सकता जहाज जब अर्थात किसी चुंबक की शीला के पास पहुंचता है तो उसका सारा लोहा निकाल कर चुंबक से चिपक जाता है और लकड़ी के तख्ते पानी पर तैरने लगते हैंइसी प्रकार ईश्वर की कृपा आत्मा का स्वरूप प्रदर्शित करने में जितने विघ्न हैं सब को हर लेती है और तब वह मुक्त हो जाता है अति देव भक्ति लाभ के उपाय स्वरूप इस वैराग्य साधन में कोई कठिनता नहीं कोई भी कर कर तो एसुस का भाव या किसी प्रकार की जबरदस्ती नहीं करनी पड़ती भक्तों को अपने हृदय के किसी भाव को नहीं दबाना पड़ता वरुण उन्हें सब भावों को प्रबल करके भगवान की ओर परिचालित करना होता है

1.13 भक्त का वैराग्य प्रेमजन्य होता है

प्रकृति में हम सरवत प्रेम देखते हैं भक्ति योग उच्चतर प्रेम का विज्ञान है भक्त योगी इस जीवन संग्राम का अर्थ भली भांति जानता है वह ऐसे संग्रामों की एक लंबी श्रृंखला से पर हो चुका है और वह जानता है कि उसका लक्ष्य क्या है उनसे होने वाले डंडों से छुटकारा पाने की उसकी तीव्र आकांक्षा रहती है वह संघर्षों से दूर ही रहना चाहता है और सीधे समस्त आकर्षणों के मूल कारण स्वरूप हरि के निकट चला जाना चाहता है यही भक्ति का त्याग है भगवान के प्रति इस प्रबल आकर्षण से उसके अन्य सब आकर्षण नष्ट हो जाते हैं उनके हृदय में इस प्रबल अनंत ईश्वर प्रेम के प्रवेश कर जाने से फिर वहां अन्य किसी प्रेम की टाइल मात्रा भी गुंजाइश नहीं रह जाती तात्पर्य है की भक्ति का वैराग्य करता

भगवान को छोड़कर समस्त विषयों में आना शक्ति भगवान के प्रति परम अनुराग से उत्पन्न होते हैं पर भक्ति की प्राप्ति के लिए यही सर्वोच्च साधन है यही आदर्श तैयारी है जब यह वैराग्य आता है तो परभक्ति के राज्य का प्रवेश द्वार खुल जाता है जिससे आत्मा पर भक्ति के गंभीरतम प्रदेशों में पहुंच सके।

1.14 भक्ति की स्वाभाविकता और केंद्रीय रहस्य

भगवान श्री कृष्ण से अर्जुन पूछते हैं हे प्रभु जो सतत युक्त हो तुम्हें भेजते हैं और जो अव्यक्त निर्गुण के उपासक हैं इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है कृष्णा उत्तर देते हैं है अर्जुन मुझ में मन को एकाग्र करके जो नित्य युक्त हो परम श्रद्धा के साथ मेरे उपासना करता है वही मेरा श्रेष्ठ उपासक है वही श्रेष्ठ योगी है और जो इंद्रिय समुदाय को पूर्ण वर्ष में करके मन बुद्धि से परेशान व्यापी अव्यक्त और सदा एक रस रहने वाले नित्य अचल निराकार अविनाशी सच्चिदानंद ब्रह्म की निरंतर एक कई भाव से ध्यान करते हुए उपासना करते हैं वे समस्त भूतों के हित में रथ हुए और सब में समान भाव रखने वाले योगी भी मुझे ही प्राप्त होते हैं किंतु उन सच्चिदानंद निराकार ब्रह्म में आसक्ति चित्र वाले पुरुष के लिए क्लेश अर्थात परिश्रम अधिक है क्योंकि डे अभिमनियों व्यक्तियों के द्वारा यह गति बहुत दुख पूर्वक प्राप्त की जाती है अर्थात जब तक शरीर में अभियान रहता है तब तक निराकार ब्रह्म में स्थित होना कठिन है और जो मेरे पारायण हुए भक्तजन संपूर्ण कर्मों को मुझ में अर्पित कर मुझे अन्य ध्यान और योग से निरंतर चिंतन करते हुए बजाते हैं मुझ में चित्र लगाने वाले उन प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र मृत्यु रुपी संसार समुद्र से उद्धार करता हूं।

1.15 भक्ति की अभिव्यक्ति के रूप

भक्ति जिन विविध रूपों में प्रकाशित होती है उनमें से कुछ यह हैं पहले श्रद्धा इस श्रद्धा का मूल है प्रेम हम जिससे प्रेम नहीं करते उसके प्रति कभी भी श्रद्धालु नहीं हो सकते इसके बाद है प्रति अर्थात ईश्वर चिंतन में आनंद भक्तों को चाहिए कि वह भगवान के प्रति तीव्र प्रेम रखें इसके उपरांत आता है विरह प्रेमास्पद के अभाव में उत्पन्न होने वाला तीव्र दुख प्रेम हॉस्पिटल भगवान बिना एक क्षण भी रहना असंभव हो जाता है हरि ऐसे मनोहर गुरु हैं कि जो लोग उनको प्राप्त कर संसार की सारी वस्तुओं से तृप्त हो गए हैं जिनके हृदय की सब ग्रंथियां खुल गई हैं वे ही भगवान की निष्काम भक्ति करते हैं जिस भगवान की उपासना सारे देवता मुमुक्षु और ब्रह्मवादी गण करते हैं ऐसा है प्रेम का प्रभाव जब मनुष्य अपने आप को बिल्कुल भूल जाता है और जब उसे यह भी ज्ञान नहीं रहता की कोई चीज़ अपनी है तभी उसे यह तदीयता की अवस्था प्राप्त होती है तब सब कुछ उसके लिए पवित्र हो जाता है सांसारिक प्रेमी में भी प्रेमी अपनी प्रेमिका की प्रत्येक वस्तु को बड़ी पारी और पवित्र मानता है इसी प्रकार जो मनुष्य भगवान से प्रेम करता है उसके लिए सारा संसार फ्री हो जाता है क्योंकि यह संसार आखिर उसी का है

1.16 विश्व प्रेम और उससे आत्म समर्पण का उदय

समष्टि से प्रेम किए बिना हम व्यस्त से कैसे प्रेम कर सकते हैं ईश्वर ही समष्टि है सारे विश्व का यदि एक अखंड रूप से चिंतन किया जाए तो वही ईश्वर है और उसे पृथक पृथक रूप से देखने पर वही यह दृश्य मन संसार है। भक्ति कहता है कि हमें ऐसा रहना चाहिए मानो हम दुनिया की सारी चीजों के लिए मर से गए हों। और वास्तव में यही यथार्थ आत्मसमर्पण है यही सच्ची शरणागति है यथार्थ भक्त अपने लिए कभी कोई इच्छा या कार्य नहीं करता उसके हृदय के अंतर्तम प्रदेश से तो बस यही प्रार्थना निकलती है कि मैं इतना सक्षम नहीं हूं अतः मैं अपने इस शरीर को तुम्हारे चरणों में अर्पित करता हूं मेरा परित्याग ना करना है प्रभु भक्ति के शांत आत्म समर्पण से हृदय में जो शांति आती है उसकी तुलना नहीं हो सकती वह बुद्धि के लिए अगोचर है इस अवस्था की प्राप्ति होने पर उसका किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं रह जाता और तो फिर स्वार्थ में बड़ा देने वाली कोई वस्तु भी संसार में नहीं रह जाती इस परम शरणागति की अवस्था में सब प्रकार की आसक्ति समूल नष्ट हो जाती है और रह जाती है सर्व भूतों की अंतरात्मा और आधार स्वरूप उसे

भगवान के प्रति सरवन सरवावगाहिनी भक्ति भगवान के प्रति प्रेम की यह आसक्ति ही सचमुच ऐसी है जो जीवात्मा को नहीं बंधती बल्कि उसके समस्त बंधन सार्थक रूप से छीन कर देती है

1.17 सच्चे भक्त के लिए पराविद्या और पराभक्ति एक है

उपनिषदों में परा और अपरा विद्या में भेद बतलाया गया है भक्ति के लिए पर विद्या और परभक्ति दोनों एक ही है मंदक उपनिषद में कहा है ब्रह्म ज्ञानी के मातानुसार परा और अपर यह दो विद्याएं जानने योग्य हैं अपरा विद्या में ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद शिक्षा कप यज्ञ यज्ञ पद्धति व्याकरण निरुक्त चांद और ज्योतिष आदि हैं तथा पर विद्या द्वारा उसे अक्षर ब्रह्म का ज्ञान होता है देव भागवत में पर भक्ति की निम्नलिखित व्याख्या है एक बर्तन से दूसरे बर्तन में तेल डालने पर जिस प्रकार एक आभूषण धारा में प्रवाह होता है उसी प्रकार जब मन भगवान के सतत चिंतन में लग जाता है तो पर भक्ति की अवस्था प्राप्त हो जाती है भगवान के प्रति अभिचहीन आसक्ति के साथ उदय और मां का इस प्रकार अभिवृत्ति और नित्य स्थिर भाव ही मनुष्य के हृदय में भागवत प्रेम का सर्वोच्च प्रकाश है

1.18 प्रेम का त्रिकोण

प्रेम की उपमा एक त्रिकोण से दी जाती है जिसका प्रत्येक को प्रेम एक-एक अविभाज्य गन का सूचक है जिस प्रकार बिना तीनों कोणों के त्रिकोण नहीं बन सकता उसी प्रकार निम्नलिखित तीन गुना के बिना यथार्थ प्रेम का होना संभव है इस प्रेम रूपी त्रिकोण का पहला कोड तो यह है कि प्रेम में किसी प्रकार का कार्यक्रम नहीं होता अपने प्रेम के बदले में कुछ मत मांगो प्रेम के इस त्रिकोण का दूसरा कौन है प्रेम का भय से नितांत रहित होना प्रेम और भाई दोनों एक साथ नहीं रह सकते जो भगवान से प्रेम करते हैं उन्हें उनसे डरना नहीं चाहिए ईश्वर का नाम तुम जितना ही लोग फिर वह किसी भी प्रकार से क्यों ना हो तुम्हारा उतना ही मंगल है उसे प्रेम होने के कारण ही तुम उसका नाम लेते हो प्रेम रूपी त्रिकोण का तीसरा कौन है प्रेम में किसी प्रतिद्वंद्वी का ना होना क्योंकि इस प्रेम में ही प्रेमी का सर्वोच्च आदर्श मूर्ति रहता है प्रत्येक व्यक्ति के उच्चतम आदर्श को ही ईश्वर कहते हैं ज्ञानी हो या अज्ञानी साधु हो या पापी पुरुषों अथवा स्त्री शिक्षित हो अथवा शिक्षित प्रत्येक दशा में मनुष्य मात्र का परमोच्च आदर्श ही ईश्वर है सौंदर्य उदारता और शक्ति के उच्चतम आदर्श के योग में ही हमें प्रेममय एवं प्रेम आप पद ईश्वर का पूर्णतम भाव मिलता है।

1.19 प्रेम के दिव्य आदर्श की मानवीय अभिव्यक्ति

पर भक्ति के कई व्याख्याता ने इस देवी प्रेम को अनेक प्रकार से समझने और इसका प्रत्यक्ष अनुभव करने की चेष्टा की है इस प्रेम के निम्नतम रूप को शांत भक्त कहते हैं शांत भक्त वीर शांत और नम्र होता है इससे कुछ ऊंची अवस्था है दास से इस अवस्था में मनुष्य अपने को ईश्वर का दास समझता है इसके बाद सत्य प्रेम इस सत्य प्रेम का साधन भगवान से कहता है तू मेरे प्रिय सखा हो इसके बाद है वात्सल्य प्रेम इसमें भगवान का चिंतन पिता रूप से ना करके संतान रूप से करना पड़ता है प्रेम का यदि ग्रुप एक और मानवीय भाव में प्रकाशित होता है उसे मधुर कहते हैं और वही सब प्रकार के प्रेम में श्रेष्ठ है इस संसार में जितने प्रकार के प्रेम देखते हंि जिसके साथ हम अल्प या अधिक परिणाम में क्रिया मात्रा कर रहे हैं उन सब का एक ही लक्ष्य और वह है भगवान पर सच्चा भागवत प्रेमी यहां पर भी नहीं रुकता उसके लिए तो पति और पत्नी की प्रेमोन्मत्तता भी यथेष्ट नहीं अतएव ऐसे भक्त अवैध प्रेम का भाव ग्रहण करते हैं क्योंकि वह अत्यंत प्रबल होता है पर देखो उसकी अवैधता उसका लक्ष्य नहीं इस प्रेम का स्वभाव ही ऐसा है कि उसे जितनी बड़ा मिलती है वह उतना ही उग्र रूप धारण करता है इसलिए भक्ति कल्पना करता है मानो कोई स्त्री पर पुरुष में आसक्त है और उसके माता-पिता स्वामी उसके इस प्रेम का विरोध करते हैं इस प्रेम के मार्ग में जितनी भी बढ़ाया आती हैं वह उतना ही प्रबल रूप धारण करता जाता है श्री कृष्णा वृंदावन में किस प्रकार लीला करते थे किस प्रकार सब लोग उन्मत्त होकर उनसे प्रेम करते थे किस प्रकार उनकी बांसुरी की मधुर दान सुनते थे वह पिया सब कुछ भूलकर इस संसार और इसके

समस्त बंधनों को भूलकर यहां के सारे कर्तव्यों तथा सुख-दुख को विश्राकर अनमैच सी उनसे मिलने के लिए दौड़ पड़ती थी यह सब मानवीय भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता मानव है मानव तुम देवी प्रेम की बातें तो करते हो पर साथ ही संसार की उन सारी व्यर्थ वस्तुओं में भी मन लगाए रहते हो क्या तुम सच्चे हो जहां प्रभु हैं वहां और कोई कामना नहीं और जहां कामना है वहां प्रभु नहीं वे दोनों कभी एक साथ नहीं रह सकते प्रकाश और अंधकार क्या कभी एक साथ रहते हैं?

1.20 सारांश

भक्ति मार्ग भावनाओं को सघन बनाकर ईश्वर को का लेने का मार्ग है विवेकानंद का कहना है की भक्ति मार्ग सर्वे तथा सर्व प्रचलित मार्ग है यह मानव स्वभाव के सहज अनुरूप है इसकी सरलता एवं सहजता का एक स्पष्ट कारण यह भी है कि इसके लिए किसी विशेष प्रकार की क्षमता या शक्ति की आवश्यकता नहीं होती और ना इसके लिए किसी उपकरण किया अनिवार्यता पर जोर दिया जाता है मानव जीवन में भावना तथा संवेग का बड़ा प्रमुख स्थान है उसकी इसी स्वाभाविक झुकावों पर आधारित यह मार्ग स्पष्ट सरलतम प्रतीत होता है।

1.21 उपयोगी पुस्तकें

1. विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद

2. भक्ति योग - विवेकानंद

3. समकालीन भारतीय दर्शन - बसंत कुमार लाल

1.22 बोध प्रश्न

1. स्वामी विवेकानंद के अनुसार भक्ति क्या है ?

2. भक्ति योग का मार्ग क्या है?

3. भक्ति के लक्षण का वर्णन कीजिए।

4. पराभक्ति क्या है?

.....0000.....

इकाई–2 ज्ञान योग

इकाई की रूपरेखा

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 माया

2.3 मनुष्य का यथार्थ स्वरूप

2.4 मनुष्य का वास्तविक और प्रतिभाषिक स्वरूप

2.5 माया और ईश्वर

2.6 माया और मुक्ति

2.7 ब्रह्म और जगत

2.8 बृहद जगत

2.9 सूक्ष्म जगत

2.10 अमरत्व

2.11 बहुत्व में एकत्व

2.12 सभी वस्तुओं में ब्रह्म दर्शन

2.13 अपरोक्ष अनुभूति

2.14 आत्मा का मुक्त स्वभाव

2.15 सारांश

2.16 उपयोगी पुस्तकें

2.17 बोध प्रश्न

----------000----------

2.0 प्रस्तावना

योग का अर्थ है मनुष्य और ईश्वर को जोड़ने की पद्धति योग धाम का व्यावहारिक कार्य है और यह प्रदर्शित करता है कि धर्म शुभ कर्म के अतिरिक्त एक व्यवहारिक शक्ति भी है यदि मैं मिट्टी के एक टुकड़े को जान लूं तो मैं मिट्टी की संपूर्ण राशि को जान लूंगा यदि हम मानव आत्मा जो की एक अनु है के आरंभ और सामान्य इतिहास को जान लें तो हम संपूर्ण प्रकृति को जान लेंगे विवेकानंद योग को एक विज्ञान मानते थे जिसके लिए किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती वह कहते थे योग के विषय में यदि कोई गुप्त या रहस्य पूर्ण बात हो तो उसे छोड़ देना चाहिए रहस्य मानव मस्तिष्कों को निर्बल बना देता है इसने योग को जो कभी एक उच्चतम विज्ञान था बिल्कुल नष्ट कर दिया विवेकानंद के अनुसार प्रत्येक धर्म बुद्धि या तर्क से परिपुष्ट होना चाहिए तभी वह अस्थाई हो सकता है

सत्य सत्ता अनेक और शाश्वत है। हमारी आत्मा में विराजमान ईश्वर ही हमें अपना अनुसंधान करने के लिए अपनी उपलब्धि करने के लिए प्रेरित करता है यहां वहां मंदिरों में गिरजाघर में स्वर्ग में मर्द में विभिन्न स्थलों पर अनेक उपायों से अन्वेषण करके और बाद में हमने जहां से आरंभ किया था वहीं अर्थात अपनी आत्मा में ही हम एक चक्कर पूरा करके वापस आ जाते हैं और पाते हैं कि हम समस्त विश्व में जिसको खोजते फिरते हैं जिसके लिए हम पूजा स्थलों में जा जाकर प्रार्थनाएं करते हैं आंसू बहते हैं जिसको हम दूर-दूर तलाश करते हैं जिसे हम अव्यक्त और रहस्य में समझते हैं वह तो हमारे निकटतम स्थल पर स्थित है वह तो हमारे प्राणों का आधार है वह तो हमारी आत्मा है वह तुम ही हो तुम ही मैं हूं और मैं ही तुम हूं । हम स्वयं पवित्र हैं हमें पूर्ण होना पड़ेगा वस्तुतः हम तो पूर्ण ही हैं सारी प्रकृति सत्य को पहन के समान मानव ढके हुए हैं हम जो कुछ भी अच्छा विचार या कार्य करते हैं उसे यह आवरण धीरे-धीरे हटा जाता है और वह अनंत ईश्वर स्वयं अभिव्यक्त हो जाता है।

2.1 उद्देश्य

ज्ञान योग ज्ञान एवं स्वयं की जानकारी प्राप्त करने को कहते हैं यह अपनी और अपने परिवेश को अनुरूप होने के माध्यम से समझना है ज्ञान के माध्यम से ईश्वरीय स्वरूप का ज्ञान वास्तविक सत्य का ज्ञान ही ज्ञान योग का लक्ष्य है ज्ञान योगी विशुद्ध ज्ञान के द्वारा ईश्वरी साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त करता है उसे सभी पुरानी मूर्तियों को सभी पुराने विश्वासों और अंधविश्वासों को एक और पारलौकिक सभी प्रकार के अंधविश्वासों को सभी दुष्ट भावनाओं को निकाल सकते रहना चाहिए और इसके लिए तत्पर रहना चाहिए केवल मोक्ष के लिए दृढ़ निश्चय होना चाहिए ज्ञान के बिना मोक्ष लाभ नहीं हो सकता विवेकानंद द्वारा रचित ज्ञान योग के मायावद मनुष्य के यथार्थ प्रकृति स्वरूप मार्ग और मुक्ति ब्रह्म और जगत अंतर जगत बहर जगत बहुत में एकत्रित जगत ब्रह्मा दर्शन आत्मा का मुक्त स्वभाव आदि का वर्णन है। क्या नहीं होगी मायावद के असल तत्व को जानकर अपनी वास्तविकता और वेदांत के अद्वैत मत के अनुरूप आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानकर मुक्ति प्राप्त करता है।

2.2 माया

ऋग्वेद में कहा गया है " इंद्रोमायाभि: पुरुरूप ईयते" अर्थात इंद्र ने माया के द्वारा नाना रूप धारण किए इसके बाद के समय में एक प्रश्न उठाया जाता है कि हम जगत के गुप्त रहस्यों को क्यों नहीं जान पाते हैं हम श्वेताश्वतरोउपनिषद मैं पाते हैं "मायंतु प्राकृतिं विज्ञान्मायिनं तु महेश्वरम" अर्थात माया को ही प्रकृति समझो और माया के शासक को स्वयं ईश्वर जानू हिंदू लोग जब जगत को माया में बताते हैं तो साधारण मनुष्य समझता है कि सब जगत एक भ्रम भाव है सूक्ष्म तत्वों से लेकर जीवन के साधारण दैनिक स्थूल कार्यों तक परियलोचना करने पर हम देखते हैं कि हमारा संपूर्ण जीवन ही सत्य और असत इन दोनों विरुद्ध भावों का मिश्रण है अथवा संपूर्ण जीवन ही एक विरोधाभा एस है कारण यह है कि

वह अपनी बुद्धि की सीमा का उल्लंघन नहीं कर पाता हमारी बुद्धि ज्ञान जीवन प्रत्येक घटना में यही विषय यही विरुद्ध भाव दिखाई पड़ता है इस संसार की गति के वर्णन का नाम ही माया है हम देखते हैं की माया संसार रहस्य की व्याख्या करने के निमित्त कोई विशेष मत वध नहीं है संसार में घटनाएं जिस प्रकार होती रही है माया उन्हीं का वर्णन मात्र है विरोध ही हम लोगों के अस्तित्व का आधार है हमें हर और विभिन्न विरोधों से गुजरना होता है जहां जीवन है वही मृत्यु भी संलग्न है प्रकृति रहती है आओ वन में जाकर बेसन मनुष्य कहता है मैं मकान बनाऊंगा प्रकृति के साथ युद्ध करूंगा मानव जाति का इतिहास प्राकृतिक विषयों के साथ युद्ध का इतिहास है और मनुष्य के अंत में प्रकृति पर विजय होती है स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए प्रकृति के बंधन को क्या कर मनुष्य अपने गंतव्य मार्ग को प्राप्त करता है वेदांती दार्शनिकों है इस माया का अतिक्रमण करके ऐसी किसी वस्तु को जान लिया है जो इस माया के अधीन नहीं है और यदि हम उसके पास पहुंच सके तो हम माया के पार हो जाएंगे किसी न किसी रूप में प्राय सभी धर्म इस बात को स्वीकार करते हैं वेदांत के मत में यह धर्म का आरंभ है अंत नहीं जो विश्व की सृष्टि तथा पालन करने वाले हैं जो मायाधिष्ठित है है जिन्हें माया या प्रकृति का करता कहा जाता है उन शगुन ईश्वर का ज्ञान वेदांत का अंत नहीं है यही ज्ञान धीरे-धीरे बढ़ता जाता है और अंत में वेदांती देखा है की जिसे वह बाहर खड़ा हुआ समझता था वह उसके अंदर ही है और वह स्वयं वही है जो अपने को सीमा के कारण बाढ़ समझता था वह स्वयं वही मुक्त स्वरूप है

2.3 मनुष्य का यथार्थ स्वरूप

शरीर के भीतर में जो शक्ति का विकास देखा जाता है यह क्या है यह शक्ति जो कुछ भी हो यही शक्ति जड़ परमाणुओं को लेकर उसमें एक विशेष आकृति मनुष्य देह को तैयार करती है और कोई आकर तुम्हारे मेरे शरीर को नहीं बनाता मुझे ही इस भोजन का कर शरीर में लेकर उस रक्त मांस अस्थि आदि का गठन करना होता है यह शक्ति क्या है भूत भविष्य के संबंध मंद कोई भी सिद्धांत मनुष्यों को भयावा प्रतीत होता है वर्तमान में क्या होता है हम यही समझने की चेष्टा करेंगे हम देख चुके हैं कि इस शक्ति को इसी शक्ति की अभिव्यक्ति को लोगों ने शरीर से संपन्न एक ज्योतिर में पदार्थ माना है उनका विश्वास था कि इस शरीर के चले जाने पर भी वह पदार्थ बचा रहेगा हम देखते हैं कि केवल ज्योतिर्मय डे खाने से संतोष नहीं होता एक और भी ऊंचा भाव लोगों के मन पर अधिकार करता दिखाई देता है वह यह है कि किसी प्रकार का शरीर शक्ति का स्थान नहीं ले सकता जिस वस्तु की आकृति है वह अनेक परमाणुओं की एक संगति मात्र है तथा उसे चलाने के लिए कोई दूसरी चीज जरूरी है यदि साधारण सी वस्तु या शरीर के गठन एवं परिचालक हेतु उसे वस्तु या शरीर से भिन्न कोई अन्य वस्तु या शक्ति चाहिए तो इसी प्रकार इस ज्योतिर में डे का गठन एवं परिचालन करने के लिए और कुछ चाहिए यह और कुछ आत्मा नाम से पुकारा जाने लगा यही ज्योतिर्मय शरीर ही मां का आधार कहा जाता है और आत्मा इससे अतीत है आत्मा मन नहीं है वह मां पर कार्य करता है और मां के माध्यम से शरीर पर कार्य करता है भिन्न-भिन्न दर्शनों का इस विषय में मत एक के देखा जाता है की आत्मा का स्वरूप जो कुछ भी हो उसकी कोई रूप आकृति नहीं है और जिसकी आकृति नहीं है वह अवश्य ही सर्वव्यापी होगा विवेकानंद के अनुसार देशकाल निमित्त मन के अंतर्गत हैं और यह आत्मा मन से अतीत और निराकार होने के कारण देशकाल के पार है और जब आत्मा देशकाल से अतीत है तो अवश्य ही वह अनंत होगी अब हमारे दर्शन का उच्चतम विचार आता है अनंत सट्टा दो नहीं हो सकती यदि आत्मा अनंत है तो केवल एक ही आत्मा हो सकती है और यह जो अनेक आत्माओं की धारणा है तुम्हारा एक आत्मा मेरा दूसरी आत्मा यह सत्य नहीं है मनुष्य का स्वरूप एक ही है जो अनंत व सर्वव्यापी है और हमें जो प्रतिभाषिक जीव प्रतीत होता है वह इस वास्तविक अनंत स्वरूप का एक सीमित भाव मात्र ही है मनुष्य का प्रकृति स्वरूप जो की आत्मा है कार्य कारण से पार होने के कारण देशकाल से पार होने के कारण आवश्यक रूप से मुक्त स्वभाव है यह आत्मा ना तो कभी बंद थी ना कभी बंद हो सकती है प्रतिभाषिक जीव जो की प्रतिबिंब है देश कल निमित्त के द्वारा सीमाबद्ध होने के कारण ही बंद है आत्मा तो सर्वव्यापी अनंत चैतन्य स्वरूप है आत्मा अनंत है अतः जन्म और मृत्यु का प्रश्न ही नहीं उठाता जो अनंत है वह कहां से आएगा और कहां जाएगा सांसारिक जीव जब भूत

भविष्य की चिंता का त्याग कर देता है देह विमान का त्याग कर देता है और डे की सीमाबद्धता और उत्पत्ति विनाश शीलता को समझ कर जीवन जीता है तो वह उच्चतर आदर्श को प्राप्त करता है शरीर मन निरंतर परिवर्तनशील है जैसे किसी नदी के जल परमाणु निरंतर चलने मन है फिर भी वह नदी सदैव एक अभीखिन्न प्रवाह में दिखाई पड़ती है उसी प्रकार हमारा शरीर भी निरंतर बदलता रहता है हमारा शरीर व मां परिवर्तनशील कुछ घटना श्रेणियां के नाम मात्र हैं और हमारे मन पर एक प्रकार के संस्कार की इच्छा पड़ जाती है जिसके कारण हम इसे एक ही शरीर समझने लगते हैं परिवर्तन केवल सुसीमा वस्तुओं में ही संभव है अनंत आत्मा में किसी प्रकार का परिवर्तन संभव है तुम सर्वव्यापी हो अनंत पुरुष हो सबके माध्यम से तुम कार्य कर रहे होसब पैरों द्वारा तुम चल रहे हो सब मुखो से ही तुम बातचीत कर रहे हो सब हृदय से तुम ही अनुभव कर रहे हो हम जितना ही अपने जीवन को शेयर आदि छोटे-छोटे शांत पदार्थ में बंद करके रखेंगे उतना ही हम मृत्यु की ओर अग्रसर होंगे वहीं यदि हमारा जीवन दूसरों में व्याप्त रहता है समस्त जगत में व्याप्त रहता है उतना ही अधिक हम जीवित रहते हैं मैं सब वस्तुओं में शब्दों में सब प्राणियों में वर्तमान हूं मैं ही संपूर्ण जगत हूं संपूर्ण जगत मेरा शरीर है जब तक एक भी परमाणु शेष है तब तक मेरी मृत्यु कहां? तुम्हारी आत्मा में विराजमान ईश्वर ही तुम्हें अपना अनुसंधान करने को अपने उपलब्ध करने को प्रेरित कर रहा है तुम ही मैं हूं मैं ही तुम हो यही तुम्हारा स्वरूप है इसी को अभिव्यक्त करो

2.4 मनुष्य का वास्तविक और प्रतिभाषिक स्वरूप

सर्वव्यापी वस्तु एक ही है और वह एक ही नाना रूपों में प्रतीत होती है इसको चाहे आत्मा कहो अथवा अन्य कोई रूप कहे जगत में एक मात्र इसी का अस्तित्व है अद्वैत वीडियो की भाषा में यह आत्मा ही ब्रह्म है मनुष्य की इच्छा बद्ध है परंतु जो इसका मूल है वह तो सदा ही मुक्त है मनुष्य जब मुक्त हो जाता है तब वह किस प्रकार नियम में बद्ध रह सकता है? तब जगत का कोई भी नियम उसे बंद नहीं सकता क्योंकि यह विश्व ब्रह्मांड ही उसका हो जाता है दर्शन मत मत विचार शास्त्र मंदिर संप्रदाय आदि अपने स्थान पर ठीक है पर प्रत्यक्ष अनुभूति होने पर यह सब पीछे छूट जाता है प्रत्यक्ष अनुभूति धर्म का सार है मान लो कि हमने जगत का यह अखंड भाव की हमें एक मात्र अनंत पुरुष हैं उपलब्ध कर लिया मान लो हमने यह जान लिया कि एक आत्मा ही विद्यमान है और वहीं विभिन्न रूपों में प्रकाशित हो रही है तो प्रश्न है कि इस प्रकार जान लेने से हुआ क्या इसे ही जगत का क्या कल्याण होगा इसका प्रभाव अत्यंत भावात्मक है जहां भी इन विचारों का प्रभाव पड़ा है वहीं मनुष्य ने देवत्व प्राप्त कर लिया है ऐसे ही एक देव स्वभाव मनुष्य के स्पर्श द्वारा मेरा समस्त जीवन परिवर्तित हो गया है आज इन सब भावों का जगत में प्रचार करने का समय आ गया अब मतों की चार दिवारी में अवध न रहकर केवल पंडितों के पढ़ने की दार्शनिक पुस्तकों में अवध न रहकर इन भावों का समस्त जगत में प्रचार होगा जिससे यह साधु पापी शिक्षित अशिक्षित सभी की साधारण संपत्ति हो जाएं तब यह सब भाव इस जगत के वातावरण को ओतप्रोध कर देंगे और स्वास्थ्य द्वारा जो वायु ले रहे हैं वह अपने प्रत्येक स्पंदन के साथ कहने लगेगी- ‘ तत् त्वमसि’। असंख्य चंद्र सूर्य पूर्ण यह समस्त ब्रह्मांड वाक्य शक्ति युक्त प्रत्येक प्राणी के माध्यम से एक स्वर में कर उठेगा ‘तत् त्वमसि’।

2.5 माया और ईश्वर

चाहे पदार्थ कहो चाहे चेतन मन चाहे आत्मा चाहे किसी भी नाम से क्यों ना पुकारो बाद एक ही है हम यह नहीं कह सकते यह सब है और यह भी नहीं कह सकते कि यह सब नहीं है यह प्रकाश और अंधकार का खेल यह अविवक्त अपृथक और अविभाज्य मिश्रण जिसमें सारी घटनाएं कभी सत्य मालूम होती हैं कभी मिथ्या सदा से चल रहा है इस माया में ही हम कभी दानव कभी देवता बन जाते हैं विचार के रथ पर चढ़कर चाहे जितनी दूर जाओ अपनी धारणा को ऊंचे से ऊंचा बनाओ उसे अनंत या जो इच्छा हो नाम दो पर तो भी यह सब माया के भीतर है इसके विपरीत हो ही नहीं सकता और मनुष्य का जो कुछ ज्ञान है वह बस माया का ही साधारण कारण है जिन वस्तुओं का भी रूप है जो कुछ भी

हमारे मन में किसी प्रकार के भाव की जागृति कर देती है जो कुछ भी देशकाल निमित्त या उसके अंतर्गत प्रयुक्त नियमों के अधीन है वह सब माया के अंतर्गत है यह ज्ञान और अज्ञान के बीच की अवस्था है रहस्य में पहली है सत्य और सत्य का मिश्रण है यदि हम लोग आध्यात्मिक नैतिक या सामाजिक उन्नति में निहित एक तत्व के भाव को समझ सके और जान लें कि वे सभी एक ही वस्तु के विभिन्न विकास मात्र हैं तो धर्म अपने पूर्ण अर्थ में हमारे समाज में घुल जाएगा और हमारा जीवन धर्म भाव से परिपूर्ण हो जाएगा वेदांत से यह बात समझने में हमें सहायता मिलती है कि समस्त विज्ञान धाम की ही अभिव्यक्तियां हैं और समस्त जगत भी उसकी ही अभिव्यक्तियां हैं हम अपने देश व समाज में दो प्रकार के मत प्राय पाते हैं एक भौतिक और निंदा करने वालाऔर दूसरा जो सकारात्मक और रचनात्मक होता है यदि समाज में कहीं कोई दोष है तो तुरंत एक दल उठकर गाली गलौज और हिंसा करने लगता है कभी-कभी यह अंधभक्त मतांत और कट्टर हो जाते हैं प्रत्येक समाज धर्म में ये एक जैसे ही होते हैं प्राय स्त्रियां इस दल में शामिल हो जाती हैं क्योंकि विवेक भावुक होती हैं यदि कोई अंधभक्त या मत ऐड व्यक्ति खड़ा होकर किसी चीज या विषय के विरुद्ध बयान बाजी करता है तो उसे अनुयाई आसानी से मिल जाते हैं क्योंकि दुर्भाग्य से तोड़ना तो आसान है पागल या मानसिक रूप से असंतुलित व्यक्ति जो चाहे तो फोड़ सकता है परंतु किसी वस्तु की रचना करना कठिन कार्य है।

इसके विपरीत जो दूसरे दल थे उनके हृदय में सहानुभूति थी वह भली भांति समझते थे कि दोस्तों को दूर करने के लिए उनके कर्म पर पहुंचना आवश्यक है यह दल उन महात्माओं का था जो यह मानते थे कि हम नाश करने नहीं आए हैं पहले जो था उसको ही पूर्ण करने आए हैं हम लोग उनकी सहिष्णुता का को ठीक से समझ नहीं पाते धार्मिक व्यक्ति महापुरुषों के हृदय से निश्चित प्रेम की असीम शक्ति को कम ही समझ पाते हैं इन महापुरुषों का हृदय प्रत्येक व्यक्ति के लिए सहानुभूति एवं क्षमता से पूर्ण होता है वे सदैव सहनशील एवं क्षमा करने के लिए तत्पर रहते हैं ऐसे लोग ही उपनिषदों के रचयिता थे वे जानते थे ईश्वर संबंधी प्राचीन धारणाएं नवीन एवं अन्य धारणाओं के साथ मिल नहीं खाती वह इस बात को भी स्वीकार करते थे कि नास्तिक लोग जो कुछ प्रचार करते हैं उनमें भी अनेक महान सत्य निहित हैं पर साथ ही यह भी ज्ञात था कि जो लोग पहले के मतों से कोई सरोकार न रखकर जी सूत्र में माला अंगूठी है उसी को तोड़ना चाहते हैं और सुनने पर एक नए समाज का गठन करना चाहते हैं वह असफल ही होंगे अतएव आतेव प्राचीन कल की ईश्वर संबंधी धारणाओं को वर्तमान काल के लिए अनुप्रयुक्त कहकर एकदम उदय बिना ही वे प्राचीन महापुरुष उनमें जो कुछ सत्य है उसका अन्वेषण करने लगे और उसका फल है वेदांत दर्शन वे समस्त प्राचीन देवों और जगत के शासनकर्ता एक ईश्वर के भाव से भी उच्चतर भावों की भी खोज करने लगे इस प्रकार उन्होंने जिस उच्चतम सत्य की खोज की उसी को निर्गुण ब्रह्म कहा गया इस निर्गुण ब्रह्म में ही होने विश्व ब्रह्मांड व्यापी एक अखंड सत्ता प्राप्त हुई जो इस महत्वपूर्ण जगत में उसे एक अखंड स्वरूप को देखते हैं जो इस जगत में उसे एक अनंत जीव को देखते हैं जो इस चढ़ना और अज्ञान में पूर्ण जगत में उसे एक प्रकाश और ज्ञान स्वरूप को देखते हैं उन्हें कोचर शांति मिलती है अन्य किसी को नहीं।

2.6 माया और मुक्ति

इंडिया मनुष्य की आत्मा को बाहर की तरफ खींच कर ले आती हैं हम इंद्रियों में सुख की प्राप्ति की आशा से अपने को बार-बार झोंकते हैं लौटते हैं और इसी प्रकार यह सब चलता रहता है और अंत में हम हर कर धोखा खाकर मर जाते हैं और यही माया है हम संसार के गुण रहस्य को समझना चाहते हैं हम सब कुछ जान लेना चाहते हैं परंतु अनादि अनंत काल रूपी बड़ा सामने खड़ी हो जाती है इसी प्रकार असीम देश की समस्या भी उपस्थित हो जाती है इन समस्याओं का समाधान हम अपनी सीमित शक्ति से नहीं कर पाए फिर भी हम संघर्ष करते रहते हैं हमें करना ही पड़ता है यही हमारी बुद्धि के साथ भी है और यही माया है प्रत्येक सांस में हृदय की प्रत्येक धड़कन में अपनी प्रत्येक गति में हम समझते हैं कि हम स्वतंत्र हैं और उसी क्षण में एहसास होता है कि हम स्वतंत्र नहीं हैं कि हम प्रकृति के दास हैं यही माया

हैसर्वसंहार कल जाकर सबको ग्रहण कर लेता है कुछ भी नहीं छोड़ता वह पापी को खो जाता है संत को भी खा जाता है हम लोग मृत्यु की चिंता को भूलने का आती कठोर प्रयत्न कर रहे हैं सब प्रकार के इंद्री सुखों में रथ रहकर उसे भूलने की चेष्टा कर रहे हैं किंतु इससे उनकी निवृत्ति नहीं होती यही माया है वेदांत कहता है कि इस माया प्रपंच के पीछे एक आत्मा उपस्थित है जो माया का स्वामी है और जो माया के वश में नहीं है जब तुम यह न जान लो कि यह मुक्ति यह स्वाधीनता तुम्हारे अंदर ही है वह तुम्हारी आत्मा की अंतरात्मा है यह मुक्ति तुम्हारा स्वरूप था और माया ने तुम्हें कभी यह क्रांति नहीं किया तुम्हारे ऊपर शक्ति विस्तार करने की माया की शक्ति ही न थी जिस प्रकार कोई बालक सपना देख कर डर जाता है उसी प्रकार तुम सपने देखते हो की माया तुम्हें नचा रही है जिससे मुक्त होना ही तुम्हारा लक्ष्य है केवल इस बुद्धि से जानना ही नहीं परंतु प्रत्यक्ष करना होगा तभी हम मुक्त होंगे तभी हृदय की चंचलता स्थिर हो जाएगी तभी यह बहुत और प्रकृति का भरम चल जाएगा तभी आप प्रकृति यह माया अवसाद कारक स्वप्न ना होकर अति सुंदर रूप में दिखेगी और यह जगत जो बंधन कारक कारागार के रूप में प्रतीत हो रहा है ऐसा न होकर पीड़ा क्षेत्र के रूप में दिखने लगेगा तब सब विपत्तियों विश्व श्रृंखलाएं और जो यंत्रणाएं हम भोग रहे हैं वह भी ब्रह्म भाव में परिणत हो जाएगी उसे समय अपना प्रकृति स्वरूप अभिव्यक्त करेगी तभी हमें यह क्या होगा की समस्त वस्तुओं के पीछे सभी का सर सट्टा स्वरुप वह मौजूद है ऐसा मालूम पड़ेगा कि वही हमारा वास्तविक अंतरात्मा स्वरूप है

2.7 ब्रह्म और जगत

ब्रह्म एक समुद्र की भांति है और तुम और मैं सूर्य तारे सभी उसे समुद्र में विभिन्न तरंग मात्र हैं तरंगों को समुद्र से पृथक नहीं किया जा सकता यह रूप और यह रूप है केवल देश कल निमित्त यह देश कल निमित्त भी संपूर्ण रूप से इन तरंगों पर निर्भर करता है जो ही तरंगे चली जाती हैं क्यों ही यह भी अंतर निहित हो जाते हैं जीवात्मा जैसे ही इस माया का परित्याग कर देती है क्यों ही यह भी अंतर निहित हो जाती है और जीवात्मा मुक्त हो जाती है कम विकासवाद क्या है उसके दो और योग क्या हैं एक है प्रबल अंतर निहित शक्ति जो अपने को व्यक्त करने की चेष्टा कर रही है और दूसरा है बाहर की परिस्थितियों जो उसे अवरुद्ध किए हुए हैं अतः इन परिस्थितियों से युद्ध करने के लिए यह शक्ति नए-नए शरीर धारण कर रही है जिस प्रकार एक ही अग्नि जगत में प्रविष्ट होकर नाना रूपों में प्रकट होती है उसी प्रकार सारे जीवन की अंतरात्मा वह एक ब्रह्म नाना रूपों में प्रकाशित हो रहा है फिर वह जगत के बाहर भी है मां अस्तित्व में से होकर हम इस एक अनंत सार्वभौमिक सत्ता में पहुंच रहे हैं जो सब वस्तुओं की अंतरात्मा है जो सबका असर है और सभी वस्तुओं का सत्य है जो नित्य मुक्त नित्यानंद और नित्य सत्ता है वह विज्ञान के द्वारा भी हम उसी एक तत्व पर पहुंच रहे हैं यह जगत प्रपंच इस एक का विकास है जगत में जो कुछ भी है वह उस सब की समष्टि है

वेदांती कहते हैं उसे अनंत सत्ता के साथ एक ही भूत होना ही एकमात्र धर्म है वे भगवान के बस यह ही गुण बताते हैं अनंत सट्टा अनंत ज्ञान अनंत आनंद और कहते हैं कि तीनों एक हैं ज्ञान और प्रेम के बिना सट्टा कभी नहीं रहती ज्ञान भी बिना आनंद या प्रेम के नहीं रह सकता और आनंद भी कभी ज्ञान बिना नहीं रह सकता हमें अनंत सट्टा अनंत ज्ञान और अनंत आनंद का संबंध में आवश्यक है यही हमारा लक्ष्य है हमें समन्वय चाहिए ना कि एक पक्षी विकास शंकर के बुद्धि के साथ बुद्ध का हृदय रखना संभव है

2.8 बृहद जगत

जगत के विषय में मानव की सर्वश्रेष्ठ धारणा क्या हो सकती है मानो यही धारण कर सकता है कि जगत का एक भाग दूसरे भाग से संबंधित है और जागतिक प्रत्येक वस्तु में बुद्धि की क्रिया का विकास है जड़ शक्ति मां चेतन या दूसरे नाम से परिचित विभिन्न जागतिक शक्तियां इस विश्व व्यापी बुद्धि की ही प्रकाश हैं जो कुछ हम देखते हैं सुनते हैं या अनुभव करते हैं सब उसी की रचना है यह सब कुछ स्वयं प्रभु ही है सूर्य और तरौं के रूप में वह ही उज्जवल भाव से विराजते हैं

वह ही जननी है धरती है और समुद्र भी है वही शक्ति बनकर हमारे शरीर में कार्य कर रहे हैं वे जगत के उपादान और निमित्त कारण हैं कम संकुचित होकर वह ही अनु का रूप लेते हैं फिर वह ही कम विकसित होकर ईश्वर बन जाते हैं । वे ही धीरे-धीरे अवनत होते हैं और परमाणु का आकर प्राप्त करते हैं और फिर समय होते ही अपने रूप में अपने को प्रकाशित करते हैं और यही जगत रहस्य है तुम ही सब वस्तुओं में हो प्रभु तुम ही सब हो जगत प्रपंच की केवल इसी व्याख्या से मानव युक्ति मानव बुद्धि परी तृप्त होती है तात्पर्य यह है कि हम उनसे ही जन्म लेते हैं उन्हें में जीवित रहते हैं और उन्हें में वापस लौट जाते हैं

2.9 सूक्ष्म जगत

पहले मानव का मन अंधकार में टटोलत हुआ बाहर जो कुछ देख पता है उसे ही पकड़ने की चेष्टा करता है मन भी केवल वॉक है वह विषय की संवेदना को और भी आगे ले जाकर बुद्धि को ग्रहण कराता है बुद्धि को उसका निश्चय करना पड़ता है परंतु बुद्धि को फिर उसे और भी भी तर ले जाकर शरीर के राजा आत्मा के पास पहुंचाना पड़ता है उनके पास पहुंचने पर वह आदेश देता है कि यह करो यह ना करो तब जिस क्रम के अनुसार वह विषय संवेदना की तार गई थी ठीक उसी उसी क्रम में से वह बहर यंत्र में आती है पहले बुद्धि में उसके बाद मन में फिर मस्तिष्क केंद्र में और अंत में बहर यंत्र में तभी किसी विषय का ज्ञान संपन्न होता है अतः पहले मनुष्य का स्थूल शरीर है उसके पीछे मां बुद्धि अहंकार से निर्मित सूक्ष्म शरीर है और उसके भी बाद मनुष्य का प्रकृति स्वरूप आत्मा विद्यमान होती है स्थूल शरीर की सारी शक्तियां हमें मन से प्राप्त होती हैं और मां या सूक्ष्म शरीर आत्मा के प्रकार से प्रकाशित होता है आत्मा का सर्वदा अस्तित्व रहता है विवेकानंद के अनुसार कल आत्मा में ही स्थित रहता है आत्मा शरीर से बहर जगत को ग्रहण एवं अनुभव करती है

हमें अपने सब कामों के लिए अपने को ही उत्तरदाई समझना चाहिए जिन कासन को हम अभी झेल रहे हैं वह हमारे ही मृत कर्मों का खेल है यदि यह मान लिया जाए तो यह भी प्रमाणित हो जाता है कि वह फिर हमारे ही द्वारा नष्ट किया जा सकेंगे फतेहपुर उठो साहसीबानो वरियावन हो सब उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लोयाद रखो कि तुम स्वयं ही अपने भाग्य के निर्माता हो हम जो कुछ बोलिए सहायता चाहते हैं वह हमारे भीतर ही विद्यमान है इसलिए हमें इस ज्ञान रूपी शक्ति के सहारे बल प्राप्त करना चाहिए और अपना भविष्य अपने हाथों से निर्मित करना चाहिए अब समस्त भविष्य हमारे सामने पड़ा हुआ है सर्वदा हम इस बात का स्मरण रखें कि हमारा प्रतीक कार्य संचित रहेगा असद चिंता या असत कार्य शेरों की तरह हम पर कूद पड़ने की चेष्टा करेंगे उसी क्षण ही हमारा सत्य विचार एवं सात कार्य भी हजारों देवताओं की शक्ति लेकर सदा हमारी रक्षा के लिए तैयार रहेंगे

2.10 अमरत्व

कार्य कारण का व्यक्त रूप है कार्य एवं कारण में कोई मौलिक भेद नहीं होता वस्तुतः एक ही आत्मा है और हम सब अलग-अलग नहीं अपितु एक आत्मा ही है इसे टच प्रकृति के पीछे वही है जिसे हम आत्मा कहते हैं एक ही पुरुष है जो एकमात्र सकता है इस परिवर्तनशील जगत में जो उसे अपरिवर्तनशील को देखा है और जो उसे अपने आत्मा के आत्मा के रूप में देखा है अपना स्वरूप मानता है वही मुक्त है आनंद में है वहीं लक्ष्य पर पहुंच गया है इसलिए समझ लो कि तुम ही वह हो तुम ही जगत के ईश्वर हो तब तो मासी हमें दुर्बल कौन बना सकता है कौन भयभीत कर सकता है जगत में तुम ही तो एक मात्र सट्टा हो तुम्हें किसका डर है खड़े हो जाओ मुक्त हो जो समझ लो कि जो कोई विचार या शब्द तुम्हें दुर्बल बनता है वही अशुभ है तुम आत्मा हो तुम ही जगत के ईश्वर हो शिवोहम मैं पूर्ण सच्चिदानंद हूं एक सिंह की भांति पिंजरा तोड़ दो अपने श्रृंखलाएं बंधन तोड़कर सदा के लिए मुक्त हो जाओ तुम्हें किस काम है तुम्हें कौन रोक सकता है बंधन अज्ञान और भ्रम कोई तुम्हें पकड़ नहीं सकता शुद्ध स्वरूप हो तुम नित्यानंद में हो तुम जगत की आत्मा

हो तुम ही सूर्य चंद्र तारों समस्त जगत तुम ही हो किसी से घृणा करोगे और किसी से झगड़ा करोगे या समझ लो कि तुम ही वह हो और इसी सोच के अनुसार समस्त जीवन को बनाओ जो इस तत्व को जानकर समस्त जीवन का उसी के अनुरूप गठन करता है वह फिर कभी आज्ञा एवं अंधकार में नहीं पड़ेगा

2.11 बहुत्व में एकत्व

आनन्त की खोज अनंत में करनी होगी सीमित वस्तुओं में उसे असीम अनंत की खोज व्यर्थ है और हमारी अंतर्वती आत्मा ही एकमात्र अनंत तत्व है शरीर मन आदि जो जगत प्रपंच देखते हैं अथवा जो हमारी चिंताएं या विचार हैं उनमें से कोई भी अनंत नहीं हो सकता जो साक्षी पुरुष इन सब को देख रहा है अर्थात मनुष्य की आत्मा जो सदा जागृत है वही एकमात्र अनंत है इस जगत के अनंत कारण की खोज में हमें उसी में जाना पड़ेगा वेदांत का पहला कार्य है ऊपर से भिन्न प्रतीत होने वाले इस वह जगत में एक तत्व का पता लगाना हम देखते हैं कि जगत ना आशावादी है ना निराशावादी वह दोनों का मिश्रण है जो यहां नाना तो देखा है वह बारंबार मित्र को प्राप्त होता है उसे एक को देखो और मुक्त हो जो वास्तविक शक्ति एक है केवल माया में पड़कर अनेक हो गई है अनेक के पीछे मत तोड़ो बस उसी एक की ओर अग्रसर हो जाओ जिस प्रकार एक ही अग्नि जगत में प्रविष्ट होकर बह वास्तु के रूप में भिन्न-भिन्न रूप धारण करती है इस प्रकार सब भूतों की वह एक अंतरात्मा नाना वस्तुओं के भेद से उसे वस्तु का रूप धारण किए हुए हैं और सबके बाहर भी है हम सबको लेते हुए एक वेजवती नदी समुद्र की ओर भी जा रही है छोटे-छोटे कागज के टुकड़े टिके याद की भांति हम इसमें बहे जा रहे हैं हम भले ही इधर-उधर जाने की चेष्टा करें पर अंत में हम भी जीवन और आनंद के उसे अनंत समुद्र में अवश्य पहुंच जाएंगे

2.12 सभी वस्तुओं में ब्रह्म दर्शन

जीवन दुख पूर्ण है यह जगत दुख पूर्ण है इस बात को कोई भी व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता किंतु अधिकांश धर्म इसका प्रतिकार करते हुए कहते हैं कि जगत कुछ भी नहीं है इस जगत के बाहर ऐसा कुछ है जो वास्तविकसित है वेदांत कहता है विभिन्न धर्म जो कुछ कहते हैं सब सत्य है इस जगत में हम जो कुछ चाहते हैं उसकी क्या कोई सीमा है क्या जगत अनंत नहीं है जगत में अनंत परिमाण में भावों के हृदय के विकास के लिए और उसके साथ-साथ अनंत परिमाण में शिक्षा और विचार का भी अवकाश या संभावना है वह दोनों ही समानांतर रेखा में प्रवाहित होती रहे जगत में दुख है इसका त्याग करो सत्य जानने के लिए सत्य का त्याग करना होगा जीवन प्राप्त करने के लिए मृत्यु का त्याग करना होगा इस विषय में कोई मतभेद नहीं हो सकते समस्त जगत को ईश्वर के द्वारा आच्छादित करना होगा हमें इसी प्रकार सर्वत्र ब्रह्म दर्शन करना होगा प्रत्येक वस्तु के भीतर ईश्वर के दर्शन करना होगा हमें संसार का त्याग करना होगा जब हम संसार का त्याग करते हैं तो आखिर में क्या बचता है मंत्र ईश्वर वस्तुओं के अंतर तल में वही एक तत्व दमन है सभी तो एक हैं और यदि भीतर प्रवेश करो तो देखोगे अन्य प्राणी भी एक हैं जो इस अयोध्या में जगत की उपासना करता है वह अंधकार में प्रवेश करता है जो आजीवन इस संसार की उपासना करते हैं उससे ऊपर कुछ भी काम नहीं कर पाए वह और भी घने अंधकार में प्रवेश करते हैं पर जिसने इस परम सुंदर प्रकृति का रहस्य जान लिया है जो प्रकृति की सहायता से देवी प्रकृति का चिंतन करते हैं वह मृत्यु का अतिक्रमण करते हैं देवी प्रकृति की सहायता से अमृत्व का भोग करते हैं है सूर्य हिरण स्वर्ण के पत्र द्वारा तुमने सत्य का मुंह ढक रखा है उसे हटा दो जिससे मुझे सत्य धर्म को उसका दर्शन हो सके तुम्हारे अंदर जो यह परम पुरुष है वही मैं हूं

2.13 अपरोक्षानुभूति

हम हम जानते हैं कि सभी बाह्य विषय प्रत्यक्ष के ऊपर निर्भर रहते हैं सभी प्रकार का ज्ञान प्रत्यक्ष के ऊपर स्थापित है किंतु अधिकांश लोग सोचा करते हैं कि धर्म तत्व में प्रत्यक्ष अनुभूति लाने की संभावना नहीं है यदि कुछ धर्म तत्व भाव करना हो तो वह तर्क के द्वारा ही होगा किंतु वास्तविक धर्म चर्चा का विषय नहीं है वह तो प्रत्यक्ष अनुभूति का विषय है हमें अपनी आत्मा का अन्वेषण करके देखना होगा और उसे समझना होगा जिसे हम समझेंगे उसका साक्षात्कार करना होगा यही धर्म है हमारे जीवन के अन्य प्रश्नों के संबंध में भी ऐसा ही है हमें प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त करनी होगी अपरोक्ष अनुभूति का भाव मन में सर्वदा जागरूक रखना उचित है धर्म ग्रंथो या मंदिरों में नहीं अपितु अतिरिक्त तत्व की अपरोक्ष अनुभूति में यह निहित है इंद्रियों से धर्म अनुभव नहीं हो सकतापूर्णता सर्वदा ही अनंत है हम

वस्तुतः वही अनंत स्वरूप हैं अपने इस अनंत स्वरूप को अभिव्यक्त करने की चेष्टा मात्रा हम कर रहे हैं अनंत जगत में अवश्य अभिव्यक्त हो सकता है इंद्रियों में आसक्त होना अत्यंत सहज है और भी सहजिया है कि हम अपने प्राचीन आधार के वशीभूत होकर केवल आहार पान में मत रहे इंद्रियों की मृत्यु अटल है हमें मृत्यु से अतीत होना होगा मृत्यु कभी भी सत्य नहीं है त्याग हमें सत्य तक पहुंचाएगा जब हम मैं की चिंता से विराट होते हैं मैं का जब नाश होता है हमारे अंदर के प्राचीन मनुष्य की मृत्यु होती है इस समय हम सत्य में पहुंचते हैं वह सत्य ही ईश्वर है वही हमारा प्रकृति स्वरूप है वह सर्वदा ही हमारे साथ रहता है उसी में सर्वदा वास करो अब तुम देखोगे उसमें रहना ही एक मात्र आनंद पूर्ण अवस्था है अन्य सभी अवस्थाएं मृत्यु हैं आत्मभाव में पूर्ण होना ही जीवन है हम जो कुछ भी दुख भोग जाते हैं वासना से ही उसकी उत्पत्ति होती है तुम्हें कुछ अभाव है वह पूरा नहीं होता फल दुख स्वर्ग का राज्य तुम्हारे भीतर है वेदांत कहता है कि वह पहले से ही तुम्हारे भीतर मौजूद है और सभी धर्म यही बात कहते हैं आज्ञा के कारण हम सोचते हैं कि हमने उसे खो दिया और समस्त जगत में उसको पाने के लिए रोते हैं वेदांत में कार्य करने का निषेध नहीं करता अभी तो हमें इस माया के जगत का त्याग करने हेतु कहता है त्याग की प्रकृति या अर्थ है सब जगह ईश्वर दर्शन सब जगह ईश्वर बुद्धि कर लेने पर ही हम वास्तविक कार्य करने में समर्थ होंगे सब पदार्थ का एक तत्व वेदांत का एक प्रमुख विषय है वेदांत सिद्ध करता है कि हमारा समस्त दुख आज्ञा से उत्पन्न है वह ज्ञान कुछ नहीं यही बहुत दुख की धारणा है यह कि मनुष्य मनुष्य से भिन्न पुरुष और स्त्री विभिन्न युवा और शिशु भिन्न जाति जाति भिन्न पृथ्वी चांद से भिन्न एक प्रमाण दूसरे परमाणु से भिन्न है ऐसा दिशा ही वास्तव में सब दुखों का कारण है प्रकृति जीवन लाभ करने के लिए हमें इसके बाहर जाना होगा।

2.14 आत्मा का मुक्त स्वभाव

पहले जो आत्मा के स्वाभाविक मुक्त और बढ़ाया भाव संबंधी विचार उठा था जड़वाद और आत्मवाद का तर्क उसी का केवल स्थल भाव है दर्शन समूह का सूक्ष्म भाव से विश्लेषण करने पर हम देखेंगे कि उनमें भी इन दोनों मतों का संघर्ष है एक दल कहता है मनुष्य का तथाकथित पवित्र और मुक्त स्वभाव ब्रह्म भाव है और दूसरा दलबद्ध भाव को ब्रह्म ब्रह्म आत्मक कहता है इस जगह हम दूसरे दल के साथ सहमत हैं अर्थात हमारा बढ़ाया भाव ही परमात्मा है हम बंद नहीं वरन् नित्य मुक्त हैं वेदांत कहता है कि सदा साधारण मनुष्य के लिए यह परम शक्ति ही एक मात्र अवलंबन ही है उसे अंतिम लक्ष्य पर पहुंचने के लिए यही एकमात्र उपाय है सभी से यही कहना कि हम वही हैं बार-बार ऐसा कहने से बल मिलेगा यह भाव क्रमशः अधिकारी पोस्ट होकर हमारे हृदय में हमारे सभी भावों में मिल जाएगा अंत में हमारी नस-नस में शरीर के प्रत्येक भाग में समा जाएगा ज्ञान सूर्य की किरणें जितनी भी अधिक आगे बढ़ती हैं आज्ञा उतना ही दूर भाग जाता है और धीरे-धीरे एक समय आता है जबकि सारा ज्ञान बिल्कुल लुप्त हो जाता है एवं एक एकमात्र ज्ञान पूर्ण ही अवशिष्ट रह जाता है। अवश्य ही यह वेदांत अनेकों को भयानक मालूम हो सकता है किंतु उसका कारण को संस्कार है ऐसे बहुत लोग हैं जिससे मैं यह कह दूं कि इस दुनिया में शैतान नाम की कोई चीज नहीं तो वह समझेंगे कि धर्म का सत्यानाश हो गया उन लोगों का कहना है कि शैतान के न रहने से धर्म किस तरह कायम रह सकता है यदि हम पर

अंकुश लगाने वाला कोई ना रहे तो फिर धाम कैसा शासन करने के लिए यदि कोई ना रहे तो हम अपना जीवन कैसे निर्वाह कर सकते हैं सच बात तो यह है कि हमें इस प्रकार का व्यवहार अच्छा लगने लगता है इस भाव से रहना हमारा अभ्यास हो गया है और इसलिए हम ऐसे जीवन को पसंद करते हैं प्रतिदिन यदि हमें किसी ने नहीं डाटा तो हमें सुख नहीं मिलता और यह वही को संस्कार है पर बात कितनी भी भयानक क्यों ना मालूम हो ऐसा एक समय अवश्य ही आएगा जब अतीत की सारी बातों का स्मरण कर जिनको संस्कारों ने शुद्ध अंतरात्मा पर अच्छा धन फैला दिया था हम उन प्रत्येक की हंसी उड़ाएंगे और आनंद सत्य और दृढ़ता के साथ रहेंगे कि मैं ही वह हूं चिरकाल वही था और सर्वदा वही रहूंगा यह दे मेरी नहीं है ना मैं डे के अंतर्गत विकार एवं अंधविश्वासों के अधीन हूं मैं सच्चिदानंद स्वरूप हूं मैं शिव हूं।

2.15 सारांश

ज्ञान योग इस अनुभूति पर आधारित है कि बंधन का मूल कारण आज्ञा है विवेकानंद के अनुसार आज्ञा का अर्थ सत्य के स्वरूप का आज्ञा है ज्ञान योगी की पर्दा में सभी भेद समाप्त हो जाते हैं यहां तक की असीम समाधि की अवस्था में आत्मा तथा ब्रह्म का भेद मिट जाएगा ज्ञान योग का अंतिम लक्ष्य है पूर्ण ज्ञान इस अवस्था में उसे पूर्ण एक तत्व का ज्ञान हो जाता है यही आत्मा का मोक्ष है यही ब्रह्म ज्ञान है

2.16 उपयोगी पुस्तकें

1. ज्ञान योग - स्वामी विवेकानंद
2. विवेकानंद साहित्य- स्वामी विवेकानंद
3. ज्ञान योग परिचय - स्वामी विवेकानंद
4. समकालीन भारतीय दर्शन - डॉक्टर लक्ष्मी सक्सेना
5. समकालीन भारतीय दर्शन - डॉक्टर बसंत कुमार लाल ।

2.17 बोध प्रश्न

1. ज्ञान योग का उद्देश्य क्या है?
2. आत्मा का मुक्त स्वभाव क्या है?
3. विवेकानंद के अनुसार जगत क्या है?
4. विवेकानंद के अनुसार ज्ञान योग क्या है?

----------000----------

खंड -1

इकाई -3 राजयोग

इकाई की रुपरेखा

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 राज योग या अष्टांग योग क्या है?

3.3 अष्टांग योग के कितने अंग हैं

3.4 यम

3.4.1 अहिंसा

3.4.2 सत्य

3.4.3 अस्तेय

3.4.4 ब्रहमचर्य

3.4.5 आपरिग्रह

3.5 नियम

3.5.1 शौच

3.5.2 संतोष

3.5.3 तप

3.5.4 स्वाध्याय

3.5.5 ईश्वर प्राणिधान

3.6 आसन

3.7 प्राणायाम

3.8 प्रत्याहार

3.9 धारणा

3.10 ध्यान

3.11 समाधि

3.12 अष्टांग योग के लाभ

3.13 सारांश

3.14 उपयोगी पुस्तकें

3.15 बोध -प्रश्न

----------0000----------

3.0 प्रस्तावना

संसार के अन्य विज्ञान की भांति राजयोग भी एक विज्ञान है यह विज्ञान मन का विश्लेषण कथा 3 रियर जगत के तथ्यों का संकलन करता है इस आप ऑल और पीटर सभी ने जिंस क्योंकि शिक्षा दी उनका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने का दावा किया यह प्रत्यक्ष संभोग द्वारा प्राप्त होता है योग हमें चढ़ तक तक को अपना दास बनाने की शिक्षा देता है योगा अर्थ छोड़ना अर्थात जीवात्मा को परमात्मा के साथ जोड़ना मिलाना

मन चेतना में और उसके नीचे के अस्तर में कार्य करता है हम लोग जिसे चेतना कहते हैं यह हमारे स्वरुप की अनंत सिंह कल आती हे कड़ी मात्र हे केवल ईश्वर ही हमारा लक्ष्य है और उसकी प्राप्ति ना हो पाना ही हमारी मृत्यु है। साधक के लिए तीन बातों की आवश्यकता है पहली है एक और पागलों की केंद्रीय कामवासना का त्याग और केवल भगवान और सबको लक्ष बनाना दूसरी है सब और भागवत प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा जल में डूबता मनसे जैसे हवाई के लिए व्याकुल होता है वैसे ही व्याकुल हो जाओ ।

केवल ईश्वर को ही चाहो और कुछ भी स्वीकार ना करो कि जो आभास मात्र हे उससे धोखा न खाओ सबसे भी मुख होकर केवल ईश्वर की खोज करो तीसरी बात में छा अभ्यास हैं

1. मन को बहिर्मुख ना होने देना।

2. इंद्रिय निक राह 3 मन को अंतर मुख बनाना 4. प्रतिकार रहित सहिष्णुता या पूर्ण तितिक्षा 5. मां को एक भाव में स्थिर रखना डे को समझ रखो और उसका चिंतन करो उसे कभी अलग ना करो 6 अपने स्वरूप का सतत चिंतन करो अंधविश्वास का परित्याग कर दो मैं टच हूं इस तरह सोचते हुए अपने को सम्मोहित ना करो जब तक तक तुम ईश्वर के साथ एकात्मता की अनुभूति ना कर लो तब तक दिन-रात अपने आप को बताते रहो कि तुम यथार्थ है क्या हो इन साधनाओं के बिना कोई भी फल प्राप्त नहीं हो सकता हमें इंद्रिय जगत की सीमाओं के पार जाना है और बुद्धि से भी अतीत होना है और ऐसा करने की शक्ति हमें है भी

3.1 उद्देश्य

राजयोग सभी लोगों से अधिक समृद्ध माना जाता है क्योंकि इसमें प्रत्येक प्रकार के योग्य की कुछ ना कुछ सामग्री अवश्य मिल जाती है राजयोग महर्षि पतंजलि द्वारा रचित अष्टांग योग का वर्णन करता है राजयोग का विषय चित्र वीडियो का निरोध करना है महर्षि पतंजलि ने समाहित चित्र वालों के लिए अभ्यास और वैराग्य तथा विक्षिप्त चित्र वालों के लिए क्रिया योग का सहारा लेकर आगे बढ़ने का रास्ता सुखाया है इन साधनों का उपयोग करके साधक के क्लेशों

का नाश होता है चित्र प्रसन्न होकर ज्ञान का प्रकाश फैलता है और विवेक ख्याति प्राप्त होती है प्रत्येक व्यक्ति में अनंत ज्ञान और शक्ति का आवास है राजयोग उन्हें जागृत करने का मार्ग प्रदर्शित करता है मनुष्य के मन को एकाग्र कर उसे समाधि नाम वाली पूर्ण एकाग्रता की अवस्था में पहुंचा देता है स्वभाव से ही मानव मन चंचल है वह एक क्षण भी किसी वस्तु पर ठहर नहीं सकता इस मां की चंचलता को नष्ट कर उसे किसी प्रकार अपने काबू में लाना किसी प्रकार उसकी बिक्री हुई शक्तियों को समेट कर सर्वोच्च डी में एकाग्र कर देना यही राजयोग का विषय है जो साधक प्राण का संयम कर प्रत्याहार धारणा द्वारा इस समाधि अवस्था की प्राप्ति करना चाहते हैं उनके लिए राजयोग बहुत उपयोगी है "प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है भाई एवं अंतर प्रकृति को वशीभूत कर आत्मा के इस ब्रह्म भाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है कम उपासना मां संयम अथवा ज्ञान इनमें से एक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपना ब्रह्म भाव व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ बस यही धर्म का सर्वस्व है मत अनुष्ठान शास्त्र मंदिर अथवा अन्यवाही क्रियाकलाप तो गोद अंग प्रत्यंग मात्र हैं

3.2 राज योग या अष्टांग योग क्या है?

राजयोग का शाब्दिक अर्थ है सभी प्रकार के योग प्रणालियों में सबसे श्रेष्ठ या उत्तम प्रणाली भारत में जितने भी वेद मत पर आधारित ग्रंथ व दर्शन है उन सब की यही मानता है कि जीवन का एक ही लक्ष्य है और वह है पूर्णता को प्राप्त करके आत्मा को जीवन मृत्यु के चक्र से मुक्त कर लेना इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए स्वामी विवेकानंद के अनुसार जो सर्वश्रेष्ठ माध्यम है वही है राजयोग्य अष्टांग योग इसमें लगभग सभी प्रकार के योग प्रणालियों का कुछ अंश अवश्य ही मिल जाता है जिसकी वजह से यह प्रणाली सर्व सुलभ और सर्व सम बन जाती है स्वामी विवेकानंद जी ने राजयोग पुस्तक की भूमिका में पतंजलि के सूत्रों की महत्ता का वर्णन करते हुए स्वयं कहां है कि पतंजलि सूत्र राजयोग का शास्त्र है और राजयोग पर सर्वोच्च प्रामाणिक ग्रंथ है अन्य अन्य दार्शनिकों का किसी न किसी दार्शनिक विषय में पतंजलि से मतभेद होने पर भी वे सभी निश्चित रूप से उसकी साधना प्रणाली का अनुमोदन करते हैं राजयोग का अंतिम अंग समाधि है तथा स्वामी विवेकानंद के अनुसार समाधि प्रत्येक मनुष्य ही नहीं अभी तो प्रत्येक प्राणी का भी अधिकार हैइसे निम्नतम प्राणी से लेकर अत्यंत उन्नत देवता तक सभी कभी ना कभी अवश्य प्राप्त करेंगे और जब किसी को यह अवस्था प्राप्त हो जाएगी तभी वह सभी बंधनों से मुक्त होगा

3.3 अष्टांग योग के कितने अंग हैं

राजयोग का आधार पतंजलि के अष्टांग योग मार्ग पर आधारित है उनके आठ अंग इस प्रकार हैं

1. यम
2. नियम
3. आसान
4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार
6. धरना
7. ध्यान
8. समाधि

इसमें पहले दो अंग अर्थात यह और नियम सामाजिक तथा सांसारिक के साथ-साथ हमारे नीचे व्यवहार में भी कुशलता और एकरूपता लाने में हमारी सहायता करते हैं जबकि अन्य अंग हमारे आत्मिक सारी रिकॉर्ड मानसिक विक्षेपों को दूर करते हैं इसलिए अगर हम साधना के उच्चतम शिखर पर अर्थात मुक्ति को प्राप्त करना चाहते हैं तो पहले हमें इन अटो श्रेणियां से होकर गुजरना होगा और इसमें अपनी कुशलता लानी ही होगी

3.4 यम

यामाहा अष्टांग योग का प्रथम अंग है अहिंसा सत्य असते ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह यह पांच यम हैं

3.4.1 अहिंसा

अहिंसा- मन वचन और कर्म आदि से किसी के साथ हिंसा न करना किसी का अहित ना चाहना सभी का सम्मान करना और सभी के लिए प्रेम भाव रखना ही अहिंसा है

3.4.2 सत्य

सत्य-जो चीज जैसी है उसे वैसा ही स्वीकार करना और वैसा ही व्यक्त करना सत्य है

3.4.3 अस्तेय

अस्तेय - इसका शाब्दिक अर्थ है चोरी ना करना किसी चीज को प्राप्त करने के लिए आने वाले चोरी के भाव से भी दूर रहना

3.4.4 ब्रहमचर्य

ब्रह्मचर्य-शरीर के सभी सामर्थ्य की संपूर्ण अच्छा करना व्यभिचार से दूर रहना इंद्रियों को अपने वश में रखना

3.4.5 आपरिग्रह

आपरिग्रह -बनवारी वसई से अनावश्यक वस्तुओं वह अनावश्यक विचारों को त्याग देना या उनका संग रहना करना सिर्फ उतना ही लेना और रखना हां जितने की जरूरत हो

3.5 नियम

अष्टांग योग का दूसरा अंग है नियम नियम भी पांच होते हैं सोच संतोष तब स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान

3.5.1 शौच

शौच -शरीर वह मन को पवित्र रखना ही सोच है हमारा शरीर स्नान साथ एक भोजन मल त्याग इत्यादि से पवित्र होता है तो वही मन राग द्वेष के त्याग और अंतकरण की शुद्धि से पवित्र होता है

3.5.2 संतोष

संतोष-अपना कर्म करते हुए जो भी फल प्राप्त हो घुसे ही स्वर्ग कृपा समझकर उसी ने संतुष्ट रहना और लालच न करना

3.5.3 तप

. तप -सुख दुख सर्दी गर्मी आर्यन तो में भी समभाव रखते हुए शरीर वामन को साथ ले ना

3.5.4 स्वाध्याय - स्वाध्याय-ज्ञान ताप्ती के लिए धर्म शास्त्रों का विवेक पूर्ण अध्यन करना संतो के सानिध्य में सत्संग करना वह सब विचारों का आदान प्रदान करना

3.5.5 ईश्वर प्राणिधान - ईश्वर की भक्ति करना पूर्ण मनो योग से ईश्वर को समर्पित होकर उनके नाम रोक गुणों लीला इत्यादि का श्रावण उच्चारण और मनन करना चिंतन करना यम और नियम के विशेष के विषय में सामी विवेकानंद जी कहते हैं यह नियम चरित निर्माण के साधन है इनको न्यू बनाएं बिना किसी तरह की योग साधना सिद्ध ना होगी।

3.6 आसन - आस्था नियुक्ति सरंगा शासन पतंजलि योग दर्शन के अनुसार शरीर की जिस स्थिति में रहते हुए सुख का अनुभव होता है उस सारे जी स्थिति में स्थित पूर्वक अधिक देर तक सुख पूर्वक रहा झा सकता हो उस स्थिति विशेष को आसन कहा जाता है। आसन ना केवल शरीर को लचीला बनाता है बल्कि यह शरीर की सक्रियता और मानसिक एकाग्रता को भी बेहतर करता है प्रतेक व्यक्ति की शारीरिक संरचना में कुछ विभिन्नताएं होती है अतः उसे अपनी सुविधा के अनुसार ही आशंका चैन करना चाहिए लेकिन कुछ बातें ऐसी भी हैं जो सभी के लिए अनिवार्य और आवश्यक है स्वामी विवेकानंद जी इस विषय में कहते हैं- "आसन के संबंध में इतना समझ लेना होगा कि मेरुदंड को सही स्थिति नहीं रखना आवश्यक है ठीक से सीधा बैठना होगा वॉच रीवा और मस्तक सीधे और सम उन्नत रहे जिससे देविका साया बहार पत्रियों पर पड़े आसन अनेक प्रकार के हैं जैसे मरघट आसन मयूर आसन गोमुख आसन इत्यादि साधना में लंबे समय तक बैठने की रे कुछ विशेष प्रकार के आसन को ही उपयुक्त माना जाता है जैसे सिद्धा सन पद्मासन इत्यादि जब तक बहुत कुछ अवस्था प्राप्त ना हो जाए तब तक प्रतेक साधकों इन हाथों में नियमानुसार रोज बैठना पड़ता है और अंततः एक अवस्था आती है जब व्यक्ति शासन में पूर्ण थापा रंगत खो जाता है इस अवस्था को आसन सिद्धि कहते हैं

3.7 प्राणायाम-

आस्था मोका चौथा अंग है प्राणायाम था डायन दो शब्दों अर्थात प्राण और आयाम से मिलकर बना है प्राण शब्द का अर्थ चेतना शक्ति और आयाम शब्द का अर्थ है यमन करना कॉमा संयम करना अर्थात मैं वक्त करना अतः स्वामी विवेकानंद मानते हैं कि प्राणायाम का अर्थ है सांसो को लय बंद करके प्राणों का संयम कर लेना योग्य के अनुसार मानव शरीर में प्रमुख 3 सोच मना लिया है जिनसे होकर ऊर्जा समस्त शरीर के विभिन्न अंगों और नारियों में प्रवाहित होती है यह तीन नालियां हिता पिंड ला और सु सु ना जो कराया मिस्त्री अवस्था में रहती हैं सो सुना में शक्ति प्रवाह को हम कुंडलिनी जागरण के सकते हैं शुभ नामे सकती प्रवाह होने के साथ ही व्यक्ति ने मनवा चेतना के अस्तर पर अनेक बदलाव होते हैं जैसे 11 पर्दा हटा जा रहा हो तब योगी जगत की सूचना कारण रोक में उपलब्धि करते हैं प्राणायाम साधनों के द्वारा इसी नाड़ी को जागृत किया जा सकता है और चेतना के कुछ आया मोको महसूस किया जा सकता है प्राणायाम से जब स्वास पर स्वास्थ के गति को लैब ध्यान नियमित किया जाता है तो शरीर के सारे परमाणु एक ही दिशा में गतिशील होने का प्रयत्न करते हैं इससे येड़ा और इन गला में वह रही प्राण ऊर्जा धिस सु ना में प्रवाहित होने लगती है जिससे व्यक्ति एकाग्र चित और सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है

प्राणायाम 3 प्रकार के हैं पहला अधम दूसरा मध्यम तीसरा उत्तम जिस कारण आयाम में 12 सेकेंड तक वायु का पूर्ण किया जाता है उसे अधम प्राणायाम कहां जाता है इसी प्रकार जिस प्राणायाम में 24 हवा 36 सेकंड तक वायु का पूर्ण किया जाता है उन्हें रमसा मध्यम और उत्तम प्राणायाम कहां जाता है स्वामी विवेकानंद प्राणायाम के विषय में कहते हैं जो दिन में केवल एक या दो बार अभ्यास करेंगे उनके शरीर और मन कुछ स्थिर हो जाएंगे और उनका स्वर मधुर हो जाएगा परंतु जो कमर बांधकर साधना के लिए आगे बढ़ेंगे उनकी कुंडलिनी जागृत हो जाएगी उनके लिए प्रकृति नया रूप धारण कर लेगी उनके लिए ध्यान का द्वार खुल जाएगा ।

3.8 प्रत्यहार-

अष्टांग योग का पांचवा अंग प्रत्यय हार है प्राकृतिक तो पर मनुष्य की जितना बहिर्मुखी होती है इसलिए हमारी इंद्रियां वामन हमें हजारों बाहरी विषयों में उलझा रखती हैं और हम विषयों के दांत बंद जाते हैं इस दा सकते कारण मनुष्य ने प्रकार के दुष्कर्म करता है और बाद में उसके बुरे परिणाम भी भोगता है अतः मन को नियंत्रित वास अनियमित करना और उसे विभिन्न इंद्रियों के साथ संयुक्त ना होने देना ही प्रत्यय हार है स्वामी विवेकानंद इस विषय में कहते हैं रतिया हार का अर्थ है एक और हरण करना अर्थात खींचना मन की बाहर गति को रोक कर इंद्रियों की अधीन ता से मन को मुक्त करके उसे भीतर की ओर खींचना इसमें सफल होने पर हम चरित्रवान होंगे और तभी समझेंगे कि हम मुक्ति के मारने बहुत दूर बढ़ गए हैं इसे पहले तो हम मशीन मात्र हैं।

3.9 धारणा-

धारणा अष्टांग योग का छठा अंग है धारणा का अर्थ है धारण, धारण अर्थात अपने मन और चित्र को देखे भीतर या उसके बाहर किसी स्थान विशेष पर केंद्रित याद धारण करना। धारण किया हुआ चित जैसी कल्पना करता है वैसा ही घटित होने लगता है धारणा में किसी विशेष स्थान पर ध्यान लगाने की विधि के बारे में स्वामी विवेकानंद कहते हैं मान लो दे के एक बिंदु में मन को धारण करना है इसे कार में पड़ करना बड़ा कठिन है अतः सहज उपाय यह है कि ह्रदय में एक उसकी भावना करो और कल्पना करो कि वह ज्योति पूर्ण है चारों ओर उस जोत की आभा दिख रही है उसी जगह मन की धारणा करो।

3.10 ध्यान-

ध्यान एक विज्ञान है जिसके अंतर्गत हम अपने चित को एकाग्र करने में सफल होते हैं तथा हमें अपनी मानसिक शक्तियों को एक स्थान पर केंद्रित करने में सहायता मिलती है ध्यान से ढकी प्राप्ति होती है और हमारे सारे clash का नाश होता है जिस प्रकार बाधा रहे छेत्र में दीपक का प्रकाश फैलता है ठीक उसी प्रकार ध्यान के नियमित अभ्यास से हमारी आत्मा सोती और आध्यात्मिक प्रगति होती रहती है

स्वामी विवेकानंद ध्यान के विषय में कहते हैं जब मन को देह के भीतर या उसके बाहर किसी स्थान में कुछ समय तक स्थित रखने के निमित्त प्रशिक्षित किया जाता है तब उसको उस दिशा में अभीछिनन गति से प्रवाहित होने की शक्ति प्राप्त होती है इस अवस्था को ध्यान कहते हैं।

3.11 समाधि

अस्थाई योग का अंतिम भंग है समाधि जब व्यक्ति सभी योग साधना करने के पश्चात मन को भाए वस्तुओं से हटा कर निरंतर ध्यान में लीन रहता है तो वह समाधि की अवस्था होती है इस अवस्था में योगी को स्वयं का भान नहीं रहता और वह विभिन्न अंगों प्राप्त करता है समाधि समय आती होती है अर्थात योगी को समय और कालका भूत नहीं रह जाता

फिर भी वह चेतना के स्तर पर पूर्ण चैतन्य होता है इस स्थिति में ज्ञाता और गे व ज्ञान टीनू का ही भेद मिट जाता है और योगी स्थित प्रज्ञा अर्थात परम शांति परम स्थिरता और परम जागृति की स्थिति प्राप्त करता है।

समाधि के विषय में स्वामी जी का कहना है जब ध्यान सती कितनी तीव्र हो जाती है कि मन अनुभूति के बाहरी भाग को छोड़कर केवल उसके अंतर भाभियां अर्थ की ओर एकाग्र हो जाता है तब उस अवस्था को समाधि कहते हैं समाधि मानव चेतना की उच्चतम अवस्था है जहां मैं कह मिट जाता है जीव के जीव भव का लोभ हो जाता है तथा पूर्ण आनंद स्वरुप आत्मा और परमात्मा का बोध प्रकट होता है जो समस्त युग प्रणाली और प्रतीक मानव जीवन का लक्ष्य है तथा जिसकी प्राप्ति के लिए प्रति जीव माया के इस संसार में संघर्ष कर रहा है ।

3.12 अष्टांग योग के लाभ-

आस्था युग के अभ्यास से शारीरिक मानसिक और आत्मिक उन्नति होती है जो हमारे भीतर से विद्या नष्ट करती है विद्या का नाश हो जाने से अंतकरण कि आप पवित्रता खत्म हो जाती है और हाथ में ज्ञान की प्राप्ति होती है जैसे जैसे साधक योग का कुशलता कौन अभ्यास करता है वैसे वैसे उसकी चित की गंदी सा होती जाती है और मिलता के खत्म होने से व्यक्ति के जितने ज्ञान की ज्योति जलती है

लाभ-

१.मानसिक लाभ -आस्था योग का निरंतर अभ्यास करने से आप तनाव चिंता इत्यादि मानसिक रोगों से बच सकते हैं तथा मानसिक रुप से आपको शांति प्राप्ति होती है

२. शारीरिक लाभ-यह शरीर को ऊर्जा में प्रधान करता है इसके लिए निरंतर अभ्यास से साधक का शरीर मजबूत और लचीला होता है

३. भावनात्मक लाभ- ऐसा कहा जाता है कि नकारात्मक भावनाओं से कई प्रकार की बीमारियां हो सकती है अतः जब आप अष्टमी योग का निरंतर अभ्यास करते हैं तो मानसिक शांति होने से भावनाओं पर नियंत्रण करना सीख जाते हैं साथ ही आपका मन देख सकारात्मक ऊर्जा और विचारों से भर जाता है

3.13 सारांश

विवेकानंद नेम ऑफ चमारन के रूप में एक अन्य मार्ग का उल्लेख किया है जिसे राजीव कहां जाता है इस मार्ग में अमृता की प्राप्ति के लिए मन तथा शरीर के पूर्ण नियंत्रण एवं अनुशासन की बात कही जाती है इसमें शरीर और मन को नियंत्रित करने के लिए कुछ स्पष्ट विधियां अनु संसद है विभिन्न आसन तथा प्रत्यय हार के ढंग अनु संस्था तथा मानता है कि कि नियम तक कठोर पालन से चर्म लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है

3.14 उपयोगी पुस्तकें-

1. राजयोग-स्वामी विवेकानंद

2-सरल राजयोग-स्वामी विवेकानंद

3-समकालीन भारतीय दर्शन -बसंत कुमार लाल

3.15 बोध प्रश्न

1 अष्टांग योग का क्या अर्थ है इसके कितने अंग हैं?

2. राजयोग क्या है समझाइए।

3. राजयोग का क्या उद्देश्य है इससे होने वाले लाभ का वर्णन कीजिए।

.....0000.....

खण्ड–2 श्री अरविंद

इकाई 4 - विकासवाद

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 अवतरण या अंतर्वलन

4.3 माया और लीला

4.4 विकास या उत्थान

4.5 विकास में निहित प्रक्रियाएं

4.6 सारांश

4.7 उपयोगी पुस्तकें

4.8 बोध- प्रश्न

----------00----------

4.0 प्रस्तावना

यह सृष्टि क्या है ! श्री अरविंद के दर्शन में माना जाता है कि परम सत्य की आह्लाद पूर्ण अभिव्यक्ति ही सृष्टि है अब परम सत्य पूर्णतया पूर्ण है किंतु वह अपने को व्यक्त करता है। प्रश्न हो सकता है कि ऐसा क्यों और कैसे होता है और इन प्रश्नों के समाधान स्वरूप श्री अरविंद सृष्टि तथा विश्व प्रक्रिया पर अपना विचार स्पष्ट करते हैं

श्री अरविंद सृष्टि का विचार प्रस्तुत करने हेतु दो प्रकार की प्रक्रियाओं को प्रस्तुत करते हैं जो कि दो प्रकार के गुना का प्रतिनिधित्व करते हैं प्रथम तो यह परात्मा का जगत के रूप में "अवतरण"(Descent) है और दूसरा यह जगत के रूपों का उच्चतर रूप में "आरोहण" या "उत्थान"(Ascent) है। इन दोनों गुणात्मक प्रक्रियाओं को समझने के लिए हमें श्री अरविंद के कुछ मूलभूत विचारों को समझाना पड़ेगा ।

4.1 उद्देश्य

श्री अरविंद का मानना है कि आध्यात्मिक उत्थान अथवा उत्कर्ष के बारे में जो भी बातें की जाती हैं उनके पीछे दो मूल धारणाएं होती हैं

1. पहले तो यह स्वीकार करके आगे बढ़ना होता है कि आदर्श की प्राप्ति संभव है और साथ ही हमें यह भी मानना आवश्यक होता है कि इस आदर्श और हमारे स्वरूप के बीच कोई विसंगति नहीं है क्योंकि यदि इन दोनों में स्वरूपता विसंगति हो तो हमारे लिए आदर्श को प्राप्त करना संभव हो जाएगा इस बात से यह संकेत प्राप्त होता है कि यह आदर्श हमारे स्वरूप के जैसा ही है। या आदर्श हमसे दूर इसलिए प्रतीत होता है क्योंकि हम अपने स्वरूप को ही भूल जा रहे हैं

2. उन हो चतर रूपों का दिन मित्रों को में अवतरण होता है इस कारण से हमारा उत्थान संभव है इस प्रकार हर प्रकार के उत्थान कहा दूसरा पक्ष होता है वह अवतरण। हम उत्थान में ऊपर उठते हैं और उत्थान तभी संभव होता है जब हम जी और उठ रहे हैं वह भी हमारी ओर आए इसे अरविंद एक उदाहरण द्वारा समझाने का प्रयास करते हैं कि यदि हम ज्ञान का उदाहरण दें तो जब हम ज्ञान प्राप्त करते हैं तो इसका अर्थ होता है कि हम ऊपर उठ रहे हैं जो ऊपर था उसकी ओर पढ़ रहे हैं किंतु इसका यह भी अर्थ है कि जो ज्ञान हमसे दूर था उच्चतर था वह अब हम तक उतर आया है इस प्रकार हमारे उत्थान के अनुरूप ज्ञान का अवतरण होता है श्री अरविंद के अनुसार आध्यात्मिक परिवर्तन में प्राप्त में का अवतरण होता है नहीं तो हमारा आध्यात्मिक उत्थान संभव नहीं हो पाएगा इस प्रकार सृष्टि का उद्भव क्या है परात्मा का यह अवतरण ही सृष्टि का उद्भव है या सृष्टि है

इस प्रकार श्री अरविंद के दर्शन में हम पाते हैं कि सृष्टि उत्थान तथा अवतरण की एक सम्मिलित प्रक्रिया है । उत्थान प्रक्रिया को श्री अरविंद विकास प्रक्रिया कहते हैं और "अवतरण" की प्रक्रिया को अंतर्वलन (Involution) प्रक्रिया कहते हैं जिन्हें समझना नितांत आवश्यक है।

4.2 अवतरण या अंतर्वलन

वेदांत में विवेचित सृष्टि संप्रत्यय के समान ही अरविंद द्वारा भी "भीम का विवेचन किया गया है थोड़ा अंतर इन दोनों में यह है कि अरविंद के विवरण में उनकी अपनी दृष्टि तथा उसे दृष्टि के रूप चर्चित संपरीतियों का प्रयोग हुआ है वेदांत में सामान्यत: सृष्टि का संबंध अविद्या से जोड़ा गया है इसके प्रभाव स्वरूप सृष्टि की वास्तविकता का भ्रम होता है अयोध्या अथवा आज्ञा के प्रभाव स्वरूप ही हम इस जगत को वास्तविक मान बैठते हैं जिसका अर्थ है कि इस प्रकार की दृष्टि एक प्रकार के विस्मृति पर आधारित है जहां सत्य के वास्तविक स्वरूप को हम भूल जाते हैं अद्वैत वेदांत में माना गया है कि वस्तुत सृष्टि का भी प्रश्न नहीं उठता क्योंकि वास्तविक दृष्टि से सृष्टि की प्रतीत एक प्रकार से ब्रह्मांड मूलक भ्रम (Cosmic Delusion) है

यहां पर यह जिज्ञासा उठ सकती है कि आखिर इस भ्रम की उत्पत्ति क्यों होती है इसके समाधान में वेदांत में या माना जाता है कि यह एक आनंद का खेल है जिसे वेदांत में लीला माना गया है

श्री अरविंद भी सृष्टि सृष्टि की विवेचना करते हुए मानते हैं कि यह आत्मा का अज्ञान के क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाना है (Plunge of the spirit into Ignorance) उनका मानना है कि अज्ञान ईश्वरीय चेतना की स्वयं को आंशिक रूप में रोक कर रखने की शक्ति है यह ईश्वरी चेतना का ही अंग है आज्ञा इश्वर से पृथक कोई विद्या नहीं है इस अज्ञान को ईश्वरीय ज्ञान के किसी निषेधात्मक पक्ष के रूप में नहीं देखना चाहिए और ना ही ऐसे अज्ञान की ईश्वर के साथ कोई विसंगत ही है वस्तुतः ईश्वरी चेतना एक छोर पर है तो पूर्ण ज्ञान शून्यता दूसरे छोर पर है अब चूँकी अज्ञान(Ignorance) इन दोनों के बीच है इसी कारण इसका विस्तार भी अधिक है अब यह ज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वरी चेतन जैसा नहीं है किंतु यह ज्ञान शून्य भी नहीं है और इसी क्षेत्र में सृष्टि आती है इस प्रकार कहा जा सकता है कि सत्य की अपने को आंशिक रूप में

रोक कर रखने की शक्ति जब कार्यरत होती है तो इसका तात्पर्य है कि सत्य अब अज्ञानके क्षेत्र की ओर उतर आया है और यही प्रक्रिया ही सृष्टि है।

अब यहां एक जिज्ञासा होती है कि क्या ज्ञान के क्षेत्र में रहते हुए सृष्टि नहीं की जा सकती थी क्यों निरपेक्ष शब्द अज्ञान के क्षेत्र में उतरने का निर्णय लेता है । क्या निरपेक्ष सत सीमित है या वह किसी बंधन में है जो उसे सृष्टि के लिए अज्ञान के क्षेत्र में अवतरित होना पड़ता है! किस तरह के आशंकाओं या जिज्ञासाओं के निवारण अर्थ श्री अरविंद कहते हैं की सृष्टि तो ज्ञान में रहकर भी हो सकती है परंतु इस प्रकार की सृष्टि एक उच्चतर सृष्टि होती जिसे केवल ज्ञानी अथवा द्रष्टा ही देख पाते और हम एक निम्नतर जगत का विवेचन कर रहे हैं जिसमें हम सभी सामान्य जीव रहते हैं यह अज्ञान के क्षेत्र में होने वाली सृष्टि है । सृष्टि पर इस प्रकार के विचार से हम यह समझ पाते हैं कि यह सृष्टि भ्रामक नहीं कहीं जा सकती क्योंकि यह ईश्वरी चेतन की ही सीमित मात्रा में अभिव्यक्ति है जिसका की निषेध नहीं किया जा सकता और इस वजह से इसे भ्रामक नहीं कह सकते।

श्री अरविंद और अद्वैत वेदांत के विचारों में इस प्रकार से अंतर स्पष्ट हो जाता है। श्री अरविंद का मानना है कि सृष्टि की सत्ता है इसका अपना स्थान है जो सत के साथ सुसंगत है, सृष्टि को भ्रम नहीं कहा जा सकता।

यह सृष्टि क्यों होती है? सत को अज्ञान के क्षेत्र में उतरने की क्या आवश्यकता है? इस तरह के प्रश्नों के उत्तर के समाधान हेतु श्री अरविंद अपने माया और लीला के संप्रत्यय को प्रस्तुत करते हैं ।

4.3 माया और लीला

यह सृष्टि क्यों हुई ? इस प्रश्न का उत्तर श्री अरविंद अपने लीला संप्रत्यय के माध्यम से देते हैं तथा यह सृष्टि कैसे हुई ? इसके उत्तर के लिए उन्होंने माया संप्रत्यय की व्याख्या की है।

श्री अरविंद वेदांत की भांति मानते हैं कि सृष्टि आनंद की अभिव्यक्ति है और इस सृष्टि के रहस्य में है हालात औलाद में सृष्टि का उद्भव होता है और यह हालत ही अस्तित्व में रहने का आधार है कारण है किंतु साथ ही सृष्टि की समाप्ति का रूप भी औलाद है उपनिषदों में बताया गया है कि आनंद से हम अस्तित्व होते हैं तथा आनंद में ही हमारी पर्नति होती है इस प्रकार यह माना जा सकता है कि सृष्टि आनंद की ही क्रीडा है और यह क्रीडा ही लीला है

हम इस सृष्टि के अंश हैं यह सृष्टि हर क्षण प्रवासी प्रतीत होती है ऐसा लगता है जैसे की कोई शक्ति है जो सतत ऐसा कर रही है जिसके परिणाम स्वरुप नियंत्रण नए-नए रूप व्यक्त होते हैं परंतु अगर हम विचार करें की इस प्रकार की सृजनात्मक क्रियाशीलता यह इस शक्ति के प्रवाह का प्रयोजन क्या है इसका कारण क्या है तो तो इसका समाधान इस उत्तर में ही निहित है कि यह सब क्रियाएं ए हालत पूर्ण क्रियाएं हैं सृष्टि के हर लाइव ताल हर गति आनंद की अभिव्यक्ति है यदि हम इस आधारभूत शब्द को समझने का प्रयास कर सकें और इसे अंधभूत करने का प्रयास करें तो हम भी उसे आनंद के अंश बन जाते हैं। यह सृष्टि उसी सच्चिदानंद का खेल है, वही खिलाड़ी है ,वही खेल स्थल है और वही संपूर्ण जगत प्रक्रिया का अंश है इस संपूर्ण जगत प्रक्रिया में जो आनंद है वही लीला है।

यहां यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि वह कौन सा ढंग है वह कौन सी प्रक्रिया है जिसके द्वारा सच्चिदानंद स्वयं को जगत में व्यक्त करता है। श्री अरविंद के अनुसार यह कोई जादुई प्रक्रिया नहीं है यह प्रक्रिया एक निश्चित ढंग और निश्चित नियम के अंतर्गत होती है जिसे श्री अरविंद माया कहते हैं। श्री अरविंद के अनुसार माया का प्रारंभिक अर्थ कुछ और था जो कि कालांतर में विकृत हो गया और कालांतर का अर्थ ही अधिक प्रचलित हो गया । अपनी प्रारंभिक अर्थ में माया सच्चिदानंद के अनुरूप ही है और यह एक ऐसी क्रियात्मक एवं सर्जनात्मक शक्ति है जो की असीमित को भी

सीमित रूप में व्यक्त कर सकती है । माया का प्रारंभिक अर्थ तो यही था जो कालांतर में विकृत होकर केवल 'भ्रम उत्पन्न करने वाली शक्ति' के रूप में प्रचलित हो गया। माया को छलावा एवं भ्रामकता के पर्याय के रूप में ग्रहण किया जाने लगा। दार्शनिकों द्वारा भी प्रायः इस अर्थ का इस अर्थ का प्रयोग किया जाने लगा श्री अरविंद के अनुसार माया के दूसरे विकृत अर्थ को महत्व नहीं देना चाहिए क्योंकि यदि हम माया को भ्रमित अथवा छलावा के अर्थ में ग्रहण करें तब तो यह संपूर्ण जगत ही भ्रामक सिद्ध हो जाएगा वस्तुत जगत भ्रम नहीं है क्योंकि अगर इस स्वप्न जैसी अवस्था के रूप में भी स्वीकार किया जाए तो उसे रूप में यह वास्तविक है जिस रूप में स्वप्न वास्तविक होता है स्वप्न स्वयं में वास्तविक ही होता है उसकी अवास्तविकता तो स्वप्न टूटने के बाद ही ज्ञात होती है । पुनः यह कहना कि यह सत के समान वास्तविक नहीं है अतः यह अवास्तविक है अनुचित है क्योंकि विभिन्न जगत बनते और मिटाते रहते हैं परंतु जगत निरपेक्ष सत्य के साथ सदैव जुड़ा ही रहता है कोई जगत तो सदा व्यक्त होता ही रहता है। हम ऐसे किसी भी कल की कल्पना नहीं कर सकते जहां सदैव केवल निरपेक्ष चेतन रहे और कोई जगत ना रहे। इस प्रकार स्वयं में जगत तो वास्तविक है और माया जगत के इस वास्तविक स्वरूप से संबंधित है

इस प्रकार से अरविंद माया के प्राथमिक प्रचलित अर्थ को ही स्वीकारते हैं अर्थात माया ऐसी शक्ति है जो सृष्टि का रूप हमारे सामने प्रदर्शित करती है और सच्चिदानंद की ही शक्ति है जो अनंत संत को सीमित रूप में व्यक्त करती है यह ऐसी शक्ति है जो पूर्ण सत्ता को अथवा पूर्णता को पृथक पृथक तत्वों में प्रतीत करा देती है सत्ता को सीमित रूप में , चेतन को सीमित चेतना के रूप में , अनंत आनंद को सीमित आनंद के रूप में आभासित कराती है इस प्रकार की अभिव्यक्ति से सत्य का पूर्ण रूप खंडित नहीं होता अपितु आनंद के खेल का एक पक्ष स्पष्ट होता है।

एक दृष्टि से देखा जाए तो श्री अरविंद ने माया के दूसरे निहितार्थ का भी उपयोग किया है पूर्ण शब्द की ओर से यदि माया को देखा जाए तो यह ब्रह्मांड मूलक ब्रह्म प्रतीत होता है और और इस अर्थ में भी माया को जगत कहा जा सकता है कि जगत परम सत्य नहीं है जगत अंतिम सत्य नहीं है । तथापि इससे ऊपर उठाना तभी संभव है जब माया के स्वरूप को पहले स्वीकार किया जाए या अनुभूत किया जाए क्योंकि ब्रह्म से अगर हमें ऊपर उठना है तो ब्रह्म के स्वरूप को समझना आवश्यक हो जाता है इस प्रकार इस दृष्टिकोण से भ्रम रूप जगत में भी एक प्रकार की सच्चाई है अपनी सीमित समझ और अपने सीमित भाषा के कारण हम इस जगत को ब्रह्मांड संबंधी ब्रह्म कह सकते हैं और ऐसा कह कर हम मात्र अपनी वैचारिकोटियों जो की सीमित है उसे असीम सत्ता पर लगाने का प्रयास कर रहे हैं और इसके अतिरिक्त हम कुछ कर भी नहीं सकते इस प्रकार हम जो की मानस की अवस्था में हैं अपनी मानसिक कोटियों की सीमित क्षमता के कारण जगत को ब्रह्मांड मूलक भ्रम (cosmic illusion)मान सकते हैं ।

4.4 विकास या उत्थान

श्री अरविंद के दर्शन में विकास प्रक्रिया को समझने का प्रयास करें तो हम पाते हैं कि श्री अरविंद के दर्शन में विकास अवतरण को स्वीकार करके ही अग्रसर होता है या विकास की प्रक्रिया आगे बढ़ती है । विकास का तात्पर्य है निम्नतर का उच्चतर में विकसित हो जाना और यह संभव कब होगा? जब उच्चतर का निम्नतर में अवतरण हो । ज्ञातव्य है कि श्री अरविंद सत्ता के आठ स्तरों की बात करते हैं सत्ता के इन आठ स्तरों के क्रम में ही यह दोनों प्रक्रियाएं चलती हैं जैसे उच्चतर रूपों का जड़ तत्व , प्राण तत्व , मन इत्यादि में अवतरण होने से ही इन तत्वों का उच्चतर रूपों में विकास संभव हो पाता है । जड़त्व से प्राण तत्वों का विकास इस कारण से ही संभव हो पाता है की प्राण तत्व जड़ तत्व में स्वयं उतर आया है। निम्न श्रेणी के तत्व उच्चतर श्रेणी में इसी कारण से विकसित हो पाते हैं कि उच्चतर श्रेणी का रूप इनमें अवतरित हो जाता है। कोई भी तत्व उच्चतर रूपों में तब तक नहीं विकसित हो सकता जब तक कि वह उच्चतर रूप उसमें न उतर जाए। शून्य से शून्य ही प्राप्त हो सकता है । यहां हमें सत्कार्यवाद की झलक मिलती है क्योंकि श्री अरविंद यह मानते हैं कि उच्चतर रूप सूक्ष्म तरीके से उन तत्वों में विद्यमान रहते हैं जिनका विकास उच्चतर रूपों में

होता है। अगर उच्चतर रूप सूक्ष्म तरीके से उन तत्वों में विद्यमान ना रहे तो उन तत्वों में इन उच्चतर रूपों का विकास संभव ही नहीं हो सकता । इस प्रकार श्री अरविंद विकास या उत्थान प्रक्रिया को अवतरण (Involution) की विपरीत प्रक्रिया मानते हैं। अर्थात विकास तथा अवतरण एक ही मार्ग में दोनों ओर से अग्रसर होने वाली प्रक्रिया है नीचे से विकास अग्रसर होता है और ऊपर से अवतरण अग्रसर होता है । यहां पर हमें अरस्तु के दर्शन की भी झलक मिलती है। विकासवाद को यदि समग्र दृष्टि से देखा जाए तो हम पाते हैं कि इस पूरी प्रक्रिया में जो अंत में स्थापित होता है वह इस प्रक्रिया के प्रारंभिक बिंदु पर अवतरित है। सर्वोच्च स्तर पर स्थित 'परम सत्' अवतरित होता है निम्नतम स्तर के बिंदु 'जड़ तत्व' में।

श्री अरविंद के विकास सिद्धांत की यह विशेषता है कि यह अन्य कई प्रकार के विकास सिद्धांतों को समावेशित कर लेता है विकासवाद के संबंध में प्राय चार प्रकार के दृष्टिकोण मिलते थे १.पुनरावृत्ति मुलक २. उदगमनात्मक ३. यंत्रवादी ४. प्रयोजनवादी

पुनरावृत्ति मुलक विकास सिद्धांत की मान्यता है कि काल के विकास में विकास प्रक्रिया एक ही जैसे रूपों को प्रकट करती रहती है। उदगमनात्मक विकास सिद्धांत की मान्यता है की विकास प्रक्रिया में है हर स्तर पर नवीन रूपों का प्रादुर्भाव होता रहता है।

यंत्रवादी विकास सिद्धांत मैं हर प्रकार के विकास की व्याख्या पूर्वगामी उपकरण के अनुरूप की जाती है। प्रयोजनवादी विकास सिद्धांत की मान्यता है की विकास का आधार वह उद्देश्य अथवा लक्ष्य हैं जिनको प्राप्त करना विकास का लक्ष्य है।

श्री अरविंद अपने विकासवादी सिद्धांत में इन उपर्युक्त सभी सिद्धांतों के प्रासंगिक अंशों को समावेशित कर लेते हैं इसके परिणामस्वरूप श्री अरविंद का यह सिद्धांत व्यापक और बौद्धिक दृष्टि से संतोषजनक प्रतीत होता है। श्री अरविंद के विकास के सिद्धांत को 'विकास का पूर्ण अद्वैत सिद्धांत'(Integral theory of Evolution) कहते हैं।

4.5 विकास में निहित प्रक्रियाएं

श्री अरविंद के विकास प्रक्रिया में तीन प्रक्रियाओं का समावेश होता है १.विस्तारण २. उच्चत्व की ओर उन्मुखता ३. पूर्णीकरण ।

विकास प्रक्रिया का प्राथमिक रूप विस्तारण की प्रक्रिया है जिसमें किसी स्तर के अस्तित्ववान रूपों को समेट कर उसे अपने पूर्णतया विस्तृत रूप में व्यक्त होना है। अर्थात हर नए विकसित रूप को पूर्णतया विस्तृत रूप में विकसित होने का अवसर प्राप्त होता रहे।

इसके पश्चात विकास प्रक्रिया उच्चतर रूपों की ओर उठती है जिसमें किसी रूप के निषेध या निरसन की बात नहीं होती उच्चतर की ओर उन्मुख का तात्पर्य है एक स्तर से उच्चतर स्तर की तरफ विकास। विकास प्रक्रिया की सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया पूर्णीकरण प्रक्रिया है जो अंत में आती है।

यहां पर विकास का अर्थ निम्नतम रूपों का निषेध करना नहीं अपितु निम्नतम रूपों को भी ऊपर की तरफ उठाना और उन्हें पूर्ण रूप से संगठित करना है निम्नतम रूपों को विकास प्रक्रिया समेटती है और उन्हें उच्चतर बनाती है विकास का तात्पर्य कभी भी निम्नतर का निषेध या निरसन करना नहीं होता है पूर्णीकरण का तात्पर्य होता है अवतरण के द्वारा उत्थान (Ascent through Descent) अर्थात उच्चतर रूप स्वयं निम्न रूपों में अवतरित होता है और उसके स्वरूप में ही परिवर्तन कर देता है और उसे भी ऊपर उठा लेता है । जैसे जड़ तत्व के स्वरूप पर हम विचार करें तो उसका

प्राथमिक स्वरूप अलग होता है और यदि अब हम उसे स्टार में जबकि उसे जड़ तत्व में मानस का आविर्भाव हो रहा है उसे पर विचार करें तो हम पाते हैं कि जब मन जड़ तत्व में प्रविष्ट करता है तो जड़ तत्व के स्वरूप में स्पष्ट परिवर्तन होता है वर्तमान समय का जड़ तत्व अपने में अलग सबसे पृथक जड़ तत्व नहीं रह जाता वह मानसिकता का अंश बन जाता है और मानसिक ढंग में घिर के नए रूप में विकसित होता है अब इसका भिन्न रूप समाप्त हो जाता है और यह मानसिकता के सामान्य स्तर का अवयव बन जाता है। विकास के अन्य सिद्धांतों में जहां हम पाते हैं कि विकास की दिशा निमंत्रण से उच्चतर की ओर अग्रसर होती है अर्थात विकास प्रक्रिया में आगे बढ़ने पर उसका संपर्क प्रारंभिक स्तर से टूट जाता है प्रत्येक क्षण वह पिछले स्तर को छोड़कर आगे निकल जाती है परंतु श्री अरविंद की विकास प्रक्रिया ऐसी प्रगति की प्रक्रिया है जो आगे अग्रसर होते हुए भी पिछले स्तरों से अपना संपर्क जोड़े रखती है।

श्री अरविंद के विकास प्रक्रिया विभिन्न स्तरों पर आगे बढ़ते हुए अन्य स्थलों से अन्य बिंदुओं से टूटकर अलग नहीं होती और इस प्रकार की विकास प्रक्रिया से श्री अरविंद के अन्य विचारों जैसे सर्वे मुक्ति तथा दिव्य जीवन की संभावना बलवान हो जाती है। यहां पर अपने प्रयासों से अपने परिश्रम से केवल अपना उत्थान या अपने मुक्ति का मार्ग ही महत्वपूर्ण नहीं होता अभी तू सर्व मुक्ति को आदर्श माना जाता है और यह तभी संभव है जब विकास प्रक्रिया एक ऐसी सर्वांगी प्रक्रिया हो जिसमें सभी कुछ समाविष्ट हो जिसमें विकास का कोई भी अंश अन्य अंश से टूटा हुआ था पृथक ना हो

अध्यक्ष की इस विकास वार्ड के कुछ प्रमुख पक्षों पर ध्यान दें तो हम पाते हैं कि सृष्टि सत्य का अज्ञान में प्रविष्टि होना है इस प्रकार विकास प्रक्रिया जो सृष्टि के क्रमिक विकास की प्रक्रिया है उसका प्रारंभ बिंदु ज्ञान शून्यता है तथा उसकी परिणति पूर्ण ज्ञान है यह दो चोर हैं विकास प्रक्रिया में इंदौर चोरों को स्वीकार करने से यह स्पष्ट होता है कि इस प्रकार की प्रक्रिया की गति इन दो चोरों के मध्य ही होती है इन दो छोरी के मध्य आज्ञा का क्षेत्र होता है और विकास प्रक्रिया आज्ञा के क्षेत्र में ही कार्यरत रहती है। इस विकास प्रक्रिया में प्रस्फुटित होने वाले तत्वों में क्रमशः जड़ तत्व(matter), प्राण तत्व(life), मन(mind) और फिर मनस(Psyche) का क्रम आता है ।प्राण तत्व विकसित होता है जड़त्व में और प्राण तत्व जड़ से पृथक नहीं है वहीं मनस अपने पहले के तीनों स्तरों से जुड़ा हुआ रहता है क्योंकि मानस उन्हीं से विकसित हुआ है। मानस को आवश्यकता होती है अपने उच्चतर रूप में आती मानस के स्तर में पहुंचने की यह विकास श्री अरविंद के अनुसार अभी नहीं हो पाया है श्री अरविंद के अनुसार मनस का आतिमानस के स्तर में पहुंचना विकास प्रक्रिया का अंतिम चरण होगा क्योंकि आती मानस के स्तर में पहुंचते ही निरपेक्ष सत की चेतना स्पष्ट हो जाएगी।

4.6 सारांश

श्री अरविंद का विकासवाद का सिद्धांत ऐसा है कि हम सब इस प्रक्रिया के अंग हो जाते हैं इस प्रक्रिया में आगे जो प्रगति हो सकती है वह आध्यात्मिक क्षेत्र की प्रगति है जिस कारण से यह हम सब से संबंधित है हम अपने आध्यात्मिक प्रयास से विकास प्रक्रिया के आगे की गति को और तेज कर सकते हैं हम अपने प्रयास से मानस के स्तर तक पहुंच चुके हैं और ऊपर उठने के लिए अति मानस की ओर बढ़ाने के लिए हमें सतत प्रयास करने की आवश्यकता है श्री अरविंद के विकास सिद्धांत में विकास प्रक्रिया का विवरण दो स्तर पर प्राप्त होता है एक स्तर पर विकास प्रक्रिया के सामान्य स्वरूप का स्तर है और दूसरे पर विकास प्रक्रिया का व्यक्ति केंद्रित स्तर है। अरविंद के अनुसार विकास जगत से संबंधित भी है और व्यक्ति से संबंधित भी है ।अरविंद व्यक्ति के महत्व को प्रमुख मानते हैं क्योंकि उनके अनुसार आध्यात्मिक शक्तियां व्यक्ति के माध्यम से स्पष्ट रूप में व्यक्त होती हैं व्यक्ति का विकास , व्यक्ति का उत्थान जगत के विकास से पृथक नहीं है अपितु व्यक्ति के विकास से जगत के सर्वांगीण विकास को गति मिलती है श्री अरविंद के पूर्णतावादी विकास सिद्धांत की यह अपनी ही विशेषता है।

4.7 उपयोगी पुस्तकें

1. The Philosophy of Sri Aurobindo - S.K. Moitra
2. दिव्य जीवन - श्री अरविंद
3. समकालीन भारतीय दर्शन - बसंत कुमार लाल

4.8 बोध- प्रश्न

1. श्री अरविंद के अनुसार सृष्टि की विकास प्रक्रिया किस प्रकार होती है।
2. अवतरण के द्वारा उत्थान से आप क्या समझते हैं?

.....0000.....

इकाई 5 - अति मानस

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 अति मानस

5.3 सत की चेतना के रूप में आतिमानस

5.4 मनुष्य के चरम लक्ष्य के रूप में अतिमानस

5.5 सारांश

5.6 उपयोगी पुस्तकें

5.7 बोध प्रश्न

----------0000----------

5.0 प्रस्तावना

श्री अरविंद के दर्शन में हम समन्वय की प्रवृत्ति देखते हैं अरविंद यह मानते हैं कि सत्य आध्यात्मिक है फिर भी वे सत में भौतिक को भी स्वीकार करते हैं। अरविंद के अनुसार यदि हम विश्व चेतना का सच में विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि एक ऐसा बिंदु होता है जहां आत्मा के लिए जड़ तत्व भी वास्तविक हो जाता है। विश्व चेतना आत्मा तथा जड़ के द्वैत से ऊपर उठने के लिए प्रयासरत है परंतु यह चेतना स्वयं एक परात्ममूलक चेतना (ट्रांसेंडेंटल कॉन्शियसनेस) की ओर अग्रसर है । यह चेतना ऐसी चेतना है जो हमें विलक्षण और अमिट प्रतीत होती है परंतु यह अज्ञात और अज्ञेय की चेतना है। हम हर पल इस चेतना के स्वरूप निर्धारण का प्रयास करते रहते हैं और हर क्षण यह निर्धारण अनुपयुक्त भी प्रतीत होता है।

इस प्रकार चेतना में स्वयं को विस्तृत करने की शक्ति होती है और यह चेतना उस सीमा तक विस्तृत हो जाती है कि अज्ञेय से भी इसका संपर्क स्थापित हो जाता है।

श्री अरविंद ज्ञात तथा अज्ञात को अलग-अलग कोटियों में नहीं रखना चाहते हैं और उनमें कोई भेद नहीं रखना चाहते अपित उनके मध्य की दूरी को कम करना चाहते हैं।

श्री अरविंद अपने सत् के विचार को समझाने के लिए सत्ता के आठ स्तरों का विवरण प्रस्तुत करते हैं जिनको समझना आवश्यक हो जाता है।

5.1 उद्देश्य

श्री अरविंद सत्ता के आठ स्तरों की बात करते हैं तथापि उनका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि सत्ता का स्वरूप अनेकात्मक है। अरविंद के अनुसार सत अनिवार्यतः एक ही है और सृष्टि अथवा जगत की विकास प्रक्रिया में एकत्व

तथा अनेकत्व इन दोनों का ही रहना आवश्यक है यद्यपि जगत एक तत्व की अभिव्यक्ति है तथापि यह अभिव्यक्ति अनेकत्व से युक्त है।

सत्ता के आठ स्तर हैं - 1 जड़ तत्व , 2 प्राण, 3 मन, 4 मानस, 5 अति मानस, 6 आनंद, 7 चित् शक्ति, 8 शुद्ध सत । यहां पर प्रारंभिक चार स्तर निम्नतर गोलार्ध के अंतर्गत आएंगे और अंतिम के चार स्तर उच्चतर गोलार्ध के अंतर्गत आएंगे।

निम्न स्तर वे हैं जो विकास प्रक्रिया में व्यक्त हो चुके हैं (स्पष्ट हो चुके हैं) जबकि उच्चतर गोलार्ध में वे स्तर आते हैं जिनमें अभी विकास प्रक्रिया को प्रवेश करना है।

इन दोनों गोलार्धों के बीच जो बिंदु है जो दोनों गोलार्धों को संयुक्त करता है वहां पर निम्नतर गोलार्ध से मानस तथा उच्चतर गोलार्ध से आतिमानस स्थित होते हैं। इन दोनों के बीच एक आवरण रहता है जिस कारण से मानस को उच्चतर सत की झलक नहीं मिल पाती।

श्री अरविंद के विकास प्रक्रिया में हम पाते हैं कि यह विकास प्रक्रिया मानस के स्तर तक पहुंच चुकी है और अब यह आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश लेने के लिए तैयार है। विकास का मार्ग ज्ञान शून्यता से आरंभ हुआ जो जड़ तत्व से प्राण तत्व प्राण तत्व से मन तत्व मन तत्व से होता हुआ मानस तक पहुंच गया है और मनस का स्तर मानव में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत होता है और वह मनुष्य ही है जिसमें आगे के स्तर की संभावना दिखाई पड़ती मनुष्य ही अति मानस के स्तर की ओर बढ़ सकता है और उसे पा सकता है।

5.2 अति मानस (The Supermind)

सच्चिदानंद रूपी सत उच्चतर गोलार्ध से संबंधित है और विकास प्रक्रिया मानस के स्तर तक पहुंच चुकी है जो की निम्नतर गोलार्ध की सत्ता है । तो अब प्रश्न उठता है कि कैसे यह विकास प्रक्रिया निम्नतर क्षेत्र से उच्चतर क्षेत्र में प्रवेश कर पाएगी। श्री अरविंद का मानना है कि इस प्रकार की प्रवेश की संभावना तभी संभव हो सकती है जब इन दोनों क्षेत्रों के मध्य कोई ऐसा माध्यम हो जो इन दोनों क्षेत्रों को परस्पर संबंधित कर सके और इसके लिए यह भी जरूरी हो जाता है कि यह जो भी माध्यम हो जो इन दोनों को संबंधित करे वह एक तरफ तो स्वयं सच्चिदानंद के समान हो; नहीं तो वह उच्चतर गोलार्ध से संबंधित नहीं हो सकता दूसरी ओर यह भी जरूरी हो जाता है कि यह न्यूनतम गोलार्ध के विकसित रूप मनस से विपरीत न हो।

इस समस्या के समाधान हेतु ही श्री अरविंद इन दोनों के मध्य आतिमानस (सुपर माइंड) को प्रस्तुत करते हैं । अतिमानस चूंकि उच्चतर गोलार्ध का ही सत है और साथ ही मानस इसे प्राप्त करने हेतु अग्रसर रहता है । चूंकि यह उच्चतर गोलार्ध का सत है अतः इसे सच्चिदानंद की चेतना है यह यद्यपि सच्चिदानंद नहीं है तथापि इसे सच्चिदानंद की पूर्ण चेतना है और इस प्रकार यह सच्चिदानंद का ही स्वरुप है साथ ही यह मानस से भिन्न है किंतु मानस के विकास का लक्ष्य है। इस प्रकार आतिमानस इन दोनों के बीच का वह माध्यम बन सकता है।

यहां पर हमें आतिमानस के इन दोनों भावों को स्पष्ट रूप से समझ लेना आवश्यक है ।

1. सत की चेतना के रूप में आतिमानस अर्थात वह आध्यात्मिक तत्व जिसे सच्चिदानंद की पूर्ण चेतना है

2 मनुष्य के चरम लक्ष्य के रूप में अतिमानस

5.3 सत की चेतना के रूप में आतिमानस

अतिमानस वह आध्यात्मिक तत्व है जिसे सच्चिदानंद की पूर्ण चेतना रहती है। श्री अरविंद सत्य को सच्चिदानंद मानते हैं । सच्चिदानंद शब्द से ऐसा प्रतीत होता है कि हम तीन तत्वों की कल्पना कर रहे हैं और पुनः तीनों को एक साथ संगठित कर रहे हैं। अर्थात पहले तो हम तीन भावों में भेद कर रहे हैं और बाद में हम उन्हें संगठित करके एकात्मक स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं यहां पर समस्या उत्पन्न हो जाती है क्योंकि इस प्रकार का चिंतन मनस के स्तर पर तो स्वीकार्य हो सकता है परंतु परम सत तो पूर्ण अद्वैत है परम सत् में इस प्रकार का विभाजन और फिर संगठन उचित प्रतीत नहीं होता । साथ ही एक समस्या और भी है कि हमें सृष्टि की भी व्याख्या करने की आवश्यकता पड़ती है और इस प्रकार की व्याख्या सत् के आधार पर कैसे संभव हो सकती है क्योंकि ऐसी स्थिति में हमें सत् में किसी न किसी प्रकार के विभेद को स्वीकार करना पड़ सकता है । क्योंकि अगर हम विभेद ना मानें तो सत् से सृष्टि की व्याख्या संभव नहीं लगती , परंतु यदि सत् को हम पूर्ण अद्वैत मानते हैं और यह भी मानते हैं की उसका अद्वैत रूप खंडित नहीं होता तब उससे सृष्टि का उद्भव कैसे संभव हो पाएगा क्योंकि सत अविभाज्य है तो उसके विभाजन का प्रश्न नहीं उठ सकता।

उपरोक्त आशंकाओं का निवारण करते हुए श्री अरविंद कहते हैं कि सत के पूर्ण अद्वैत रूप को खंडित किए बिना उससे सृष्टि की व्याख्या संभव है जब इस व्याख्या के लिए एक ऐसे आधारभूत सिद्धांत पर हम विचार करें जो सत्य में विभाजन स्वीकार नहीं करता और सत्य के अद्वैत रूप को खंडित नहीं करता परंतु विभेदन कर सकता है। सत और सृष्टि के मध्य एक तत्व स्थित होता है जिसकी विशेषता है कि इसे सत के पूर्ण अद्वैत रूप की चेतना होती है फिर भी यह सत को इस रूप में प्रस्तुत करता है कि सृष्टि की ओर से देखने में यह त्रिगुणात्मक सत प्रतीत होता है हम इसे नहीं समझ पाते और हमारे लिए समस्या हो सकती है क्योंकि इस प्रक्रिया को सोचने समझने का हमारा जो आधार है वह मानसिक है जो इसे ठीक ढंग से नहीं समझ पाता । आंशिक विचार प्रक्रिया का अपना तरीका है । वह पहले सब को खंडित कर कर के देखता है पुन: सब को संगठित करके एकात्मता को समझने का प्रयास करता है और इस तरीके से सत का एक अद्वैत रूप पूर्णतया स्पष्ट नहीं हो सकता । अरविंद के अनुसार ऐसा होते हुए भी मानसिकता के स्तर से ही उच्चतर संभावनाओं की ओर हमें संकेत तो अवश्य मिल जाता है और हमें यह प्रतीत होता है कि मानसिक चेतना से उच्चतर आध्यात्मिक चेतना संभव है । उस उच्चतर आध्यात्मिक चेतना में सत के पूर्ण एकात्म रूप की चेतना है और यह भान भी है की किस प्रकार यह पूर्ण अद्वैत सत तीन रूपों में दिखाई पड़ता है।

इन दोनों प्रकार के दृष्टिकोण में कोई विरोध नहीं है अर्थात मानसिक चेतना और उच्चतर चेतना में कोई विरोध नहीं रहता जिसका कारण यह है की सत् का पूर्ण अद्वैत रूप कभी भी विभाजित अथवा खंडित होता ही नहीं । सृष्टि के परिप्रेक्ष्य से सत की ओर देखने पर सत को त्रिगुणात्मक या त्रिरूप समझा जाता है । सृष्टि तथा सत के मध्य एक ऐसा तत्व होता है जो सत् के पूर्ण एकात्मकता को बनाए रखते हुए उसे त्रिगुणात्मक रूप में प्रस्तुत करता है और यही तत्व आतिमानस या सुपर माइंड है । श्री अरविंद आतिमानस की व्याख्या करते हुए कहते हैं अतिमानस विभाजन से नहीं एकत्व से प्रारंभ होता है, यह प्राथमिक रूप से सर्वसमावेशी है विभेदन केवल गौण कार्य है। इस प्रकार श्री अरविंद आतिमानस को चरम सत्य चेतन स्वीकार करते हैं । ब्रह्मांड चित् शक्ति की अभिव्यक्ति है अतः ब्रह्मांड भी चेतना का रूप है और यह चेतना विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होते हुए भी मूल रूप से एक है इस प्रकार श्रृष्टि में अनेक तत्वों का भेद स्पष्ट रहता है परंतु इससे यह सत्य खंडित नहीं होता कि सत्य मूलत: एकरूप है । सत् के रूप में सर्वांगी चेतन होने के कारण अनेक तत्व तथा एकात्मक दोनों की चेतना होने के कारण यह चेतना चरम सत्य चेतन है। चरम सत् चेतना के विवरण से मानसिक चेतना का भेद ज्ञात हो जाता है क्योंकि मानसिक चेतना विभाजन प्रक्रिया से युक्त होती है इस कारण मानसिक चेतना के प्रति तियां सबसे भिन्न प्रतीत होती हैं आतिमानस चेतना में कोई विभाजन नहीं है जिसकी

वजह से अतिमानस की प्रतिनिधि सत्य आयथार्थ नहीं होती इसे पूर्ण अद्वैत की सतत चेतना होती है और जिस कारण से किसी चरम सत्य चेतन कहा जाता है

अरविंद के अनुसार सर्जनात्मक आधार चरमसत से पृथक नहीं हो सकता अतः वह आतिमानस को स्रष्टा या सर्जनात्मक भाव या यूं कहें कि सत भाव के रूप में स्वीकार करते हैं । सृष्टि का आधार हम सत में ही ढूंढ़ सकते हैं उसके अतिरिक्त कहीं नहीं । वेदांत दर्शन में हम सृष्टि के आधार के समाधान के रूप में ईश्वर एवं माया के संप्रत्यय को पाते हैं जहां सृष्टि की व्याख्या ईश्वर एवं माया के माध्यम से की गई है परंतु वेदांत में ईश्वर, माया इत्यादि संप्रत्यय को ब्रह्म के साथ समन्वय स्थापित करने में कठिनाई होती है परिणामस्वरुप वेदांत के समक्ष और कोई रास्ता नहीं बचता की ईश्वर, माया, जगत सबको अंततः वास्तविक ही मान लिया जाए यही कारण है कि श्री अरविंद का मानना है कि इस प्रकार के किसी समाधान में सत्य के एकत्व रूप को तो हम सुरक्षित कर सकते हैं परंतु सृष्टि के साथ हम न्याय नहीं कर पाते क्योंकि सृष्टि पूर्ण रूप से भ्रामक सिद्ध होती है । जिसका कारण यही है कि यहां सृष्टि के आधार ईश्वर को एक प्रकार से ब्रह्म से पृथक माना गया है जिसके कारण ईश्वर एवं ब्रह्म के संबंध में ईश्वर का विलय हमें करना ही पड़ता है अरविंद के अनुसार वेदांत दर्शन की समस्या से बचने के लिए हम यही मार्ग अपना सकते हैं कि सृष्टि के आधार को परमसत से भिन्न या पृथक ना मानें बल्कि हम ऐसे सिद्धांत को स्वीकार करें जो कि सत् और सृष्टि दोनों के साथ न्याय संगत हो सके। इसी समस्या के समाधान हेतु श्री अरविंद आतिमानस के संप्रत्यय को स्वीकार करते हैं सच्चिदानंद शुद्ध सत, चित एवं आनंद स्वरूप है। वह काल एवं देश के पार है जबकि सृष्टि देश एवं काल में स्थित है । अब इन दोनों के मध्य दोनों को अंतर्संबंधित करने वाली एक कड़ी का होना आवश्यक होता है और उस कड़ी के लिए यह भी अनिवार्य हो जाता है की एक तरफ तो उसे सत की एकरुपता की चेतना हो तो दूसरी ओर सृष्टि की यथार्थता की भी समझ हो और ऐसा तभी संभव हो पाएगा जब इस कड़ी को एक सर्जनात्मक भाव ,एक सद्भाव के रूप में स्वीकार किया जाए।

पूर्ण सत भाव के रूप में यह सत्य है और संरचनात्मक होने के कारण इसमें अभिव्यक्त की क्षमता होती है सच्चिदानंद से यह भिन्न नहीं है क्योंकि यह सद्भाव है और सच्चिदानंद की चेतना है परंतु इसमें अभिव्यक्ति की शक्ति भी निहित होती है यहां अभिव्यक्त का तात्पर्य है मूल भाव का एक प्रकार का विभेदन अर्थात अपने मूल रूप का अनेक रूपों में व्यक्त होना और यह अभिव्यक्ति उस सत का ही रूप है परंतु वह अभिव्यक्ति है अतः उसकी प्रतीति सत से भिन्न है और यह प्रतीति सृष्टि की प्रतीति है। सृष्टि भी उस समय आरंभ होती है जब सत्य में निहित तीनों रूपों सत, चित और आनंद के एकात्म का आतिमानस विभेदन प्रस्तुत करता है । श्री अरविंद के अनुसार इसमें कोई संदेह नहीं है कि सुपरमाइंड या अतिमानस स्वयं सच्चिदानंद है लेकिन सच्चिदानंद अपनी शुद्ध, अनंत, अपरिवर्तनीय चेतना में आराम नहीं कर रहा है, बल्कि मौलिक स्थिति से बाहर निकलकर एक ऐसी गति की ओर बढ़ रहा है जो उसकी ऊर्जा का रूप है और ब्रह्मांडीय सृजन का साधन है।

5.4 मनुष्य के चरम लक्ष्य के रूप में अतिमानस

अतिमानस मानस का चरम लक्ष्य है और यह मानस की अंतिम परिणति है। जैसा कि हम श्री अरविंद के दर्शन में पाते हैं की एक अर्थ में मानस भी आतिमानस के सर्वथा विपरीत नहीं है अभी तो उसमें नहीं शक्तियां आतिमानस की शक्तियों के ही निम्नतर रूप हैं इस प्रकार मानस निम्नतर गोलार्ध में स्थित है परंतु उसमें अतिमानस का ही निर्माता रूप है और अपने चरम लक्ष्य के रूप में अतिमानस की ओर उठने के लिए वह सदैव प्रयासरत रहता है , तत्पर रहता है। उनके अनुसार मानस एवं अतिमानस का अंतर सत्य के ग्रहण करने के तरीकों का भेद है अतिमानस अनिवार्य रूप से सत को पूर्ण अद्वैत एवं एकात्मक रूप में ग्रहण करने का प्रयास करता है परंतु मानस अपने स्वरूप के पूर्णता को खंडित करके उसे अंशों में विभक्त कर लेता है मानस अनिवार्य रूप से ज्ञात और ज्ञेय में भेद करता है और ज्ञेय को भी उसके अवयवों एवं अंशों के आधार पर ही पकड़ने का प्रयास करता है इसी कारण मानस सत्य के चित्रण में अंततः

असमर्थ है सत्य एक है ज्ञान की ऐसी विधा जो ज्ञान विषय को उसके विश्लेषण के द्वारा ही जान सकती है , उसे अवयवों में विभाजित करके ही जान पाती है सत्य का ज्ञान नहीं पा सकती क्योंकि सत तो अविभाज्य होता है सत्य के अवयव नहीं होते हमारी मानसिक चेतना में भी इकाइयों की चेतना होती है परंतु अरविंद का मानना है कि मनस के द्वारा प्राप्त ऐसी चेतना ज्ञान नहीं है। मानसिक चेतना अपने विषय को विभिन्न अंशों में विश्लेषण करके देखते हैं और तब उन्हें पुनःसंगठित करने का प्रयास करती है परंतु ऐसी इकाई मौलिक एकत्व का चित्रण नहीं कर सकती । जिस कारण मानसिक चेतना की उपलब्धियां ज्ञान के वास्तविक अर्थ में ज्ञान नहीं कहीं जा सकती।

मानस और आतिमानस के बीच हम इस भेद को देखते हैं फिर भी हम पाते हैं कि मानस में सदैव ऊपर उठने की उत्सुकता रहती है प्रयास रहता है। मानस से प्राप्त ज्ञान आशिक और सताई होते हैं परंतु उसमें एकत्र को प्राप्त करने की तत्परता एवं प्रयास होता है और इकाइयों को स्थापित करने की प्रवृत्ति होती है मानस में अपूर्ण रूप में आदिमानस की शक्ति ही प्रयासरत रहती है उच्चतर आध्यात्मिक क्षेत्र से आतिमानस का निम्नतर क्षेत्र के मानस में अवतरित होने के परिणाम स्वरुप मानस में विकसित होने एवं उच्चतर स्तर की ओर उठने की संभावना होती है मानस में ऊपर उठने की शक्ति रहती है। यद्यपि मानस विश्लेषण करता है फिर भी यह विश्लेषण पर नहीं रुकता बल्कि इसमें एक ऐसी प्रवृत्ति होती है जिसके कारण वह विश्लेषित अंशु को पुनः संगठित करता है और इसकी यह एकात्मकता की ओर उन्मुखता इसकी आध्यात्मिकता की की ओर झुकाव की ही पहचान है। यहीं से हमें इस बात का पता चल जाता है कि मानस में आती मानस की शक्ति अंतर निहित है चाहे वह आंशिक रूप से हो अपूर्ण हो लेकिन वह है। इस प्रकार मानस जो उच्चतर स्टारों की ओर उठ पाता है यह आध्यात्मिक क्रियो की ओर विस होता है वह इसी कारण से की आती मानस इसमें अवतरित होता है अति मानस का अवतरण सृष्टि के लिए अनिवार्य होता है और इसके माध्यम से आत्मा का निम्नतर गोलार्ध में अवतरण होता है आत्मा का निम्नतर गोलार्ध में अवतरण हुए बिना उत्थान या विकास प्रक्रिया नहीं चल सकती। इस अवतरण के कारण ही मानस में आतिमानस की ओर उठने की प्रवृत्ति संभव होती है।

5.5 सारांश

श्री अरविंद के दर्शन में हम पाते हैं कि मानस एक ऐसी चेतन शक्ति है जो प्रदत्त विषयों का आकलन करती है उनका उनके अंशु में विश्लेषण करके समझने का प्रयास करती है उनके सीमाओं को निर्धारित करती है मनुष्य का मूल कार्य इकाइयों का उनके आव्यूह में विश्लेषण करते हुए उनके स्वरूप को समझने का प्रयास करना है इस विश्लेषणात्मक पद्धति से किसी पूर्ण एक के स्वरूप का ज्ञान तो हमें नहीं मिल सकता तो हम देखते हैं कि मानस पुणे विश्लेषित अंशु को संगठित करने का प्रयास करता है परंतु यह मानस के स्वाभाविक विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति से भिन्न कार्य है और यह उच्चतर स्तर का कार्य है अर्थात एकात्मक की ओर अग्रसर होना और संगठन के प्रवृत्ति उच्चतर स्तर का कार्य है यह तो मानस का मूल कार्य नहीं है तो प्रश्न उत्तर है कि मानस में ऐसी प्रवृत्ति किस प्रकार जागती है। अर्थात इस प्रकार की नियंत्रण आत्मक प्रज्ञा जिसमें मानस अपने स्तर से ऊपर उठना है और उसमें अपनी शक्तियों को नियंत्रित करने की क्षमता आती है इसके पीछे उसके उच्चतर मानस के स्तर की प्राप्ति ही जिम्मेदार है और इसके लिए अति मानस का अवतरण (डिसेंट) आवश्यक हो जाता है आत्मा में आती मानसिक आधार तो उपस्थित रहता है परंतु या मुक्त रूप से तभी सामने आता है जब आती मानस का आत्मा में अवतरण हो आदिमानस का आत्मा में अवतरण ही आतिमानसिक रूपांतरण है। ऐसे रूपांतरण के परिणाम स्वरुप हमारा जैविक , सांसारिक जीवन पूर्णतया रूपांतरित हो जाता है क्योंकि सभी प्रकार के अस्तित्व का आधार एक पूर्ण एकत्व की अनुभूति के रूप में झलकने लगता है और भौतिक, जैविक एवं मानसिक जगत के प्रति हमारा दृष्टिकोण पूर्णतया बदल जाता है ऐसी स्थिति में आत्मा अज्ञान के

क्षेत्र में नहीं रहती और उसका ज्ञान पूर्ण अद्वैत एकत्व का ज्ञान होता है और आत्मा स्वयं ज्ञान सत में परिणत हो जाती है और उसका जीवन 'दिव्य जीवन' हो जाता है।

5.6 उपयोगी पुस्तकें

1.The Philosophy of Sri Aurobindo - S.K. Moitra

2 . दिव्य जीवन - श्री अरविंद

3. समकालीन भारतीय दर्शन - बसंत कुमार लाल

5.7 बोध प्रश्न

1 श्री अरविंद के आतिमानस के संप्रत्यय की विवेचना कीजिए।

2. सृष्टि के विकास में आतिमानस के योगदान को समझाइए।

3. सत की चेतना के रूप में आतिमानस के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

.....00.....

खण्ड–3 जे0 कृष्णमूर्ति

खण्ड परिचयः

जे. कृष्णमूर्ति की दर्शनशास्त्रीय विचारधारा अपने में एक विधा है। उनका दर्शनव्यक्तिगत विकास, मानवता के महत्व, और समाज में सामंजस्य और शांति के प्रति महान आकर्षण से भरा हुआहै। उनके विचार व्यापक समाजिक, धार्मिक और मानवतावादी मुद्दोंपर एक अद्वितीय प्रकार से ध्यान केंद्रित करतेहैं। कृष्णमूर्ति ने मानव चेतना के विकास और आत्म–मुक्ति के माध्यम से वास्तविक धर्म की खोज की है, जो सम्पूर्ण मानवजाति के लिए एक प्रेरणा स्रोत है। उनके दर्शन में स्वतंत्रता, विचारशीलता और सच्चाई की ऊंची भावना ने उन्हें एक महान धार्मिक विचारक के रूप में जानाजाताहै। प्रस्तुत खण्ड मे ंजे. कृष्णमूर्ति के जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण विषय के महत्व, उपयोगिता और उसको प्रभावित करने वाले तथ्यों एवं कारकों को इंगित किया गया है। साथ ही बुद्धि की सीमाएं' विषय पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है कि कैसे हम रूढ़ियों, रीति–रिवाजों, नवीनविचारों के प्रति असहजकता आदि से ग्रसित होकर बौद्धिकता के चरम पर प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं। बुद्धि जो असीमित और अनन्त संभावनाओं से युक्त है, उसे हम सीमित एवं बंधन युक्त कर देते हैं।

इकाई–6 जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोणः जे. कृष्णमूर्ति का जीवन के प्रति आदर्शवादी दृष्टिकोण एक अद्वितीय पहलू है। अगर हम कहें कि यह मानव और समाज को जे. कृष्णमूर्ति की एक अतुलनीय भेट है तो इसमें कोई अतिश्योक्ति न होगी। जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण न केवल एक सिद्धांत है, बल्कि एक जीवन शैली और सोच का जीवन्त उदाहरण है। उन्होंने मानव जीवन की सच्ची प्रकृति और उसके अद्वितीयता को गहराई से जानने की कोशिश की है, जिससे हमारे जीवन को एक सार्थक और संवेदनशील दृष्टिकोण से देखा जासके। कृष्णमूर्ति का आदर्शवादी दृष्टिकोण हमें आत्म–समझ, सही विचारशीलता और अनुभव में आधारित जीवन जीने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है, जो हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में सहायक सिद्ध होता है।

इकाई–7 बुद्धि की सीमाएंः जे. कृष्णमूर्ति के विचार में मन की सीमाओं का विषय एक गहराऔरमहत्वपूर्णविचारहै।उन्होंनेमानवमन की कठिनाइयों, उसकीसीमाओंऔरउसकेप्रभावोंको समझाने का प्रयासकियाहै। कृष्णमूर्ति ने बतायाहैकिमनविचारों, धारणाओंऔरसांस्कारिकप्रभावों से परिपूर्णहोताहै, जिसकेकारण यह अक्सरहमारीसोचऔरअनुभवमेंसीमाओं का कारण बन जाताहै।वे यह भीबतातेहैंकिमानवमन की इस सीमा से उबरने के लिए आत्मज्ञानऔरआत्मचिंतन की आवश्यकताहोतीहै, जिससेहमअपनेविचारोंको शुद्ध करकेसत्य कोअनुभवसकें। इस प्रकार, जे. कृष्णमूर्ति के द्वारामन की सीमाओं का विश्लेषण हमें अपने अंदर के विचारों और स्वभाव के गहरे पहलुओं को समझने में मदद करता है।

इकाई–6

जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण

6.3 सारांश

6.4 शब्दावली

6.5 प्रश्नावली

6.6 सन्दर्भग्रन्थ

.....000.....

6.0 उद्देश्यः

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको जे. कृष्णमूर्ति के 'जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण' के सन्दर्भ में उनके विचारों से अवगत कराना है। इस इकाई के पूर्ण होने पर आप निम्नलिखित तथ्यों से परिचित हो पायेंगे–

- जे. कृष्णमूर्ति के जीवन का सामान्य परिचय प्राप्त कर पायेंगे।
- जे. कृष्णमूर्ति के विचार में जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण को समझ पायेंगे।
- व्यक्ति का जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण कैसा होना चाहिए, यह समझ पायेंगे।
- आदर्श जीवन के दृष्टिकोण को प्रभावित करनेवाले कारकों से परिचित होंगे।

6.1 प्रस्तावनाः

जिद्दू कृष्णमूर्ति का जन्म 12 मई 1895 को आन्ध्रप्रदेश के चिन्तूर जिले के मदनपल्ली नामक स्थानपर एक तेलुगु ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनकी माता का नाम संजीवम्मा एवं पिता का नाम जिद्दूनारायनीय था और वे एक अवकाश प्राप्त सर्वेन्ट के साथ–साथ पुराने थियोसोफिस्ट थे। दस वर्ष की आयु में जब इनकी माता श्री का देहावसान हो गया तो इनके पिता अपने पुत्रों समेत श्रीमती एनी बेसेन्ट के आमन्त्रण पर 1908 में मद्रास के उडयार नामक

स्थान पर स्थित थियोसोफिकल सोसायटी के परिसर में जाकर रहने लगे। कृष्णमूर्ति विलक्षण एवं बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इनकी प्रखर बुद्धि और गहरी आध्यात्मिक समझ को देखकर उस समय के प्रमुख थियोसोफिस्ट, सी.डब्लू. लीडबीटर और श्रीमती एनी बेसेन्ट ने यह स्वीकार किया कि यह बालक भविष्य में एक महान् आध्यात्मिक शिक्षक के रूप में विश्व का मार्गदर्शन कर सकता है। इस प्रकार इन्हें 1927 में विश्वगुरू घोषित किया, किन्तु इन्होंने दो वर्ष बाद ही थियोसोफिकल सोसायटी से नाता तोड़कर अपने नवीन दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया।

इन्होंने अपना स्वतन्त्र विचार एवं चिन्तन किया। उनका कहना था कि व्यक्त्वि के पूर्ण रूपान्तरण से ही विश्व को संघर्ष एवं पीड़ा को हटाया जा सकता है। उन्होंने 'आर्डर ऑफ द स्टार' को भंग कर दिया। कृष्णमूर्ति की नवीन एवं उत्कृष्ट विचार धारा ने समाज के बौद्धिक वर्ग को आकर्षित किया। इसके साथ ही इन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की जो आज भी भारत सहित विश्व में अपना एक स्थान रखते हैं।

द्क्षिणभारत का ऋषिवैलीस्कूल इनमें विशेष उल्लेखनीय है। इसी के साथ ही इनके साहित्य में सार्वजनिक वार्ताएं, प्रश्नोत्तर, परिचर्चाएँ, साक्षात्कार, परस्पर संवाद, डायरी एवं उनकी प्रमुख पुस्तकें सम्मिलित हैं। उनका मूल साहित्य अग्रेजी भाषा में है, जिसका अनुवाद कई प्रचलित भाषाओं में किया गया है। इनका देहान्त 17 फरवरी, 1986 को 91 वर्ष की आयु में हुआ।

6.2 जीवन के प्रतिआदर्शदृष्टिकोण :

मानव जीवन मेंआदर्श दृष्टिकोण एक महत्वपूर्णभूमिकानिभातेहैं।इन दृष्टिकोणों के माध्यम से हमअपने जीवन कोसहीदिशामेंलेजासकतेहैंऔरअपनेकार्योंकोउच्चतममानकोंपरस्थापितकरसकतेहैं। जीवन के प्रति ये अदार्श दृष्टिकोणहमें एक सार्थकऔरसंतुलित जीवन जीने मेंमददकरतेहैं। जीवन मेंसदैवउतार–चढ़ाव लगेरहतेहैं।कभी धूपतोकभीछाव, कभीगमतोकभी खुशी, कभीज्यादातोकभी कम, ये सभीमानव जीवन केअभिन्न अंग हैं।आपइनसेपृथकनहींरहसकतेहैं, लेकिन यदिआप जीवन के प्रतिसरल, सहजऔरआदर्शात्मकदृष्टिकोण रखतेहैंतोआपसदैव जीवन मेंसुख–शान्तिकोप्राप्तकरेंगे।

जे. कृष्णमूर्ति का माननाथाकिमानवमें जीवन के प्रतिआदर्शदृष्टिकोणऔरआत्मबोधतभीपुष्पित एवंपल्लवितहोगा,जबवहअपनीपरम्परागतसोच–समझऔरविचारों से आगे बढ़करअपनेकोनवीनविचारों एवं धाराणाओं के परिप्रेक्ष्य मेंकोरेकागज के समान रखेगाक्योंकि यदिवहपूर्व के दुराग्रहोंऔरविचारों से स्वंय कोपृथकनहींकरेगा,तबतकनवीनविचारऔर धाराणाएंउसकेज्ञानकोपरिष्कृतऔरपरिमार्जितनहींकरपायेंगी।इननवीनविचारोंऔर धाराणाओं से एक

सशक्त, कर्मठ् औरओजस्वीव्यक्तित्व का निर्माणहोताहै।कोईभीमानवअपने जीवन मेंतभीनवीनऊँचाईयोंकोप्राप्तकरसकताजबवह समय के अनुरूपअपनेआचरण एवंकर्तव्यों का पालनकरेगा।उसे समय के अनुरूपउसकेव्यक्तित्व का निर्माण,नवीनदृष्टिकोण एवं धारणाएंहीकरेंगी।व्यक्तित्व के पूर्ण रूपान्तरण से हीविश्व से संघर्षऔरपीड़ाकोमिटायाजासकताहै।हमअन्दर से अतीत का बोझऔरभविष्य का भय हटादेंऔरअपनेमस्तिष्ककोमुक्त रखें, तभीहमेंअपने ध्येय की प्राप्तिहोपायेगी।

जे. कृष्णमूर्तिकहतेहैं, किहमपरम्पराओंऔर रूढ़ियों के दासहैं।हमभलेही खुदकोआधुनिक समझबैठेहैं, मानलेंकिहमस्वतन्त्र हो गए,हमपरकिसीभीप्रकार का कोईबन्धननहींहै,लेकिनजबहम इस परगहनदृष्टिपातकरेंतो देखतेहैंकिहम रूढ़िवादीहीहैं।कुछभीनयाकरने से डरतेहैं,करनातोदूर की बातहमअपनीपरम्पराओंऔर रूढ़िवादियोंपरविचारभीकरने से डरतेहैंऔरइसका यह परिणामहोताहैकिहमसदैवहीमत–मतान्तरों, परम्पराओं, रूढ़िवादियोंऔरकल्पनाओं से घिरेरहतेहैं।इसमेंकोईसंशय नहींहै, क्योंकिहमलोगों ने हीछवि–रचना के खेलकोस्वीकारकियाहैऔरपरस्परसम्बन्धोंकोइसी के आधारपरस्थापितकियाहै। यह बातउतनीहीपुरातनहै, जितनीकि ये पहाड़ियाँ, नदी–झरनेंऔरआकाश।यह हमारीनियती बन गईहै। हम इसे अपनातेहैं, इसीमेंजीतेहैंऔरइसी से एक–दूसरेको यातनाएँदेतेहैं।आज का मानवइतिहास के एक बहुतहीउत्तेजनापूर्ण युग के द्वारपर खड़ाहै।भौतिकउपलब्धियों के बावजूदमानवमनदुराग्रहोंऔरअशान्ति से भराहुआहै।हम ऐसेसंसारमेंजीरहेहैंजहाँ विषाद, दुःख औरपीड़ासर्वव्यापीहै।सम्पूर्णवातावरणसन्देह, कटुता एवंअविश्वासों से युक्तहै।मूल्यों का कोईसर्वस्वीकृतसिद्धान्तनहींरहा, जो क्षण–क्षणपरिवर्तितपरिवेशमेंमनुष्य का दिशा–निर्देशकरसके।नैतिकअवसान ने मानवता के सम्मुख एक प्रश्नचिन्ह खड़ाकरदियाहै, ऐसीस्थितमेंमनुष्य व उसकेअस्तित्वसम्बन्धीप्रश्नोंपरपुनर्विचारअत्यन्तआवश्यक है।

जीवन कोउसकीसम्पूर्णतामेंग्रहणकरनेहेतुसर्वप्रथमहमें उन जीवन–मूल्यों से मुक्तहोनाहोगा, जिन्हें इस समाज ने परम्पराओं के रूपमेंहमारेऊपरथोप रखा है । परम्पराओं ने गरीबी व शोषणकोकर्मों का फल या पापों का दण्डबताकरईश्वरीय कृपाकोउच्चवर्गतकसीमितकर रखा। अतः सर्वप्रथमआवश्यकताहै, इस संस्कार रूपमेंअर्जितभय से मुक्ति कीक्योंकिमानवीय शक्तिअनन्तसम्भावनाओं से युक्तहै, किन्तुउसकी इस सम्भावना के आगेपरम्पराओंऔर रूढ़िवादीविचारधारा ने प्रश्नचिन्ह खड़ेकर रखेहैं ।

भय एक ऐसाभीषणरोगहै, जिसकेहोतेजीवन–वृक्ष हरा–भरारहहीनहींसकता।भय समस्तमानवीय सम्भावनाओंको क्षीणकरदेताहैऔर जीवन एक बोझबनकररहजाताहै। यदि जीवन कोसार्थकबनानाहैतोभय का निदान एवंनिराकरणआवश्यकहै।भय एक मिथककल्पनाहै,भय कोईविवशतानहीं, अबोधता है । जीवन के हर क्षणकोमनुष्य

स्वयंअपनेप्रयासोंसुन्दरबनासकताहै।आत्म–विश्वास से धैर्यउत्पन्नहोताहै, जोमनुष्य का सच्चासाथीहै।

कृष्णमूर्ति का दर्शनमनुष्य में एक ऐसेअडिगविश्वासकोजाग्रतकरनाचाहताहै, जोउसेगहरे जीवन मूल्योंऔरआदर्शों के प्रतिउन्मुख करसके।वेनिःसंदेहसामाजिकक्रांति की भूमिकाप्रस्तुतकरनाचाहतेहैं।वेस्वयंकोकिसीविचारधारा के प्रतिनिधि के रूपमेंप्रस्तुतनहींकरते।सत्य के अतिरिक्तपरमसत् तकपहुँचने का कोईअन्य मार्गनहींहै।व्यक्ति की प्रबुद्धता एवं जीवन के प्रतिउसकेआदर्शदृष्टिकोणहीउसकेवास्तविकनिर्देशकहैं।व्यक्तिकोसंघर्षों का स्वयंहीसामनाकरनापड़ेगा।

यहाँ यह प्रश्न स्वतः उठताहैकिक्या इस रीतिकोरोकानहींजासकताहै?इसके समाधान के सन्दर्भमेंजे. कृष्णमूर्तिकहतेहैंकिइसकाहलकिसीतथाकथित धार्मिकगुरूओं, ठेकेदारोंऔरराजनीतिज्ञों के पासनहींहै।इसकाहलआपकेभीतरहै, आप स्वंय मेंसर्वशक्तिमानऔरसर्वज्ञहैं, बस आवश्यकताहै स्वंय कोपहचानने की, स्वंय कोजाननेकी।जिसने स्वंय कोजानलिया, पहचानलिया, उसने इस संसारऔरचराचरजगतकोभीजानऔरपहचानलिया।

वेकहतेहैंकि यहकोईसैद्धांतिकसंकल्पनानहींहै। यह मेरे जीवन का अनुभवहै, मैंइसकीउपलब्धि के लिए क्याआवश्यक है, यह कह सकताहूँ।औरमैंकहताहूँ किपहलीचीज यह हैकिजोवस्तुजैसीहै,हमउसेवैसा का वैसाहीपहचाने।क्योंकिहमसदैववस्तुओंकोकिसीअन्य की आँखों से देखने, किसीअन्य के मुख से सुनने, किसीअन्य के स्पर्श से महसूसकरने के आदिहोचुकेहैं। यह रीति–रिवाज, आदतें, परम्पराएंऔर धाराणाएंहमेंवस्तु के वास्तिविकस्वरूपकोमाया की भाँतिढक लेती है औरहमेंजो देखनाहै, हमउससेवंचितरहजातेहैं।इसलिए यह अत्यन्तआवश्यक हैकिहमवस्तु को जैसी है, उसेवैसा देखने का अभ्यासकरेंऔरअपनेअन्दरकिसीअन्य प्रकार की विसंगतियों और दुराग्रहों को न पनपनेदें।सदैवरचनात्मकऔरसृजनात्मकविचारों का सहर्षस्वागत करें। जे. कृष्णमूर्ति एक बातबड़ी दृढ़ताऔरकर्मठ्ता के साथकहतेहैंकि ''मनुष्य स्वतंत्र होमैंकेवल इस जरूरी बात से स्वंय कोसम्बन्धितकरताहूँ।मैंउसेसभीपिंजरों, सभीभय से मुक्तकरनाचाहताहूँ, मैंनहींचाहता मनुष्य कोई नया धर्म, नयासम्प्रदाय, नयासिद्धान्त या फिरनयादर्शनढूंढे।''

वे आगे कहते हैं कि शिक्षा के माध्यम से आप स्वंय का स्वंय से साक्षात्कारकरासकतेहैं। आर्दश जीवन और आर्दशदृष्टिकोण की प्राप्तिहमेंशिक्षा से हीप्राप्तहोसकतीहै।प्रत्येकमनुष्य को प्रकृतिक सौन्र्दय को देखने और समझने की दृष्टि विकसित करनी होगी। यह एक सतत् प्रक्रिया है, जिसे हम शिक्षा और समझ से प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षा मात्र पुस्तकों को पढ़ना और तथ्यों को कंठस्थ करना नहीं है। यह कोई दिखावे की वस्तु नहीं है क्योंकि दिखावा दूसरों के लिए होता है और यहाँ बात स्वंय के साक्षात्कार की है। माता–पिता अपने बच्चों को ऐसे विद्यालयोंमेंभेजतेहैं, जहाँ महत्वकांक्षा है, प्रतिस्पर्धा है, जहाँ प्रेम का नामों–निशान नहींहै।

यहीकारणहैकिहमारासमाजनिरन्तरसड़ताजारहाहै, यह सतत् संघर्षमय बनताजारहाहै।हमजाने–अनजाने एक ऐसेसमाज या सृष्टि का निर्माणकररहेंहैंजो एक खोखलीऔरदिखावे की दुनिया मात्र रहगयीहै, जिसकावास्तविकमानवीय मूल्योंऔरसिद्धान्तों से कोईसरोकारनहींहै।शिक्षा का वास्तविकअर्थहमें उस योग्य बनानाहैकिहम पक्षियों के कलरवकोसुनसकें, आकाशको देख सकें, वृक्षोंऔरपहाड़ियों के अनुपम एवंअद्वितीय सौन्दर्यकोमहसूसकरसकें।अर्थात् हमप्रकृतिप्रेमी, मानवीय मूल्योंऔरआत्म–प्रेमीबनेंताकिहम स्वतंत्र, निष्पक्ष औरसजगहोकरवस्तुओं का चुनावकरसकें।आपप्रकृति से अलगनहींहैंऔर न हीसमाज से इसलिए आपकाहर एक कदमअपनेआपमेंबहुतहीमहत्वपूर्णहोताहै।

8.3 सारांश

अतः सांराशतः जे. कृष्णमूर्ति के अनुसारकहाजासकताहैकि जीवन के प्रतिआदर्शदृष्टिकोण के निर्माण के निमित्तआपका स्वतंत्र आचरण, चिन्तन, मननऔरव्यवहारआताहै।आत्मा, परमात्मा या इन्द्रियातीतसत्ताआपकी क्षमताऔर शक्तिको क्षीणकरतीहै।परम्परा, रूढ़ियाँ औररीति–रिवाजआपकेबहुमुखीचिन्तनऔरमननकोप्रभावितकरतीहैं।आपका जीवन के प्रतिउत्कृष्ट दृष्टिाकोणकहें या जीवन का परिवर्तनसिर्फइसीबोध मेंनिहितहै की आप स्वतंत्र रूप से सोचतेहैं कि नहीं और आप अपनी सोच पर ध्यानदेतेहैंकिनहीं। यदिआपअन्य के विचारों, धाराणाओंऔर बातों से सदैव असहमति ही व्यक्त करते हैं तो आप कभी भी नये विचारों और सिद्धान्तों को नहीं गढ़ सकते हैं। आपकी सोच और समझ में समग्रता ही आपके व्यक्तित्व का परिचायक है। जीवन के प्रतिआदर्श दृष्टिकोण की परिभाषा भी इसी बात में निहित है।

6.4 शब्दावली : आदर्श दृष्टिकोण, स्वतंत्रता, प्रतिस्पर्धा, निडरता, सशक्त और सार्थक विचार, दार्शनिक, धार्मिक विद्वान, मनोवैज्ञानिक, संस्कार, धर्म, नैतिकता, आध्यत्मिकता, निष्पक्षता और केन्द्रीभूत।

6.5 प्रश्नावलीः

1. जे. कृष्णमूर्ति का संक्षिप्त परिचय प्रदान करें।
2. जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण से क्या तात्पर्य है ?
3. व्यक्ति का जीवन के प्रति आदर्श दृष्टिकोण कैसा होना चाहिए?
4. जीवन के निर्माण में आदर्श दृष्टिकोण की क्या भूमिका है?

6.6 सन्दर्भग्रन्थ :

1. सक्सेना, लक्ष्मी, ''समकालीन भारतीय दर्शन'', उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2016

2. शर्मा, ए. सी., ''प्रेम क्या है? अकेलापन क्या है?'', राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरीगेट, दिल्ली, 2013.
3. गुप्ता, मुकेश, '' जे. कृष्णमूर्तिः एक जीवनी'', राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरीगेट, दिल्ली, 2013.
4. https://en.wikipedia.org/wiki/Jiddu_Krishnamurti
5. https://www.jstor.org/stable/23607349

.....000.....

इकाई–7

बुद्धि की सीमाएं

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 बुद्धि की सीमाएं

7.3 सारांश

7.4 शब्दावली

7.5 प्रश्नावली

7.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

.....0000.....

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको जे. कृष्णमूर्ति के 'बुद्धि की सीमाएं' विषय के सन्दर्भ में उनके विचारों से अवगत कराना है। इस इकाई के पूर्ण होने पर आप निम्नलिखित तथ्यों से परिचित हो पायेंगे–

- बुद्धि, बौद्धिक क्षमता और सीमा के प्रति सामान्य समझ विकसित कर पायेंगे।
- जे. कृष्णमूर्ति के 'बुद्धि की सीमाओं' से सम्बन्धित विचार को जान पायेंगे।
- बुद्धि को प्रभावित करने वाले तथ्यों और कारकों से परिचित होगें।

7.1 प्रस्तावना:प्रस्तुत इकाई में जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार 'बुद्धि की सीमा' से सम्बन्धित तथ्यों और जानकारियों पर गहन और विस्तृत दृष्टिपात किया जायेगा। सामान्य अर्थों में बुद्धि से क्या तात्पर्य है? बुद्धि की सीमाओं से क्या तात्पर्य है? बुद्धि की सीमाओं को कैसे जाना जा सकता

है? वे कौन से तत्थ एवं कारक हैं जो बुद्धि की सीमा को प्रभावित करते हैं? बुद्धि की सीमा को क्यों जानना जरूरी है? आदि प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत इकाई में खोजने का प्रयास किया गया है। जे. कृष्णमूर्ति के द्वारा व्यक्त किया है, यह विषय बहुत ही गहरा और विशिष्ट है। उन्होंने कहा है कि बुद्धि की सीमा सिर्फ स्मृति और ज्ञान से बहुत आगे बढ़ने की सक्षमता को निर्धारित करती है। यह आत्म–स्वीकृत और सामाजिक प्रतिरोध के बीच एक संतुलन बनाए रखती है, जिसमें समय, स्थिति, और परिस्थितियों के अनुकूल विचार करना आवश्यक होता है।

कृष्णमूर्ति ने समझाया कि बुद्धि की सीमा जिसमें लोग स्वयं को रोक लेते हैं, वहां उन्हें अपने स्वार्थी और स्वाभिमानी विचारों से बाहर निकलकर व्यापक और समग्र दृष्टिकोण को समझने की क्षमता होनी चाहिए। इस प्रकार, वे बुद्धि को एक स्थिर, अपरिपक्व स्थिति में देखते हैं जो स्वतंत्रता, समझ, और सहानुभूति के साथ जुड़ी होती है।सीमाएं देश की संस्कृति की हैं, परिवेश की हैं और उन आर्थिक परिस्थितियों की हैं, जिनमें रहकर ही हम बड़े हुए हैं। अतः इन बंदिशों और सीमाओं से ऊपर उठे बिना हम कैसे चीजों को सही प्रकार से देख एवं समझ सकते हैं। कहने का तात्पर्य है कि हमारी बुद्धि सरल, सहज और सारगर्भित तथ्यों से ओत–प्रोत है, बस आवश्यकता है तो उसको सही अर्थों में जानने की।

7.2 बुद्धि की सीमाएं:

जे. कृष्णमूर्ति बाल्यकाल से ही उत्कृष्ट आध्यात्मिक समझएवं विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। समय के साथ इनकी आध्यात्मिक समझ, श्रेष्ठ ज्ञान और उच्च व्यवहार ने न केवल भारत अपितु विश्व के समस्त दार्शनिकों, धार्मिक विद्वानों एवं मनोवैज्ञानिकों को अपनी ओर आकर्षित किया।

जे. कृष्णमूर्ति विचारों की स्वतंत्रता और निडरता को लेकर बहुत ही मुखर थे, वे कहते थे कि मानव ने जितनी भी परम्परा और संस्कार, देश एवं काल से जानी है, उससे मुक्त होकर ही आप सच्चे अर्थों में मानव बन पाएँगें। जीवन की समृद्धि और सार्थकता इसी बोध में निहित है कि आप स्वतंत्र चिन्तन और मनन कर सकते हैं कि नहीं।आपको अपनी शक्ति और सामर्थ का भान होना ही चाहिए। उनके अनुसार विश्व को बेहतर बनाने के लिए यथार्थवादी और स्पष्टवादी मार्ग पर चलना ही होगा। आप के भीतर कुछ भी नहीं होना चाहिए, तब आप एक साफ एवं स्पष्ट आकाश देखने के लिए तैयार हो पायेंगे।आप धरती का भाग नहीं, आप स्वयं आकाश हैं।यदि आप कुछ भी हैं, तो फिर आप कुछ नहीं। अपनी महात्मा की छवि को दृढ़तापूर्वक नकारने के साथ ही उन्होंने 'ऑर्डर ऑफ दि स्टार' को भंग करते स्पष्ट शब्दों में कहा कि 'सत्य एक मार्ग रहित भूमि' है, उस तक किसी औपचारिक धर्म, दर्शन अथवा किसी सम्प्रदाय के माध्यम से नहीं पहुँचा जा सकता है।अब से कृपा करके याद रखें कि मेरा कोई शिष्य नहीं है, क्योंकि गुरु तो सब को दबाता है। वे किसी का भी गुरू नहीं बनना चाहते थे।

लोग उनके पीछे अन्धे और आज्ञाकारीहोकर चलें, वह यह नहीं चाहते थे। गुरू सत्ता तथा भारत से पश्चिम पहुँची अनुभवातीत ध्यान पद्धतियाँ उनके लिए अफसोस का विषय थीं। खास तौर पर वे ऐसे अनुयायियों और समर्थकों की एक भीड़ नहीं चाहते थे जो उन्हें भगवान घोषित कर दे और उनके चारों ओर धर्म खड़ा कर दे तथा गद्दी–पदवी की रचना कर एक अधिसत्ता बना दे।

स्पष्ट है कि जे. कृष्णमूर्ति यह बताना चाहते हैं कि आपकी बौद्धिक क्षमता और सामर्थ को गुरूवादी परम्परा, अनुयायी विचारधारा और रूढ़िवादी विचार सीमित और संकुचित करते हैं, इन सभी से व्यक्ति को बचना चाहिए। सच तो स्वयं आपके भीतर है। उससे साक्षात्कार करना अपका कार्य है, उसके लिए प्रत्यत्न आपको करना है, साथ ही सच को ढूँढने के लिए मनुष्य को सभी बन्धनों से स्वतन्त्र होना नितान्त आवश्यक है। आपके बुद्धि की सीमाएं अनन्त और अपरा हैं। ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, धर्म और आध्यात्मिकता के द्वारा इसे सीमित करना कहीं से उचित नहीं है। समय–समय पर आपको अनन्त उदाहरण मिल जायेंगे जहाँ किसी एक मानव ने दिखाया कि आज तक जो मानव दुष्कर और असंभव मान रहा था उसे इसी बुद्धि द्वारा बहुत–ही आसानी से प्राप्त किया जा सकता है, बस जरूरत है तो अपनी बौद्धिक क्षमता और शक्ति को पहचानने की। यदि हम अपने

कृष्णमूर्ति ने बड़ी ही स्पष्टता, मुखरता एवं जीवटता से लगातार दुनिया के अनेकों भागों में भ्रमण किया और लोगों को शिक्षा दी तथा लोगों से शिक्षा भी ग्रहण की। उन्होंने सम्पूर्ण जीवन एक शिक्षक और छात्र की तरह व्यतीत किया। मनुष्य के सर्वप्रथम मनुष्य होने से ही मुक्ति की शुरुआत होती है, किंतु आज का मानव हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, मुस्लिम, अमेरिकी या अरबी है। उन्होंने कहा था कि संसार विनाश की राह पर आ चुका है और इसका हल तथाकथित धार्मिकों और राजनीतिज्ञों के पास नहीं है।

वे कहते थे कि ''गंगा बस उतनी नहीं है, जो ऊपर–ऊपर हमें नजर आती है। गंगा तो पूरी की पूरी नदी है, शुरू से आखिर तक, जहाँ से उद्‌गम होता है, उस जगह से वहाँ तक, जहाँ यह सागर से एक हो जाती है। सिर्फ सतह पर जो पानी दीख रहा है, वही गंगा है, यह सोचना तो नासमझी होगी। ठीक इसी तरह से हमारे होने में भी कई चीजें शामिल हैं, और हमारी समझ, सीमायें, हमारे अंदाजे, विश्वास, पूजा–पाठ, मंत्र–ये सब के सब तो सतह पर ही हैं। इनकी हमें जाँच–परख करनी होगी, और तब इनसे मुक्त हो जाना होगा–इन सबसे, सिर्फ उन एक या दो विचारों, एक या दो विधि–विधानों से ही नहीं, जिन्हें हम पसंद करते हैं या नहीं।''

किसी चीज को सहज रूप से जैसी वह है, वैसी ही देखना, यह संसार सर्वाधिक कठिन चीजों में से एक है, क्योंकि हमारा दिल व दिमाग बहुत जटिल, जो वस्तु जितनी सरल,

सहज और सही जान पड़ती है, उतनी होती नहीं है और हमने सहजता का गुण खो दिया है। धार्मिक मन, प्रेम का विस्फोटक है। यह प्रेम किसी भी अलगाव को नहीं जानता। यह न एक है न अनेक, अपितु यह प्रेम की अवस्था है, जिसमें सारा विभाजन समाप्त हो चुका होता है। सौन्दर्य की तरह उसे भी शब्दों के द्वारा मापा नहीं जा सकता । इस मौन से ही एक ध्यानपूर्ण मन का समस्त क्रियाकलाप जन्म लेता है। कृष्णमूर्ति ने सत्य को एक 'मार्गरहित भूमि' बताया है और यह भी कहा है कि किसी भी औपचारिक धर्म, सम्प्रदाय एवं दर्शन के माध्यम से इस तक नहीं पहुँचा जा सकता।

जे. कृष्णमूर्ति ने शिक्षा के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि शिक्षा का सबसे बड़ा कार्य एक ऐसे समग्र व्यक्तित्व का विकास है जो जीवन की समग्रता को पहचान सके, उसे जान और समझ सके। वे विचार–विमर्श एवं वार्ताओं द्वारा अपने विचारों को लोगों तक पहुँचाते थे, क्योंकि मानव मूल के मूलभूत परिवर्तनों से तथा एक नवीन संस्कृति के सृजन से जो केन्द्रीभूत है, उसके सम्प्रेषण के लिए शिक्षा को कृष्णमूर्ति प्राथमिक महत्त्व देते हैं।

बुद्धि की सीमाओं को इंगित करते हुए वे अनुशासन और ध्यान को बहुत ही महत्वपूर्ण मानते हैं और वे कहते हैं कि अनुशासन आन्तरिक और आध्यत्मिक प्रवृत्ति है, बाह्य अनुशासन मन को मूर्ख बनाता है। यह आप में अनुकूलता और नकल करने की प्रवृत्ति को जन्म देता है, परन्तु यदि आप अपने आन्तरिक शक्ति, चिन्तन और विचारों के माध्यम से स्वयं को अनुशासित रख सकते हो, तो इससे आप में एक उत्कृष्ट बुद्धिमत्ता का विकास और संचार होता है।। जहाँ उत्कृष्ट बुद्धिमत्ता होगी, वहाँ स्वतन्त्रता सदैव विराजमान रहेगी।

यदि आप ऐसा करने में स्वतन्त्र नहीं हैं, तो आप व्यवस्था नहीं कर सकते। व्यवस्था ही अनुशासन है। कृष्णमूर्ति अपने शैक्षिक विचारों के माध्यमों से शिक्षक एवं शिक्षार्थी को यह उत्तरदायित्व सौंपते हैं कि वे एक अच्छे समाज का निर्माण करें, जिसमें सभी लोग सुख, शान्ति, सुरक्षा, सौहार्द एवं बिना किसी हिंसा के प्रसन्नतापूर्वक जीवन जी सकें। हम अपने सशक्त और समग्र कल का निर्माण तभी कर सकते हैं जब आज हम अपने विचारों, सोच और समझ में स्वतंत्र और निडर होंगे।

सच्ची स्वतंत्रता से तात्पर्य किसी नवीन वस्तु की प्राप्ति नहीं है, वरन् अज्ञान की परतों को हटाकर अपने ही स्वरूप की प्राप्ति है। मनुष्य को स्वंय से दूर नहीं जाना है। मनुष्य स्वंय में एक अनन्त सृजनात्मता और रचनात्मकता का स्त्रोत है, पर दिशा विभ्रम के कारण उसे जीवन पर्यनत भटकना पड़ता है। जीवन के तल पर प्रविष्ट होकर उस सत्य का साक्षात्कार करने की जगह मानव मन विविध प्रकार की, विविध स्तरीय उपलब्धियों के द्वारा अपने को सन्तुष्ट करने की चेष्टा करता है। यहाँ कृष्णमूर्ति के विचारों में हमें वेदान्त विचारों की स्पष्ट गूंज सुनने को मिलती है– स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि मनुष्य जब माया के पार यानी

उसकी चेतना जब देश–काल के अतिक्रमण की सामर्थ्य अपने में विकसित कर लेती है, तब सहज ही उसकी दृष्टि विश्व के अधिष्ठान का साक्षात्कार करती है, पर वेदान्त के अनुसार यही मनुष्य की अन्तिम उपलब्धि नहीं है। अन्य शब्दों में, माया के अतिक्रमण के बाद जब मनुष्य अपने तथा जगत् के अधिष्ठान के रूप में ईश्वर की सत्ता की प्रतीति करता है, तो वह उसकी यात्रा की इति नहीं है प्रारम्भ ही है : कालान्तर में वह अनुभव करता है कि जो सत्ता उसके बाहर थी और अपने वैभव एवं शक्ति में अपार श्रद्धा एवं उपासना योग्य थी, वही वस्तुतः उसके भीतर भी है और यथार्थ में उसमें और ईश्वर में तात्विक दृष्टि से पूर्ण अभेद है। स्पष्ट है कि शुद्ध एवं उच्चकोटि की आध्यात्मिकता का मूलाधार एकता की यही प्रतीति है, जिसका अनुभव मनुष्य अपनी आत्मा की गहराई से करता है।'

कृष्णमूर्ति सृजनात्मक बुद्धि के विकास हेतु बोध की समग्रता पर विशेष बल देते हैं। विश्व जो अनेकानेक समस्याओं एवं दुराग्रहों के दौर से गुजर रहा है, उसे एक सर्वथा नवीन एवं नैतिक मानदण्ड की आवश्यकता है। मनुष्य को आन्तरिक परिवर्तन की आवश्यकता है, विश्व में व्याप्त कुण्ठा, हताशा, संत्रास को सिद्धान्तों एवं आदर्शों के माध्यम से नहीं पकड़ा जा सकता, इसके लिए नवीन नैतिक सिद्धान्त का आविर्भाव अपेक्षित है। यहउचित शिक्षा के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। प्रबुद्ध मस्तिष्क ही समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं अराजकता को अपनी समग्र दृष्टि के माध्मय से समाप्त कर सकता है। क्योंकि सतही तौर पर आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन के बाद भी मनुष्य को रूपान्तरित करने की आवश्यकता का प्रश्न ज्यों का त्यों बना रहता है। अन्य शब्दों में, तंत्र एवं सामाजिक ढाँचा अगर बदल भी जाए, लेकिन मन में विषमतावादी जीवन मूल्य एवं लिप्साएँ बनी रहें, तो मानव का स्वतंत्र अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। अतः बिना समुचित आत्मबोध के कुछ भी सम्भव नहीं है।

जे. कृष्णमूर्ति ने वर्ष 1979 में प्रकाशित हुई अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मेडिटेशन' में ध्यान के सन्दर्भ में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने लिखा है कि ध्यान का अर्थ विचार का अन्त हो जाना है तथा एक भिन्न आयाम का प्रकट होना है जो समय से परे है। ध्यानपूर्ण मन शान्त होता है। यह मौन विचार की कल्पना से परे है। यह मौन किसी निस्तब्ध संध्या की नीरवता भी नहीं है। विचार जब अपने सारे अनुभवों, शब्दों और प्रतिभाओं सहित पूर्णतः विदा हो जाता है, तभी इस मौन का जन्म होता है। यह ध्यानपूर्ण मन ही धार्मिक मन है।

7.3 सारांश

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि क्रांन्ति एवं विद्रोह से आक्रान्त इस युग में मनुष्य परायेपन के दुःख बोध से पीड़ित है। वह व्यक्ति से, समाज से, स्वयं को जोड़ सकने में सर्वथा अक्षम महसूस कर रहा है। इसी को आज की पदावली में 'एलियेनेशन' कहते हैं। वस्तुतः जीवन की सुव्यवस्था के लिए जीवन व मानस की समन्वित अभिव्यंजना आवश्यक है।

सन्तुलित बौद्धिक आध्यात्मिक प्रगति तभी संभव है, जब व्यक्ति जीवन की सामान्य इच्छाओं से ऊपर उठते हुए, अन्तस की गहराईयों में उतरते हुए, समग्र बोध को प्राप्त करें, क्योंकि वही उसके जीवन के अंधेरे को आलोकित करने की शक्ति रखता है।इसी में उसकी विमुक्ति भी है। आपकी बुद्धि की सीमा अनन्त, अपार और अतुलनीय है तथा बुद्धि की सीमा और परिधि को आप स्वंय परिभाषित एवं परिष्कृत करते हो। अतः आवश्यकता है, अपने बौद्धिक सीमाओं के ज्ञान का सुमचित एवं समग्र उपयोग कर अपने जीवन को उसके लक्ष्य तक ले जायें, तभी हम मानव होने के सही अर्थों को परिभाषित कर पायेंगे।

7.4 शब्दावलीः

परिष्कृत, स्वतंत्रता, आर्विभाव, सृजनात्मकता, प्रतिस्पर्धा, निडरता, बुद्धि की सीमाएं, तात्विक दृष्टि, इन्द्रियातीत, पारलौकिक, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, सशक्त और सार्थक विचार,दार्शनिक, धार्मिक विद्वान, मनोवैज्ञानिक, संस्कार, संम्प्रेषण, बुद्धिमत्ता, धर्म, नैतिकता, आध्यत्मिकता, निष्पक्षता और केन्द्रीभूत।

7.5 प्रश्नावलीः

5. जे. कृष्णमूर्ति के अनुसार 'बुद्धि की सीमा' से क्या तात्पर्य है?
6. बुद्धि की सीमाएं क्या हैं?
7. बुद्धि की सीमाओं को जानना क्यों आवश्यक है?
8. बुद्धि की सीमा को प्रभावित करने वाले कारक कौन–कौन से हैं?

7.6 सन्दर्भ ग्रन्थः

6. शर्मा, ए. सी., ''प्रेम क्या है? अकेलापन क्या है?'', राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2013.
7. गुप्ता, मुकेश, '' जे. कृष्णमूर्तिः एक जीवनी'', राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2013.
8. सक्सेना, लक्ष्मी, ''समकालीन भारतीय दर्शन'', उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2016

9- https://en.wikipedia.org/wiki/Jiddu_Krishnamurti

10- https://www.jstor.org/stable/23607349

खण्ड–4 कृष्णचंद भट्टाचार्य

खण्ड परिचय :

प्रस्तुत खण्ड में समकालीन भारत के महान दार्शनिक कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य के आत्मा या विषयी के दर्शन पर प्रकाश डाला गया है। यह खण्ड दो इकाइयों में विभाजित है। पहली इकाई में विषयिता या आत्मपरकता के सिद्धांत का निरूपण किया गया है। दूसरी इकाई में आत्मा के स्वतंत्रता की क्रमिक अनुभूति कैसे होती है, इसका विश्लेषण किया गया है।

इकाई 8 में विषयिता की अवधारणा का विवेचन किया गया है। इसमें विषयी और विषय की पृथकता और विषयिता के स्तरों–शरीररूप विषयिता, मानसिक विषयिता और आध्यात्मिक विषयिता पर चर्चा की गई है। अन्ततः विषयी के शुद्ध रूप का उद्घाटन किया गया है, जो आत्म अनुभूति से परे जाने की अवस्था है, 'मैं' के निषेध की अवस्था है और अनिर्दिष्ट परमसत् का क्षेत्र है।

इकाई 9 में विषयी या आत्मा की उन्मुक्तता या स्वतंत्रता की क्रमिक अनुभूति का विवेचन किया है। इसके अन्तर्गत यह बताया गया है कि विषयी शारीरिक आत्मपकता, मानसिक आत्मपरकता और आध्यात्मिक आत्मपरकता के स्तरों से होते हुए अनिश्चित परमसत् के क्षेत्र में प्रवेश करता है और अपने शुद्ध रूप से साक्षात्कार करते हुए विषयीरूप स्वतंत्रता की स्थिति प्राप्त कर लेता है।

.....000.....

इकाई 8 विषयिता का सिद्धांत

परिचय

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 विषयिता का सिद्धांत

8.3 सारांश

8.4 शब्दावली

8.5 प्रश्नावली

8.6 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ

.....000.....

8.0 उद्देश्य–

- के0सी0 भट्टाचार्य के दर्शन में विषयिता या आत्मपरकता के दर्शन को समझना।
- आत्मा या विषयी के स्वरूप का निरूपण करना।

8.1 प्रस्तावना– कृष्ण चन्द्र भट्टाचार्य ने अपने दर्शन में विषयी अथवा आत्म तथा विषय का गहन एवं गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया है। उनका मानना है कि विषयी या आत्मा एक ऐसी सत्ता है, जिसकी अनुभूति के आधार के रूप में कोई अर्थबोध नहीं होता, लेकिन इसका आशय यह नहीं है कि आत्मा कोई अर्थहीन सत्ता है। आत्मा ऐसी सत्ता है जो कथनीय है। उसमें तात्पर्यपूर्ण कथनीयता है, जिससे उसका अन्तर्विषय अविश्लेष्य

होते हुए भी समझ लिया जाता है। आत्मा अनुभूति का विषय है। विषयिता आत्म से विषय की भिन्नता एवं मुक्तता की अनुभूति है। विषयिता विषयी के स्वतंत्रता की अनुभूति है। प्रस्तुत इकाई में विषयिता के इन्हीं विशेषताओं का सम्यक् निरूपण प्रस्तुत है।

8.2 विषयिता का सिद्धांत– कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य का कहना है कि विषयिता या आत्मपरकता शब्द का प्रयोग कई तरह से होता है, इसलिए इसके अर्थ का निरूपण दुष्कर हो जाता है। प्रो0 भट्टाचार्य कहते हैं कि विषयिता के स्वरूप के स्पष्ट करने के क्रम में वे अभावात्मक विधि का सहारा लेते हैं। इसमें वे विषयिता को विषयनिष्ठता से अलगाव पर चर्चा करते हैं। इसे सम्यक् रूप से समझने के लिए सर्वप्रथम विषय और विषयी के मूलभूत अन्तर को जानना होगा, जो अधोलिखित हैंः

- विषय में अनिवार्यतः अर्थबोध होता है, जबकि विषयी में इस तरह के अर्थनिर्देश की आवश्यकता नहीं रहती है। विषयी की चेतना सदैव अर्थ–चेतना से भिन्न होती है। अर्थ चेतना में द्वैत का भाव रहता है, वहीं विषयी में स्वचेतना है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि विषयी अर्थहीन है, विषयी में कथनीयता है, जिससे उसका अन्तर्विषय एक विशेष अर्थ में समझा जाता है। इस प्रकार विषय में अर्थबोध (Meanable) है जबकि विषयी में कथनीयता (Significant speakable) है।
- विषय 'यह' शब्द से सूचित होता है और सभी लोग यह शब्द से उसी विषय को सूचित करते हैं। उदाहरण के लिए मोहन पुस्तक के रूप में एक विशेष वस्तु की ओर संकेत कर रहा है। इसी प्रकार सोहन भी 'यह पुस्तक है' कहकर पुस्तक के रूप में उसी विशेष वस्तु को सूचित कर रहा है। यहाँ 'यह' शब्द का व्यवहार इस प्रकार किया जा रहा है कि दोनों व्यक्ति पुस्तक रूप एक विशेष वस्तु को 'यह' कहकर सूचित कर सकते हैं। जबकि विषयी के लिए 'मैं' शब्द का प्रयोग होता है जो प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने लिए निर्देश करता है। जैसे– यदि मोहन 'मैं' शब्द का प्रयोग करेगा तो वह स्वयं को निर्देश करके करेगा, उसी प्रकार सोहन भी मैं

का निर्देश मोहन के लिए न करके अपने लिए करेगा। 'वह' और 'तुम' शब्द भी विषयी के लिए प्रयुक्त होते हैं। किन्तु कृष्णचन्द्र भट्टाचार्य ने इसके लिए विशिष्ट शब्द मैं का प्रयोग किया है। 'मैं' को 'वह' और 'तुम' से अधिक मौलिक बताया है, क्योंकि 'वह' और 'तुम' भी अपने आपको 'मैं' से संबोधित कर सकते हैं। विषय ग्रहण सर्वनिष्ठ होता है, जबकि विषयी ग्रहण आत्मनिष्ठ। प्रो0 भट्टाचार्य मैं को विषयी का प्रतीक बना देते हैं। वे उसे 'तुम' और 'वह' से अधिक महत्व देते हैं, क्योंकि वह उनसे अधिक विशिष्ट है। इसमें वह व्यापकता नहीं है जो विषय में हैं।

- ध्यातव्य है कि आत्मा या विषयी के लिए विषय शब्द का प्रयोग हो सकता है, लेकिन विषय के लिए विषयी का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। जैसे–यदि मोहन पुस्तक की ओर इशारा करके कहे कि ''यह मैं हूं'' तो यह असत्य कथन हो जायेगा, जबकि यदि वह कहता है कि ''मै यह हूं'' जैसे– मैं अध्यापक हूँ, तो यह असत्य नहीं कहा जायेगा। इस प्रकार सामान्य भाषीय प्रयोग में विषयी को विषयरूप बना दिया जाता है। किन्तु इस प्रकार की विषयरूपता, विषयी का लक्षण नहीं है। वास्तव में विषयिता या आत्मपरकता के लिए विषय का निषेध परम आवश्यक है।
- यह शब्द से प्रदर्शित वस्तु व्यष्टि भी हो सकती है और सामान्य भी। जबकि अहं से प्रदर्शित विषयी सदैव एक व्यक्ति या सामान्य को संदर्भित नहीं करता। इसका उपयोग न केवल एक चीज को इंगित करने के लिए किया जाता है, बल्कि ऐसी चीज को इंगित करने के लिए भी किया जाता है, जिसे एक समय में केवल एक वक्ता द्वारा इंगित किया जा सकता है। हालाँकि अलग–अलग वक्ता स्वयं को संदर्भित करने के लिए अहं का उपयोग कर सकता है। और प्रत्येक को श्रोता द्वारा एक विशिष्ट व्यक्ति समझा जा सकता है।

- प्रो0 भट्टाचार्य कहते हैं कि विषय का निराकरण हो सकता है, उस पर संदेह किया जा सकता है, लेकिन विषयी की सत्ता का निराकरण किसी भी स्थिति में संभव नहीं है। किसी तथ्य का निराकरण अन्य तथ्यों के आधार पर हो जाता है, लेकिन विषयी स्वयं निराकरण को संभव बनाने वाला आधारभूत तत्व है, उसका निराकरण कैसे संभव हो सकता है? तो फिर क्या विषयी अचिंत्य है? प्रो0 भट्टाचार्य कहते हैं कि वह अचिंत्य भी नहीं है, बल्कि एक ऐसी सत्ता है, जिसका अन्तर्विषय अविश्लेष्य और अपूर्व है। जो सभी अर्थपूर्ण सत्ताओं से भिन्न होते हुए भी समझी जाती है और बिना प्रश्न के विश्वास किया जाता है।

ध्यातव्य है कि विषयिता के तीन स्तर हैं–

1. **शरीर रूप विषयिता**– उपर्युक्त विश्लेषण में यह स्पष्ट हो गया कि विषयिता, विषयी की विषय से भिन्नता का ज्ञान है। परन्तु यह ज्ञान हुआ कैसे? यह ज्ञान इसलिए संभव हो पाया क्योंकि हमें हमारे शरीर का ज्ञान है। जैसे– मै अपने सामने मेज पर रखी एक पुस्तक देख रहा हूँ। इस पुस्तक से मेरा संपर्क मेरी इन्द्रियों, यथा–आंख और त्वचा द्वारा होता है। यह संपर्क का माध्यम ही हमें इस भिन्नता का भान भी कराता है। इस प्रकार विषयी की वस्तु–जगत से भिन्नता शरीर पर आधारित हो गई। इसीलिए यह शरीररूप विषयिता है। शारीरिक विषयिता के तीन स्तर हैं– दृश्य शरीर, अनुभूत शरीर तथा अनुपस्थित शरीर। वे कहते हैं कि दृश्य शरीर वह शरीर है जो बाहर से दिखाई पडता है, अपने को भी और दूसरों को भी, अनुभूत शरीर स्वयं को ही अनुभूत होता है, वहीं अनुपस्थित शरीर में अभाव का ज्ञान होता है। शारीरिक आत्मपरकता के प्रथम स्तर में पहले आत्मा अपने आप को दृश्य शरीर से एकरूप कर लेता है। वहीं अगले स्तर में अनुभूत शरीर या शरीर की आन्तरिक भावना से एकाकार कर लेता है। अनुपस्थित शरीर वह तीसरा आयाम है, जिसमें हम शारीरिक सीमाओं से ऊपर उठते हैं।

इसमें हम एक शरीर या वस्तु का अभाव महसूस करते हैं। इस अनुपस्थिति या अभाव का ज्ञान दो तरह से हो सकता है–पहला, काल्पनिक प्रत्यक्ष के द्वारा अनुपस्थिति का ज्ञान, दूसरा, सचेतन अप्रत्यक्ष के द्वारा अनुपस्थिति का ज्ञान।

पहले की व्याख्या के लिए प्रो0 भट्टाचार्य ने अपनी पुस्तक ''स्टडीज इन फिलॉसफी'' में एक उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो यहां उल्लेखनीय है। मान लिया कि एक स्थान पर एक वृक्ष था। कुछ समय के बाद देखते हैं कि उस स्थान पर भिन्न दृश्य है। हम यह जान जाते हैं कि किसी वस्तु की अनुपस्थिति है, लेकिन किसकी है, यह नहीं जान पाते। एक दूसरा उदाहरण इस तरह दिया जा सकता है कि एक व्यक्ति अपने अध्ययन कक्ष में किसी पुस्तक को खोज रहा है, लेकिन वह पुस्तक नहीं मिलती। यहां उसे ज्ञान है कि पुस्तक अनुपस्थित है। यहां द्रष्टव्य है कि दृश्य शरीर और अनुभूत शरीर में अन्तर पूर्ण न होकर आंशिक है। क्योंकि काल्पनिक प्रत्यक्ष के द्वारा जो अनुपस्थिति का भान होता है, वह अनुभूत शरीर के ज्ञान के स्तर का ही ज्ञान है। जैसे–वृक्ष के उदाहरण में कुछ के अनुपस्थित होने का ज्ञान है। यहां कुछ शब्द से आशय वृक्ष से नहीं है, क्योंकि वृक्ष का ज्ञान ही नहीं है, यह कुछ कल्पना में अनुभूत हो रहा है।

2. **मानसिक विषयिता**– इस स्तर पर शरीर का निषेध हो जाता है और आत्मपरकता को शरीर से निषेध का ज्ञान हो जाता है। जब भी किसी भी वस्तु का हम अनुभव करते हैं तो उस वस्तु या विषय के साथ उसके अनुभव करने की भी समझ होती है। यह समझ एक मानसिक तथ्य है। विषयी वस्तु से संबंधित प्रतिमा या विचार अर्थात् मानसिक तथ्यों से एकरूप हो जाता है। परन्तु यह भी अंतिम स्तर नहीं है, क्योंकि मानसिक तथ्य किसी न किसी रूप में वस्तु से संबंधित होते हैं। विचार या भाव के स्तर पर 'अन्तर्वस्तु' और 'चेतना' का द्वैत बना रहता है। प्रो0 भट्टाचार्य के अनुसार आत्मा की स्वतंत्र चेतना का तात्पर्य 'अन्तर्वस्तु' और

'चेतना' के द्वैत से पूर्ण मुक्ति है। इस तरह वे मानसिक विषयिता को नकारकर आध्यात्मिक विषयिता को स्वीकार करते हैं।

3. **आध्यात्मिक विषयिता**–इस स्तर में मानसिक तथ्यों का भी निषेध हो जाता है। यह शुद्ध विषयिता में प्रवेश का द्वार है। आध्यात्मिक विषयिता को तीन अर्थों में समझने का प्रयास किया जाता है, पहला, विषयिता को भावना के रूप में, द्वितीय, विषयिता को मैं या अन्तर्निरीक्षण के रूप में एवं तीसरा, विषयिता को अन्तर्निरीक्षण से परे स्वतंत्र आत्म के रूप में। तीनों अर्थों का संक्षिप्त विवेचन अधोलिखित है–

भावनात्मक अनुभूति–यहां अर्थ का कोई महत्व नहीं रह जाता। मानसिक स्तर तक अर्थ से सम्पर्क बना रहता है। यहां विषयी वैचारिकता से मुक्त होता है और अपने प्राकृतिक रूप में अवस्थित होता है। इसे भावना की भावनात्मक अनुभूति भी कहा जाता है।

अन्तर्दृष्टि– यह विषयिता की स्पष्टतम अनुभूति प्रदान करती है। यह मैं चेतना की अनुभूति है। प्रो0 भट्टाचार्य कहते हैं कि आत्म को व्यक्त करने का सबसे उपयुक्त प्रतीक 'मैं' ही है। मैं विशिष्ठ है। वहीं वह और तुम शब्द भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए वह शब्द का प्रयोग एक ही व्यक्ति के लिए कई लोग कर करते हैं। वहीं तुम शब्द का जब हम प्रयोग करते हैं तो सामने वाले व्यक्ति के शरीर पर ही केन्द्रित होते हैं। जबकि मैं एकदम अलग है। उससे आत्मचेतना का ज्ञान होता है। मैं की चेतना उपभोगी चेतना है। यह समस्त प्रकार की विषयता एवं अर्थबोध से मुक्त होने की स्थिति है। ध्यातव्य है कि यह भी विषयिता की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं है, क्योंकि अन्य लोगों को भी मैं का बोध होता ही है। ऐसी व्यापकता विषयिता या आत्मपरकता के प्रतिकूल है, क्योंकि आत्मरकता को नितान्त विशिष्ट होना चाहिए।

अन्तर्दृष्टि से परे– यह शुद्ध विषयिता है। इस स्तर में मैं चेतना का निषेध हो जाता है। यह स्थिति वर्णन एवं रूपांकन से परे है। इसका कोई स्वरूप नहीं है।

यह पूर्णतया अनिश्चित निरपेक्ष सत् का क्षेत्र है तथा इसी को स्वतंत्र रूप विषयी कहा जा सकता है जो विषयिता के विकास का परम लक्ष्य है।

8.3 सारांश– के0 सी0 भट्टाचार्य के अनुसार विषयिता विषय और विषयी से भिन्नता की एक समझ है। विषयिता अर्थ निरपेक्ष है। विषयिता विषयीरूप में जीना है, विषयपरकता नहीं है। विषयिता को तीन स्तरों में विभाजित किया गया है– शारीरिक स्तर, मानसिक स्तर और आध्यात्मिक स्तर। शारीरिक स्तर में विषयी अपने आप को शरीर से एकरूप कर लेता है। मानसिक स्तर में विषयी मानसिक तथ्यों से ण्करूप होता है। इसके अंतर्गत प्रतिमा और विचार आते हैं। अध्यात्मिकता के स्तर में विषयिता स्वयं को अर्थ संदर्भ से पूर्णतया मुक्त कर लेती है। इसके तीन उप स्तर हैं। भावनात्मक अनुभूति, अन्तर्दृष्टि और अन्तर्दृष्टि से परे का स्तर। भावनात्मक स्तर में विषयिता विचार की हर संभावना से ऊपर उठ जाती है। अन्तर्दृष्टि के अंतर्गत विषयिता की स्पष्ट अनुभूति होती है। यह समझ बन जाती है कि विषयिता को व्यक्त नहीं किया जा सकता। अंतिम स्तर में मैं की चेतना का भी निषेध हो जाता है। यह आत्म अनुभूति से परे की अवस्था है, यह पूर्णतया अनिर्दिष्ट परमसत् का क्षेत्र है।

8.4 शब्दावली– विषय, विषयी, विषयिता

8.5 प्रश्नावली–

1. के0 सी0 भट्टाचार्य के विषयिता के सिद्धांत का वर्णन कीजिए।
2. के0 सी0 भट्टाचार्य के दर्शन में विषयिता के सभी स्तरों की समीक्षात्मक व्याख्या कीजिए।
3. के0 सी0 भट्टाचार्य के दर्शन में आत्मा की प्रकृति का निरूपण कीजिए।

8.6 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ –

1. टाक, ओमप्रकाश, *आधुनिक भारतीय चिंतक,* राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2008।

2. लाल, बसंत कुमार, *समकालीन भारतीय दर्शन,* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2006।

3. सक्सेना, लक्ष्मी (सं0), *समकालीन भारतीय दर्शन,* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2005।

4. सिन्हा, रमेश चन्द्र एवं विजयश्री, *समकालीन भारतीय चिंतक,* डी.के. प्रिंटवर्ल्ड (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 2013।

5. भट्टाचार्य, के0सी0, *द सब्जेक्ट ऐज फ्रीडम,* इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ फिलासफी, अमलनेर, 1930।

.....000.....

इकाई 9

स्वतंत्रता की क्रमिक अनुभूति

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 स्वतंत्रता की क्रमिक अनुभूति

9.3 सारांश

9.4 शब्दावली

9.5 प्रश्नावली

9.6 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ

.....000.....

9.0 उद्देश्य–

- के0सी0 भट्टाचार्य के दर्शन में आत्मा या विषयी की उन्मुक्तता या स्वतंत्रता की अनुभूति के क्रमिक स्तरों को समझना।
- के0सी0 भट्टाचार्य के दर्शन में आत्म के यथार्थ स्वरूप को समझना।

9.1 प्रस्तावना– के0सी0 भट्टाचार्य ने अपने दर्शन में आत्मपरकता का गहन एवं गम्भीर विवेचन प्रस्तुत किया है। प्रो0 भट्टाचार्य का मानना है कि आत्मपरकता की अनुभूति से तात्पर्य है, विषयी या आत्मा की यथार्थ अनुभूति। यहाँ यथार्थ अनुभूति का आशय है, आत्म के स्वतंत्रता की अनुभूति, उन्मुक्तता की अनुभूति। ध्यातव्य है कि स्वतंत्रता आत्मा का विशेषण नहीं, बल्कि उसका अन्तस्तम तत्व है। प्रस्तुत इकाई में स्वतंत्ररूप आत्म के साक्षात्कार करने की क्रमिक पद्धति का विवेचन किया गया है।

9.2 स्वतंत्रता की क्रमिक अनुभूति– के0सी0 भट्टाचार्य के अनुसार आत्मपरकता की अनुभूति का अर्थ आत्म के अपने वास्तविक आत्म–रूप की अनुभूति अपनी उन्मुक्तता की अनुभूति है। यह अनुभूति विभिन्न स्तरों से होती हुई अग्रसर होती है। इन स्तरों को क्रमिक कहा गया है, क्योंकि एक स्तर के निषेध के आधार पर आत्मपरकता दूसरे स्तर तक पहुँचती है। यह क्रमिक प्रक्रिया तब तक चलती है, जब तक निषेध योग्य कोई रूप बचा नहीं रह जाता।

साधारण मनुष्य एक विशिष्ट वातावरण में वस्तुओं से घिर कर जीता है। यह उसके आत्मरूप पर एक प्रकार का घेरा है। क्योंकि उसी सीमा के अन्तर्गत ही वह क्रियाशील हो पाता है। वैसे इस क्षेत्र में भी उसे अपनी उन्मुक्तता का भान रहता है। किन्तु वह उन्मुक्तता उस घेरे से सीमित रहती है। प्रो0 भट्टाचार्य ने दो प्रकार की स्वतंत्रता का उल्लेख किया– संकल्पनात्मक स्वतंत्रता और तात्विक स्वतंत्रता। अनुभूति की प्रक्रिया संकल्पनात्मक स्वतंत्रता के स्तर से तात्विक स्वतंत्रता तक के विकास की क्रमिक प्रक्रिया है।

इस क्रमिक विकास की प्रक्रिया के कई स्तर हैं, जिनका विवरण निम्नवत् हैः–

1. प्रथम स्तर वस्तुनिष्ठता के निषेध का स्तर है। यह आत्मा की स्वतंत्रता पर घेरा डाल कर बैठा रहता है। इसी कारण से आत्मा, आत्मरूपता की ओर केन्द्रित नहीं हो पाता। यह निषेध शरीर एवं शारीरिक वृत्ति के स्वीकार करने पर आधारित है। अन्य वस्तुओं की अपेक्षा शरीर आत्मा के अधिक निकट होता है। इस निकटता के कारण वह भी विषयिता या आत्मपरकता का अंग बन जाता है। यह स्तर **शारीरिक आत्मपरकता** का स्तर कहा जाता है। प्रो0 भट्टाचार्य दृश्य शरीर, अनुभूत शरीर तथा अनुपस्थित शरीर में एक भेद करते हैं। वे कहते हैं कि दृश्य शरीर वह शरीर है जो बाहर से दिखाई पडता है, अपने को भी और दूसरों को भी, अनुभूत शरीर स्वयं को ही अनुभूत होता है, वहीं अनुपस्थित शरीर में अभाव

का ज्ञान होता है। शारीरिक आत्मपरकता के प्रथम स्तर में पहले आत्मा अपने आप को दृश्य शरीर से एकरूप कर लेता है। वहीं अगले स्तर में अनुभूत शरीर या शरीर की आन्तरिक भावना से एकाकार कर लेता है। अनुपस्थित शरीर वह तीसरा आयाम है, जिसमें हम शारीरिक सीमाओं से ऊपर उठते हैं। इसमें हम एक शरीर या वस्तु का अभाव महसूस करते हैं। इस अनुपस्थिति या अभाव का ज्ञान दो तरह से हो सकता है–

काल्पनिक प्रत्यक्ष के द्वारा अनुपस्थिति का ज्ञान

सचेतन अप्रत्यक्ष के द्वारा अनुपस्थिति का ज्ञान

पहले की व्याख्या के लिए प्रो0 भट्टाचार्य ने अपनी पुस्तक ''स्टडीज इन फिलॉसफी'' में एक उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो यहां उल्लेखनीय है। मान लिया कि एक स्थान पर एक वृक्ष था। कुछ समय के बाद देखते हैं कि उस स्थान पर भिन्न दृश्य है। हम यह जान जाते हैं कि किसी वस्तु की अनुपस्थिति है, लेकिन किसकी है, यह नहीं जान पाते। एक दूसरा उदाहरण इस तरह दिया जा सकता है कि एक व्यक्ति अपने अध्ययन कक्ष में किसी पुस्तक को खोज रहा है, लेकिन वह पुस्तक नहीं मिलती। यहां उसे ज्ञान है कि पुस्तक अनुपस्थित है। यहां द्रष्टव्य है कि दृश्य शरीर और अनुभूत शरीर में अन्तर पूर्ण न होकर आंशिक है। क्योंकि काल्पनिक प्रत्यक्ष के द्वारा जो अनुपस्थिति का भान होता है, वह अनुभूत शरीर के ज्ञान के स्तर का ही ज्ञान है। जैसे–वृक्ष के उदाहरण में कुछ के अनुपस्थित होने का ज्ञान है। यहां कुछ शब्द से आशय वृक्ष से नहीं है, क्योंकि वृक्ष का ज्ञान ही नहीं है, यह कुछ कल्पना में अनुभूत हो रहा है।

2. दूसरा स्तर शारीरिक आत्मपरकता का निषेध है। इसमें आत्मपरकता को शरीर से भिन्नता की समझ हो जाती है। यह **मानसिक आत्मपरकता** का स्तर है। मानसिक तथ्यों का है। जब भी किसी भी वस्तु का हम अनुभव करते हैं तो उस वस्तु या विषय के साथ उसके अनुभव करने की भी समझ होती है। यह समझ एक

मानसिक तथ्य है। विषयी वस्तु से संबंधित प्रतिमा या विचार अर्थात् मानसिक तथ्यों से एकरूप हो जाता है। परन्तु यह भी अंतिम स्तर नहीं है, क्योंकि मानसिक तथ्य किसी न किसी रूप में वस्तु से संबंधित होते हैं। विचार या भाव के स्तर पर 'अन्तर्वस्तु' और 'चेतना' का द्वैत बना रहता है। प्रो0 भट्टाचार्य के अनुसार आत्मा की स्वतंत्र चेतना का तात्पर्य 'अन्तर्वस्तु' और 'चेतना' के द्वैत से पूर्ण मुक्ति है। इस तरह वे मानसिक विषयिता को नकारकर आध्यात्मिक विषयिता को स्वीकार करते हैं।

3. धीरे–धीरे आत्मा को यह अनुभूति हो जाती है कि मानसिक तथ्य उसका वास्तविक स्वरूप नहीं है। क्योंकि प्रतिमा विषय से संबंधित होती है और विचार चेतना एवं चेतना के विषय के द्वैत से ऊपर नहीं उठ पाता। आत्मपरकता इस प्रकार के द्वैत से परे है। इस मानसिक अवस्था का निषेध करके आगे का स्तर **आध्यात्मिक स्तर** है। इसकी पहली कड़ी भावनात्मक अनुभूति है। इसमें आत्मपरकता का भावना से तादात्म्य स्थापित किया जाता है। यहां आत्मा अर्थ से निरपेक्ष हो जाता है। वैचारिकता के घेरे से बाहर निकल जाता है और भावनात्मकता के स्तर में पहुंच जाता है। परन्तु शुद्ध भावनात्मकता के स्तर के लिए भावनात्मकता की चेतना से मुक्त होना होगा, जिसे भावना की भावनात्मक अनुभूति कहते हैं। इसमें आत्मा वास्तविक विषयिता के स्तर में प्रवेश करता है।

   इस भावनात्मक स्तर का निषेध आत्मा को अगले स्तर पर ले जाता है जिसे **अन्तर्दृष्टि** कहते हैं। ध्यातव्य है कि यह मनोवैज्ञानिक अन्तर्निरीक्षण नहीं है। यह आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि है, जो संज्ञानात्मक है। इस स्तर पर आत्मा वस्तुगत बोध से स्वयं को पूर्णतः मुक्त कर लेता है। यहां अर्थबोध समाप्त हो जाता है। अर्थबोध समाप्त होने का अर्थ है कि अन्तर्वस्तु और चेतना का द्वैत समाप्त हो जाता है। यहां 'मैं' का बोध होता है। इस बोध को मै की उपभोगी चेतना (Enjoying

Consciousness) कहते हैं, क्योंकि यहां आत्मा भोगता है। यहां ज्ञान–ज्ञाता का द्वैत समाप्त हो जाता है।

आगे के स्तर में इस 'मैं' का भी निषेध हो जाता है। यह **अन्तर्दृष्टि के परे** जाने की अवस्था है। इस प्रकार आत्मा के उन्मुक्त होने का भान अन्तर्दृष्टि का स्तर है, परन्तु इस अनुभूति के स्तर को पार कर जाना ही वास्तविक अवस्था है। इस चरम स्थिति का कोई निर्धारित स्वरूप नहीं है। अब इस स्तर का निषेध भी नहीं हो सकता। यह अनिश्चितता का क्षेत्र है। इसे आत्म की तरह भोगा भी नहीं जा सकता। यह पूर्ण स्वतंत्रता की स्थिति है। यही आत्मा का चरम लक्ष्य है। यही विषयीरूप स्वतंत्रता (Subject as Freedom) है।

उपर्युक्त विवरण से सपष्ट है कि सर्वप्रथम शरीर में आत्मगत भावना होती है। यहाँ 'मैं' शरीर से तादात्म्य भाव रखता है। उसी को 'मैं' जानकर शरीर से भिन्न वस्तुओं के प्रति वस्तुगत भावना रखता है। दूसरे स्तर में 'मैं' अपना तादात्म्य मन से कर लेता है और शरीर से लेकर अन्य वस्तुओं के प्रति वस्तुगत दृष्टिकोण रखता है। तीसरे स्तर पर 'मैं' शरीर और मन दोनों से ऊपर उठ जाता है। लेकिन अन्ततः इस 'मैं' का भी निरसन हो जाता है। प्रो0 भट्टाचार्य कहते हैं कि आत्मा की उन्मुक्तता की क्रमिक अनुभूति 'मैं' से ऊपर उठने, अन्तर्दृष्टि से परे की अवस्था में अपने चरम पर पहुँचती है। परन्तु यह एक ऐसी अवस्था है, जहाँ कोई निश्चितता नहीं है। यहाँ निषेध का भी कोई स्थान नहीं बचता। यह अनिश्चित क्षेत्र, निरपेक्ष सत् का क्षेत्र है। यही स्वतंत्रता रूपी आत्म है।

9.3 सारांश– के0 सी0 भट्टाचार्य के अनुसार विषयी या आत्मा के वास्तविक रूप का परिचय आत्मा के स्वतंत्रता की अनुभूति है। यह अनुभूति क्रम से, विभिन्न स्तरों से होते हुए अग्रसर होती है। यह प्रक्रिया निषेध के माध्यम से आगे बढ़ती है और तब तक चलती रहती है, जब तक कि निषेध के योग्य कुछ शेष रह जाता है। प्रथम स्तर के निषेध में वस्तुनिष्ठता का निषेध होता है। यह शरीर का स्तर है। शारीरिक स्तर में

विषयी या आत्मा अपने आप को शरीर से एकरूप कर लेता है। दूसरा स्तर मानसिक स्तर है। इसमें विषयी मानसिक तथ्यों से एकरूप होता है। इसके अंतर्गत प्रतिमा और विचार आते हैं। तीसरे स्तर अर्थात् अध्यात्मिकता के स्तर में विषयिता स्वयं को अर्थ संदर्भ से पूर्णतया मुक्त कर लेती है। इसके तीन उप–स्तर हैं। भावनात्मक अनुभूति, अन्तर्दृष्टि और अन्तर्दृष्टि से परे का स्तर। भावनात्मक स्तर में विषयिता विचार की हर संभावना से ऊपर उठ जाती है। अन्तर्दृष्टि के अंतर्गत विषयिता की स्पष्ट अनुभूति होती है। यह समझ बन जाती है कि विषयिता को व्यक्त नहीं किया जा सकता। अंतिम स्तर में मैं की चेतना का भी निषेध हो जाता है। यह आत्म अनुभूति से परे की अवस्था है, यह पूर्णतया अनिर्दिष्ट परमसत् का क्षेत्र है। पूर्ण स्वतंत्रता की स्थिति है, उन्मुक्तता की स्थिति है। यही विषयीरूप स्वतंत्रता है।

9.4 शब्दावली– विषय, विषयी, विषयिता, आत्मपरकता, विषयीरूप स्वतंत्रता, उन्मुक्तता

9.5 प्रश्नावली–

1. के0 सी0 भट्टाचार्य के अनुसार आत्मा के स्वंतत्रता की क्रमिक अनुभूति पर प्रकाश डालिए।
2. के0 सी0 भट्टाचार्य के दर्शन में विषयी रूप स्वतंत्रता की अवधारणा का विवेचन कीजिए।
3. के0 सी0 भट्टाचार्य के दर्शन में आत्मपरकता की अनुभूति के विभिन्न स्तरों की व्याख्या कीजिए।

9.6 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ–

1. टाक, ओमप्रकाश, *आधुनिक भारतीय चिंतक,* राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2008

2. लाल, बसंत कुमार, *समकालीन भारतीय दर्शन*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2006

3. सक्सेना, लक्ष्मी (सं0), *समकालीन भारतीय दर्शन*, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2005

4. भट्टाचार्य, के0सी0, *द सब्जेक्ट ऐज फ्रीडम*, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ फिलॉसफी, अमलनेर, 1930

.....000.....

खण्ड–5 मानवेन्द्र नाथ राय

खण्ड –परिचय

एम. एन. राय के 'दर्शन के कार्य' एवं 'नव मानवतावाद' सिद्धान्त की प्रासंगिकता

मानवेन्द्रनाथ रॉय ने समाज, राजनीति और मानवीय स्वतंत्रता के मुद्दों पर अपने विचार बहुत ही बेबाकी से रखे। उनके द्वारा प्रस्तुत की गई 'नवमानववाद' की सोच आज भी मानविकी और सामाजिक विचार में महत्वपूर्ण स्थान रखती है, जो समाजवाद, मानववाद और व्यक्तिवाद के विभिन्न पहलुओं को समाहित करती है।

इकाई–10 दर्शन का कार्यः एम.एन. राय समकालीन भारतीय दर्शन में एक उत्कृष्ट दार्शनिक एवं रहस्यवादी पुरूष के रूपमें ख्याति प्राप्तहै। उनका दर्शन समाजवाद, मानवतावाद और राष्ट्रवाद के मध्य में स्थित है।उन्होंने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक समरसता के माध्यम से समाज में समानता, बन्धुत्व और न्यायको स्थापित करने की कोशिश की। उनकी दर्शनशास्त्रीय योजना नवमानवतावाद, उत्थानवाद और स्वतंत्रतावाद के विचारों का संयोजन करती है, जिससे उनका दर्शन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। कोई भी दर्शन अपने देश, काल, परिस्थिति और सामाजिक संरचना की देन होती है। जब समाज गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हो, नागरिकों को जीवन के मूलभूत अधिकार तो दूर की बात मूलभूत जरूरतों को भी पूरा करने की न तो सहुलियत हो न ही इजाजत, चारों ओर रूढ़िवादियों और अन्धविश्वासों का बोल–बाला हो उस समय में वैज्ञानिकता और मानव मूल्यों की बात करना अपने में एक दुरूह कार्यहै। राय का दर्शन बौद्धिकता एवं प्रयोग को प्रमुखता प्रदान करता है। उनका दर्शन परम्परागत अन्धविश्वाओं से ऊपर उठकर शुद्ध बौद्धिक एवं वैज्ञानिकता को प्रश्रय प्रदान करता है। उनका दर्शन मनुष्य को कोरा भाग्यवादी और अकर्मठ होने से रोकता है। मानव स्वंय का भाग्य विधाता और निर्माण कर्ता है। आज का विश्व, मानव के कार्यों का लेखा–जोखा है। इसलिए मानवको अपने पौरूष में विश्वास करते हुए कर्म पथ पर सतत् अग्रसर रहना चाहिए। श्रीमद्भगवदगीता में इसे 'अनासक्ति कर्मयोग' तो महान समीक्षावादी दार्शनिक इमैनुअल काण्ट के शब्दोंमें 'कर्तव्य के लिए कर्तव्य' कहेंगे।

इकाई–11 नवमानवतावादः यद्यपि एम.एन. राय ने 'नवमानवतावाद' के सिद्धांत को विकसित नहीं किया, लेकिन उन्होंने इस सिद्धान्त को उसके सही मुकाम पर पहुँचाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। नवमानवतावाद उनका स्वंय का मौलिक सिद्धांत है जो मानव समाज

के निर्माण और प्रगति का समर्थन करता है अपितु उसके केन्द्र में मानव ही रहता है। इस सिद्धांत के अनुसार, समाज में समानता, समरसता और न्याय की प्राप्ति होनी चाहिए। राय ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक समरसता को ध्यान में रखते हुए, नवमानवतावाद के सिद्धांत कोस्थापित किया, जो व्यापक सामाजिक परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण है। इस प्रकार, एम.एन. राय का 'नवमानवतावाद' समाजवादी और मानववादी विचारधारा के संगठन के लिए एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और राजनीतिक विचार है। राय कहते हैं कि पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों ही अपूर्ण एवं अपर्याप्त सिद्धान्त हैं। उन्होंने पहले ही हिटलर के हार की और रूस एवं अमेरिका के दो ध्रुवों के रूप में उभरने की भविष्यवाणी कर दी थी। उनका मानना था कि विश्व में सुख, शान्ति, समृद्धि और विकास के लिए इन दो महाशक्तियों के संघर्ष को रोकना परमावश्यक है। इसका उत्तर न तो पूँजीवाद के पास, न ही साम्यवाद के पास है।इसके लिए इन दोनों विचार धाराओं का अतिक्रमण करके एक ऐसी विचारधारा, राजनैतिक संरचना तथा सामाजिक परिस्थिति के निर्माण की आवश्यकता थी जिसमें सबकी स्वतंत्रता और समानता सुरक्षित रह सके, जिसमें सबके विकास का उन्मुक्त अवसर हो। राय का नवमानववाद इसी का परिणाम है।

.....000.....

इकाई–10

दर्शन का कार्य

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 दर्शन का कार्य

12.3 सारांश

12.4 शब्दावली

12.5 प्रश्नावली

12.6 सन्दर्भग्रन्थ

.....000.....

12.0 उद्देश्यः

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको मानवेन्द्रनाथ राय के 'दर्शन का कार्य' के सन्दर्भ में उनके विचारों से अवगतकरानाहै। एम.एन. राय के दर्शन का विकासकैसेऔर किनपरिस्थितयोंमेंहुआ, वेकौन से कारक एवंतथ्य हैंजो उनके दर्शनमेंमहत्वपूर्णभूमिका निभातेहैं। इनसभीबातोंपरगहनता से विचार किया गयाहै। इस इकाई के पूर्णहोने पर आप निम्नलिखिततथ्यों से परिचितहोपायेंगे–

- एम. एन. राय के जीवन का सारगर्भित परिचितप्राप्तकरपायेंगे।
- एम.एन. राय के अनुसारदर्शन के कार्य को जान एवं समझपायेंगे।
- डनकादर्शन किस प्रकार मानव जीवन को नई दिशा प्रदानकरताहै, यह जानपायेंगे।
- समकालीन समय में एम.एन. राय के दर्शन की प्रासंगिकता को समझपायेंगे।

12.1 प्रस्तावना:

19 वींसदी के महान चिन्तकों, स्वतंत्रतासेनानी, विश्वप्रसिद्ध राजनीतिक सिद्धान्तकार, समाजसेवी एवंउत्कृष्ट कोटि के दार्शनिक मानवेन्द्र नाथ राय का जन्म 6 फरवरी 1886 को पश्चिम बंगाल के चौबीस परगना जिले में हुआ। इनके बचपन का नाम नरेन्द्र नाथ भट्टाचार्य था। इनका जन्म ब्रिटिश शासित भारत में हुआ था, इस समय सामाजिक और राजनीतिक ताना–बाना ऐसा था कि वे देश औरदुनिया की राजनीति एवं दर्शन से भलि–भाँति परिचित होगये। गहन आध्यात्मिक चिन्तन औरगूढ़ राजनीति के ममर्ज्ञ बनने में इन्हें देर न लगी। इनके जीवन पर स्वामी विवेकानन्द, स्वामीरामतीर्थ, स्वामी दयानन्द सरस्वती, विनायक दामोदर सावरकर और विपिन चन्द्र पाल का अत्यधिक प्रभावरहा।

यदि हम कहेंकि मानवेन्द्र नाथ राय ने न सिर्फ भारत अपितु समूचे विश्व में प्रसिद्धि प्राप्त की तो इसमें कोई अतिश्योक्ति न होगी। राय की लम्बी राजनैतिक वैचारिक यात्रा का परिणाम है, कि वे किसी विचारधारा से बँधे नहीं रहे। उन्होंने विचारों की भौतिक वादीआधार भूमि एवं मानव के अस्तित्व के नैतिक प्रयोजन के मध्य समन्वय करना आवश्यक समझा।वे जीवन की सस्याओं, चिन्तन और मननमेंव्यवहारवादी समाधान के समर्थकथे।अतः राय के दर्शनमेंभौतिकता, व्यक्ति कीस्वतन्त्रता, लोकतन्त्र, अन्तर्राष्ट्रीयता एवं उग्रमानवतावाद का विशेषमहत्त्वहै। इन्होंनेमानवतावाद की संकल्पना एवं मानवतावाद सम्बन्धितविचार का अपनीप्रमुख पुस्तकों 'द प्रॉब्लमऑफफ्रीडम' 'साइण्टिफिक पॉलिटिक्स', 'रीजन' एवं 'रोमेण्टीसिज्म एण्ड रिवोल्यूशन', मेंविशेष रूप से वर्णन कियाहै।

लेनिनऔर अमेरिकी मार्क्सवादी विचाराधारा के प्रभावमेंइनकी राजनीतिक, दार्शनिक एवंराष्ट्रवादी विचार धारा को और दृढ़ता प्रदानकी। मैक्सिको की क्रान्तिमेंइन्होंने ऐतिहासिक योगदान दिया, जिससे इनकी ख्याति अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हो गई।आपकेकार्यों से प्रभावित होकर थर्ड इंटर नेशनल में आपको आमंत्रित किया गया था और उन्हेंउसके अध्यक्ष मंडलमें स्थान दियागया। 1921 में वे मास्को के प्राच्य विश्वविद्यालय के अध्यक्ष नियुक्तकिए गए। 1921 से 1928 के बीचउन्होंनेकईपत्रों का संपादन किया, जिनमें 'वानगार्ड' और 'मासेज' मुख्य थे।सन् 1927 ई. मेंचीनीक्रांति के समय आपको वहाँ भेजा गया किंतु आपके स्वतंत्र विचारों से वहाँ के नेता सहमत न हो सके और मतभेद उत्पन्न हो गया। रूसी नेता इस पर आप से क्रुद्ध हो गए औरस्टालिन के राजनीतिक कोप का आप को शिकार बनना पड़ा।विदेशों में आप की हत्या का कुचक्रचला। जर्मनी में आप को विष देने की चेष्टा की गई पर सौभाग्य से आप बच गए।

इधर देश में आपकी क्रांतिकारी गतिविधि के कारण आपकी अनुपस्थितिमेंकानपुर षड्यंत्र का मुकदमा चलाया गया। ब्रिटिश सरकार के गुप्तचर आप पर कड़ीनजर रखेहुए थे, फिरभी 1930 मेंआपगुप्त रूप से भारतलौटनेमेंसफलहोगए। मुंबई आकर आप डाक्टरमहमूद के नाम से

राजनीतिकगतिविधि मेंभाग लेनेलगे। 1931 में आपगिरफ्तारकरलिए गए। छह वर्षों तक कारावास जीवन बिताने पर 20 नवम्बर 1936 को आप जेल से मुक्त किए गए। कांग्रेस की नीतियों से आपका मतभेद हो गया था। ये गांधी के अनुनय और विनय के सिद्धान्त से असहमत थे।क्योंकि आपके सोचने और समझने की चिन्तन प्रक्रिया भिन्न थी और आप राष्ट्र के लिए कुछ कर गुजरने की चाह थी अतः आप नेरेडिकल डिमोक्रेटिक पार्टी की स्थापना की ताकि अपनी शैली मेंराष्ट्र को नये शिखर पर ले जा सके। इनका जीवन सतत् संघर्ष और प्रयास का एक जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। सक्रिय राजनीति से अवकाश ग्रहण कर आप जीवन के अंतिम दिनों में देहरादून में रहने लगे और यहीं 25 जनवरी 1954 को आपका निधनहुआ।

12.2 दर्शन का कार्यःदर्शनमानवजातिकोप्राप्त एक अमूल्य निधि है। यह न तोकिसी एक व्यक्ति, जाति या समुदाय, न हीकिसीदैवीय सत्ता की देनहैअपितु यह समस्तमानवजाति की उच्चतमबौद्धिक प्रक्रिया की सृष्टिहैजोमानव के सुख–शान्तिऔरकल्याणकोप्रथामिकताप्रदानकरतीहै।

एम.एन. राय पूर्णतः प्रखरवक्ता, राजनीति के मर्मज्ञऔर स्वतंत्र चिन्तन के उपासकरहेहैं।उनकीदार्शनिक शैलीमेंभौतिकवादतथानिरीश्वरवाद के दर्शनहोतेहैं।उनका मत थाकिसम्पूर्णजगत की व्याख्या भौतिकवाद के आधारपर की जासकतीहै।इसकेनिमित्तकिसीअतिन्द्रिय सत्ता या ईश्वरजैसीकोई शक्ति के अस्तित्वकोस्वीकारकरने की कोईआवश्यकतानहींहै।हमबौद्धिक प्राणी हैं, अन्य जीवों की भाँति न तोहमसीमितसाधन, न हीसीमित क्षमतावालेहैं। यदि ऐसाहोतातबहमेंअतिन्द्रिय सत्ताओं या ईश्वरजैसी शक्ति के आश्रितरहनापड़ताजोकिनहींहैऔर यदिहमअबभी उस सत्ता की कल्पनाकरतेहैं एवंउसकेसहारेअपने जीवन औरदर्शनकोआगे की ओरलेजानाचाहतेहैंतो यह स्वंय अपनेकोसीमितकरनाऔरबन्धनोंमें बाँधनाहोगा।बेहदहीआसनतरीके से प्राकृतिक घटनाओं के समुचितप्रेक्षणतथासूक्ष्म विश्लेषण द्वाराहीसम्पूर्णवास्तविकतथ्योंऔरकारणोंको समझा जासकताहै।ग्रीकदार्शनिकथेलीस की भाँति एम.एन. राय भीकहतेहैंकिविश्व का मूलतत्त्वभौतिकद्रव्य अथवापुद्गलहैतथासभीवस्तुएँ इसीपुद्गल के अन्तर्गत रूपान्तरितहैं, जोनिश्चितप्राकृतिकनियमों के द्वारानियन्त्रित होतीहैं।जगत के मूलआधार इस पुद्गल के अतिरिक्तअन्य किसीवस्तु की अन्तिमसत्तानहींहैं।राय,चार्वाकों की तरहहीमानवीय प्रत्यक्ष कोसम्पूर्णज्ञान का मूलआधारस्वीकार्यकरतेहैं। इस सम्बन्ध मेंवेकहतेहैंकि ''मनुष्य द्वाराजिसवस्तु का प्रत्यक्ष सम्भवहै, वास्तवमें, उसी का अस्तित्वहैऔरमानव के लिए जिसवस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञानसम्भवनहींहै, उसकाअस्तित्वभीनहींहै।"राय के अनुसार, सम्पूर्णब्रह्माण्डभौतिकपरमाणुओं के संघात का परिणामहै, जिसकाकोईसृजनकर्त्ता या रचनाकारनहींहै।

वैज्ञानिकविचारधाराविश्व के सृजनकर्त्ता के रूपमेंसर्वशक्तिमानईश्वर की प्राकल्पना का समर्थननहींकरती।इसीप्रकार शरीर से पृथक् तथास्वतन्त्र आत्मा की प्राकल्पनाभीनिराधारहै, क्योंकि प्राणी की मृत्यु के पश्चात् उसकाकुछभी शेषनहींरहता, जिसेआत्माकहाजाए, वह मात्र प्राणी की चेतनाहै, जोभौतिकपरमाणुओं के संघात से हीउत्पन्नहोतीहै। इस प्रकारराय ईश्वर की सत्ता के साथ–साथआत्मा की सत्तातथाअमरता का भी खण्डनकरतेहैं।

वेचावार्कों की भाँतिपुनर्जन्म के सिद्धान्तकोभीअस्वीकारकियाहै।वेपुनर्जन्म के सिद्धान्तकोप्रशासकवर्ग के पुरोहितों की कल्पनामानतेहैं, जोसमाजमेंउनकीउच्चस्थितिकोबनाए रखने के लिए ही की गईहै।उनकाविचारहैकिपुनर्जन्म का सिद्धान्तसमाजमेंनियतिवाद एवंभाग्यवादकोप्रश्रय प्रदानकरताहै, जोमनुष्य कोजड़, निष्क्रिय तथाकर्तव्यहीनबनादेताहै।भौतिकवाद की सुदृढ़ परम्परा का उल्लेख करतेहुए राय कहतेहैंकिभौतिकवादीविचारधाराउतनीहीप्राचीनहै, जितनास्वयंमानवीय चिन्तन।हमारेवेदों एवंउपनिषदोंमेंभीभौतिकवाद के मूलतत्त्वविद्यमानहैं, अपने इस मत की पुष्टि के लिए राय 'उपनिषद् सूत्र–2' से निम्नलिखितवाक्य को उद्धृत करतेहैं ''कोईअवतारनहींहोता, न ईश्वरहै, न स्वर्गऔर न नरक, समस्तपारम्परिक धर्मशास्त्र का साहित्य दम्भीमूर्खों की कृतिहै।"

राय कहतेहैंकिवर्तमान युगमेंमनुष्य की महानवैज्ञानिकप्रगतिभीइसीविचारधारा की पुष्टिकरतीहै।उन्होंनेभौतिकवाद के विरुद्ध आध्यात्मिकदार्शनिकों के आरोपों का दृढ़तापूर्वक खण्डनकियाहै।उनका मत हैकिभौतिकवादीदर्शन 'खाओ, पियोऔरमौजकरो' का दर्शननहींहैजैसाकिइसकेविरोधीइसकाउपहासकरतेहुए प्रायः कहाकरतेहैं।यद्यपि यह सत्य हैकिभौतिकवाद,पारलौकिक जीवन के काल्पनिकसुख के लिए वर्तमान जीवन के स्पष्टऔरवास्तविकसुख के परित्याग का समर्थननहींकरता, किन्तुउसका यह अर्थनहींहैकिवहमनुष्य कोआत्मकेन्द्रिततथास्वार्थीहोजाने के लिए प्रेरितकरताहै।वस्तुतः भौतिकवादीदर्शनमनुष्य के सद्गुणमेंकोई बाधा नहींडालता।अतः राय अध्यात्मवादियों के आरोपोंकोनिराधारबतातेहुए इसका खण्डनकरतेहैं।

सामान्यतः यह मानाजाताहैकि अध्यात्मवादीदर्शन,आदर्शों का दर्शनहै।किन्तु अध्यात्मवादऔरआदर्श के अर्थभिन्न–भिन्नहैं। अध्यात्मवाद का व्यावहारिक अध्यात्मवाद से कोईसंबंध नहींहै।दार्शनिकभौतिकवादसबसेबड़ाव्यावहारिकआदर्शवादहै।' ऐसेसंसार का निर्माणकरनाजिसमेंमनुष्य सुख, शान्ति, स्वतंत्रताऔरसमृद्धि के साथजीवन व्यतीतकरसके, जिसमेंमनुष्य के समक्ष विकासऔरप्रगति की अनंतसंभावनाएँ हो,इससे बढ़करऊँचाआदर्शऔरक्याहोसकताहै? मनुष्य को उस लक्ष्य तकपहुँचने के लिए भौतिकवादीबड़ा से बड़ाबलिदानकरनेकोतैयाररहताहै।एम.एन. राय का प्रश्नबड़ाहीमार्मिकतथाव्यंजनात्मकहैः कौनअधिकआध्यात्मिकअथवाआदर्शवादीहै? घातकरोगों का निदानढूँढने के लिए अपने जीवन को खतरेमेंडालनेवालानिरीश्वरवादीवैज्ञानिकअथवाअपनीमूल्यवानआत्मा की रक्षा

मेंअपनेआपहीमेंसंकुचितपवित्र संन्यासीतथा धार्मिकअनुभूतिमेंमोक्षकामीआत्म–तुष्टव्यक्ति? कौन अध्यात्मवाद के प्रतिअधिकईमानदारहै?मानव–स्वातन्त्रता के लिए पीड़ा, अभियोग, भूख औरमृत्यु का साहसपूर्णसामनाकरनेवालाक्रांतिकारीनास्तिकअथवासुखासीनबुर्जुआऔर उनके गुर्गे, जोउच्चआदशों का कपटपूर्णनारालगातेहैंजिनसेदासता, दरिद्रता, अज्ञान, अनैतिकतातथापतन का सामाजिकतंत्र औरमजबूतहोताहै ?

भौतिकवादीदार्शनिकव्यावहारिक आदर्शवाद का विरोधीनहींहै।वस्तुतः हीउसकामनसाऔरकर्मणापालनकरताहै।आदर्शहीभौतिकवादी के जीवन की प्रेरक शक्तिहै, व्यवहारिकआदर्शवादउसकेलिए स्वाभाविकहै । वह, आदर्शों (आइडिल्स) के लिए हीजीताहै। उन आदर्शोंकोवास्तविकबनाने का प्रयासउसक लिए एक सुखदप्रक्रियाहै।उसकाआदर्शवादविवशता का अध्यात्मवादनहींहै। अध्यात्मवादियों की स्थितिठीकइसकेविपरीतहै।वेस्वभावतः आध्यात्मिकनहींहैं, कोईबाह्य शक्ति, जैसेईश्वर, उन्हें ऐसाहोने के लिए विवशकरतीहै।मनुष्य के आध्यात्मिकस्वरूप के ठेकेदारमनुष्य की आध्यात्मिकऔरनैतिकमहानतामेंविश्वासनहींकरते।मनुष्य में स्वतः नैतिकबनने की क्षमताहोतीहैउसकेलिएईश्वर के निर्देशनऔरप्रेरणा की जरूरत नहींहै।राय के अनुसारराधाकृष्णन् के निम्नलिखितवाक्य इसीबात की पुष्टिकरतेहैं।"हमारीनैतिकअनुभूतिसर्वोच्चअनुभूतिनहींहै। धार्मिकअनुभूति धार्मिकआश्वासन के बिनानैतिक जीवन का कोईअर्थउससेपरेहैनहींहैऔरनैतिकसंघर्षप्रेरणाहीनहै।''

भौतिकवादक्रांति का दर्शनहै।क्रांतिमानव–विकास की प्रक्रियामेंअंतर्निहितहै।अतएवभौतिकवादीदर्शनसभी युगोंमें एक अनिवार्यदर्शनरहाहै। इस दर्शन के अनुसारज्ञान की उत्पत्ति ध्यानअथवाचिंतन' से नहींअपितुक्रिया से होतीहै। ''दार्शनिकों ने जगत् की विभिन्नविधियों से व्याख्या की है, किन्तुवास्तविकसमस्याउसेबदलनाहै।'' जगत–परिवर्तन की निरंतरप्रक्रियामेंहीमानव–ज्ञान की अनंतवृद्धि होतीहैऔरप्रत्येककाल का ज्ञान इस नातेमूल्यवानहोताहैकिउससेमनुष्य कोजगत–परिवर्तन की प्रक्रियामेंसहायतामिलतीहै।भौतिकवादवस्तुओं का चिंतन न करकेउनकी खोजकरताहै।मानवीय ज्ञानकोसीमितमानना शर्मनाकअज्ञान का सिद्धांतहै।विज्ञानतथामनुष्य की सच्चीआध्यात्मिक स्वतंत्रता के शत्रुओं ने ईश्वर, आस्था, तत्त्वमीमांसा, धर्मआदि का सहारालेकरमानवीय ज्ञान की सीमितताको एक सम्मानितसिद्धांत का रूपदेनाचाहा।भौतिकवादीदर्शनमानवीय अनुभव के समीक्षात्मकपरीक्षणपरआधारितहै। यह शाश्वत् अज्ञान के सिद्धांत का निराकरणकरताहै,अतीन्द्रिय कोटियोंको मात्र कपोलकल्पनामानताहैतथामानव–बुद्धि की कल्पितसीमाओंकोतोड़करउसकीआत्माको स्वतंत्र करताहै। निरपेक्ष, अपरिवर्तनीय, प्रागनुभविकआदि की तत्त्वमीमांसीय धारणाओं से स्वतंत्र होकरमनुष्य परंपरा की जंजीरोंकोतोड़नेमेंसमर्थहोताहै।कुछभीअनुल्लंघ्य अथवा शाश्वत् एवंस्थायीनहींहै।परिवर्तनशीलतावस्तुओं का स्वभावहै।हेराक्लाइट्स के शब्दोंमें

''परिवर्तनहीस्थायित्व का अर्थहै।'' भौतिकवादीदर्शनमनुष्य कोसंसारमेंपरिवर्तनलाने के लिए प्रेरितकरताहैऔरउसीप्रक्रियामेंस्वयंमनुष्य मेंभीपरिवर्तनआतेहैं।

भौतिकवाद एक दर्शनतंत्र है। यह हठमतनहींहै। यह प्रकृति,इतिहासतथासमाज, संक्षेपमें, जीवन के सभीपक्षों के अध्ययन की पद्धतिहै।ज्ञान का अर्जन एक निरंतरप्रक्रियाहै, संपूर्णऔरअंतिमज्ञान का कोईदर्शनतंत्र नहींहोता।दर्शनकिसीव्यक्तिअथवासमुदाय की देननहींहै।वहसमस्तमानवजाति की उच्चतमआध्यात्मिकसृष्टिहै।

12.3 सारांशः अन्ततः हम कह सकतेहैंकि एम.एन. राय के अनुसारदर्शन का कार्यमनुष्य कोउसकीवास्तविक शक्तिऔरसामर्थ से परिचितकरनाहै।मानव स्वंय मेंसर्वशक्तिमान एवंसर्वज्ञहै बस आवश्यकताहैतो स्वंय कोपहचाननेकी। अद्वैतवेदान्तमें शंकराचार्य का 'अहंब्रह्मस्मि' कहें या गौतमबुद्ध का 'आत्मदीपोभवः', ये दोनोंहीवाक्य मानवकोउसकीपूर्णताऔरसामर्थ का बोध करातेहैं।मानवईश्वर, आत्माऔरअतिन्द्रिय सत्ताओं के फेरमेंआकर स्वंय को समझनहींपाताहै, वहसमुद्र के समानगहरा, पर्वतों से ज्यादा दृढ़ औरआकाश से भीज्यादाऊँचाहै।जहाँ उसेबौद्धिकता, कर्मठताऔरज्ञान का उपासकहोनाचाहिए, वहींवहबाह्यआडंबरों, रूढ़िवादियोंऔरपरम्पराओं का दासहो स्वंय का नाशकरताहै।राय स्पष्ट रूपमेंकहतेहैंकिमानव एक विवेकशील प्राणी है, जोअपनेभाग्य का स्वंय निर्माताहै।

13.4 शब्दावलीः राजनीतिकसिद्धान्तकार, समाजसेवी, अध्ययात्मवाद, भौतिकतवाद, स्वतंत्रता, अहंब्रह्मस्मि,आत्मदीपोभवः,स्वाधीनता, अतिन्द्रिय सत्ता, ईश्वर, साक्षात्कार, विकेन्द्रीकरण, वैचारिकता, जन्मजातप्रवृत्तियाँ,कन्फ्यूशियस, बाधिसत्व, राजनीतिकचिन्तक, विचारधारा, प्रासंगिकता,व्यवहारिकआदर्शवाद,अन्धविश्वास,रूढ़िवाद, आडंबर,औरपरम्राओं।

13.5प्रश्नावलीः

- एम. एन. राय का परिचय प्रदानकरें?
- एम.एन. राय के अनुसारदर्शन के क्याकार्यहैं?
- एम.एन. राय का दर्शनआज के दौरमेंकितनाप्रासंगिकहै? व्याख्या कीजिए।

13.6सन्दर्भग्रन्थः

1. दीक्षित, चन्द्रोदय, मानववादीविचारः एम.एन. राय, लोकभारतीप्रकाशन, नईदिल्ली, 2007.
2. पाण्डेय, ऋषिकान्त, ''दार्शनिकविमर्श'', श्रीभुवनेश्वरीविद्याप्रतिष्ठान, इलाहाबाद, सितम्बर, 2007
3. सक्सेना, लक्ष्मी, ''समकालीनभारतीय दर्शन'', उत्तरप्रदेशहिन्दीसंस्थान, लखनऊ, 2016

4. शर्मा, बी.एम., शर्मा, राम कृष्ण दत्त एवं शर्मा, सविता, भारतीय राजनीतिकविचारक, रावतप्रकाशन, जयपुर
5. राय, एम.एन., बियोन्डकम्यूनिज्मटूह्यूमेनिज्म
6. https://en.wikipedia.org/wiki/M._N._Roy
7. https://www.jstor.org/stable/41856152

इकाई–11

नव मानववाद

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 नवमानववाद

11.3 मानववाद और मानवतावाद में अन्तर

11.4 सारांश

11.5 शब्दावली

11.6 प्रश्नावली

11.7 सन्दर्भग्रन्थ

.....00.....

11.0 उद्देश्यः

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य आपको मानवेन्द्र नाथ राय के 'नवमानवतावाद' के सन्दर्भ में उनके विचारों से अवगत करानाहै। इस इकाई के पूर्ण होने पर आप निम्नलिखित तथ्यों से परिचित हो पायेंगे–

- एम. एन. राय के नवमानववाद के सिद्धान्त से परिचित हो पायेंगे।
- मानवतावाद के सिद्धान्त से परिचितहोपायेंगे।
- मानवतावाद और नवमानववाद के मध्य विभेदों से अवगतहोंगे।
- समकालीन समय में एम.एन. राय के नवमानववाद की प्रासंगिकता को समझ पायेंगे।

11.1 प्रस्तावनाः

एम.एन. राय समकालीन दार्शनिक परम्परा में एक आदर्श मानववादी चिन्तक के रूपमें ख्याति प्राप्तहै। उनका व्यक्तित्व मानो एक सार्वभौम और समग्र व्यक्ति का प्रकाशन है जिसके संपर्क में आने पर साधारण से साधारण व्यक्ति को भी जीवन की सार्थकता, उसके मूल्य एवं सौंदर्य का बोध होताहै। जीवन से दुःखी और निराश व्यक्ति भी उनके संपर्कमेंआकरसुख एवं शान्ति की अनुभूति प्राप्त करता है। उनके चिन्तन के केन्द्र में मानव एवंमानव वादीविचारधारा प्रथम सोपान पर एवं समाज व सामाजिक मान्यताएं द्वितीय स्थान पर आतीहैं।

मानववादी विचार का केन्द्रव्यक्ति और उसकी स्वतंत्रता है।राय अपने मानववाद में व्यक्तिगत स्वतंत्रता को केन्द्रीय स्थान प्रदान करते हुए लिखते हैं कि "नवमानववाद का आदर्श, वर्ग या समाज (राष्ट्र) नहीं है, बल्कि इसका सम्बन्ध मनुष्य से है।इसमें स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता का तात्पर्यव्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता से है।" इस प्रकार राय के दर्शन में "व्यक्ति और उसकी स्वतंत्रता साध्य है तथा सामाजिक संगठन इस के साधन। जहाँ व्यक्ति के बौद्धिक, मानसिक, नैतिक, राजनीतिक एवं सामाजिक इन सभी पक्षोंमें आमूल चूल परिवर्तन की बात की जातीहै।इसमें न तोराष्ट्रवाद की भावना का समावेश होगा और न ही रंगभेद का, न जाति का, न वर्ग का, समाजका।

यदि दर्शन सिर्फ सिद्धान्तों और कल्पनाओं के स्तर पर होगा तो वह कभी–भी मनुष्य के व्यावहारिक और समाजिक समस्याओं को भली–भांति न समझ पायेगा न ही उसका समाधान कर पायेगा। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसके जीवन से सम्बन्धित सभी पहलूपूर्णतः व्यवाहारिक हैं और यदि हम उसका समधान किसी अदृश्य जगत या अदृश्य शक्ति से करेंगे, तब हम कभी–भी सफल नहीं हो सकेंगे। जीवन की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान कोई सिद्धान्त या कल्पना नहीं कर सकती है, इसके लिए हमें इसके व्यावहारिक समाधान की ओर ही देखना होगा और यह व्यावहारिक समाधान नव–मानववाद ही प्रदान करता है।

11.2 नवमानवतावाद :

राय के **नवमानववाद** (New Humanism) को 'वैज्ञानिक मानववाद (Scientific Humanism)', 'उग्रमानववाद' या आमूल परिवर्तनवादी मानववाद (Radical Humanism), एवं 'पूर्णमानवतावाद' (Absolute Humanism) की संज्ञा प्रदान की गई है। राय के नवमानववाद का उद्देश्य मूल्यों की प्रधानता एवं शाश्वत स्वतन्त्रता के लिए आग्रह करना है। इन्होंने कहा है कि लोकतन्त्र तभी प्रभावकारी होगा, जब व्यक्ति आध्यात्मिक रूप से स्वतन्त्र सार्वजनिक मामलों के आचरण को मानेंगे और इनकी दृष्टि किसी भी स्तर पर न्यायपरक, मानव परक और व्यवहारिक होगी।

राय के अनुसार, अज्ञान की स्थितिमें मनुष्य अन्धविश्वासों में फँस जाता है तथा अलौकिक शक्तियों में विश्वास करते हुए स्वयं को विवश महसूस करता है, जिससे उसकी रचनात्मक और सृजनात्मक शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं, जबकि ज्ञान और विज्ञान मनुष्य को इन निराधार विश्वासों से मुक्ति प्रदान करतेहैं। सामान्य तौर पर जो मनुष्य ज्ञान और विज्ञान की समझ रखता है वह न सिर्फ अन्धविश्वासों, दुराग्रहों और कुण्ठाओं से मुक्त रहता हैअपितुवह जीवन को सही मायनेमेंजीताहै क्योंकि अन्धविश्वाओं और रूढ़ि वादिता में फंसकर मनुष्य न सिर्फअपना अपितु सम्पूर्ण मानवजाति को खतरे में डालता है।

राय ने विज्ञान के ज्ञान के विषय में कहा है कि आधुनिक समय में विज्ञान ने प्राचीन रूढ़िबद्धता, निराधार विचारों एवं अन्धविश्वासों को चुनौती दी है। जीवन को देखने और समझने का नया नजरिया प्रदान किया है, यह मानवको एक ऐसे समाधान प्रदान करता है जो सामान्य से सामान्य मानव को बहुत ही सहज और सरल तरीके से समझ में आ जाता है। राय का यह मानना है कि विज्ञान के ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। अतः मनुष्य के भविष्य की कोई निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती।

अग्रतर बढ़ते हुए मानवेन्द्रनाथराय ने मूल्यों की प्रधानता एवं शाश्वत स्वतन्त्रता के लिए आग्रह किया है। मानव ज्ञान की ओर तभी अग्रसर होगा जब वह स्वतंत्र चिन्तन–मनन करेगा। नवमानववाद में ईश्वर अथवा किसी अन्य दैवीय शक्ति को कोई स्थान नहीं दिया है। उन्होंने कहा हैकि मनुष्य के लिए यह समझ लेना आवश्यक है किअपने सुख–दुःख के लिए वह स्वयं उत्तरदायी है। वह स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है, इसमें कोई दैवीय शक्ति आपकी सहायता नहीं करती। यदिकोई ऐसा सोचता है कि ईश्वर उसके कष्टों एवं पीड़ा कोहरलेंगे या वहींउसकेकष्टों एवंपीड़ा के कारक हैं तो यह उसकी सबसे बड़ी भूल है।राय के अनुसार, "मानववादस्वतन्त्रता के प्रयोग की अनन्तसम्भावनाओंमेंआस्था रखतेहुए उसेकिसी ऐसीविचारधारा के साथनहीं बाँधनाचाहता, जोकिसीपूर्व–निर्धारित लक्ष्य की सिद्धि कोहीउसके जीवन का ध्येय मानतीहै।'' राय ने मानवविकास के सिद्धान्तों में विश्वास करते हुए यह तर्क दिया हैकिस्वय मनुष्य का अस्तित्व भौतिकसृष्टि के विकास का परिणामहै।भौतिकसृष्टिस्वयंमेंनिश्चित नियमों से बँधी हुई है, इसलिए इसमें सुसंगति पाई जातीहै। इस सृष्टिका सृजनकर्ता एवंविनाशकर्ता स्वंय मानव ही है न कि कोई अतिन्द्रिय या दैवीसत्ता।

मानव के अस्तित्व में यह सुसंगति तर्कशक्ति के रूप में सार्थक होती है।मनुष्य का विवेक भौतिकजगत मेंव्याप्त सुसंगति की ही प्रतिध्वनिहै। यह मनुष्य के जीव वैज्ञानिक विकास की परिणिति है। अपने विवेक से प्रेरित होकर मनुष्य जिन सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण करता है, उनमें भी वे ऐसी सुसंगति लाने का प्रयास करते हैं, जो नैतिकता के रूप में व्यक्त होती हैं। राय कहते हैं कि आज देश में जो संघर्ष, निर्धनता, बेरोजगारी एवं अविश्वास व्याप्त है, उनका प्रमुख कारण संकुचित राष्ट्रीयता की भावना है।

विश्व में एकता और शान्ति तभी स्थापित हो सकती है, जब हम केवल अपने देश के हित की दृष्टि से हीनहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवजाति के हित की दृष्टि से सामाजिक, आर्थिक एवंराजनैतिकचिन्ताओंपरविचारकरेंगे।राय मानतेहैंकि वर्तमान समय में संकुचित विचारधारा से कोई लाभ नहींहै, क्योंकि उस के अनुसार किया गया आचरण मानव जाति के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। यही कारण है कि उन्होंने मानववादी विचारधारा को विशेष महत्त्व दिया है तथा उग्रमानववाद एवं वैज्ञानिक मानववाद की संज्ञा दी है। उनके अनुसार सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण हेतु मानववादी दर्शन ही सहायक सिद्ध हो सकताहै।

11.3 मानववाद और मानवतावाद मेंभेद:

प्रश्न उठता है कि मानववाद क्याहै? मानवतावाद क्याहै? क्या दोनों एक ही हैं या इनमेंकोईभिन्नताभीहै। मानववाद एक प्रकार का मानव केन्द्रित दर्शनहै, जिसके अनुसार मानवीय हित ही सर्वोपरि है।लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इसके अन्तर्गत एक मात्र मानव का ही अस्तित्व है। निस्संदेह मनुष्य के अतिरिक्तअन्य का भी अस्तित्व है लेकिन मानववाद, मानव को केन्द्रीय स्थान प्रदान करता है क्योंकि मनुष्य ही मूल्यों का स्त्रोत है।

मानववाद मनुष्य के हतों का समाधान धाार्मिक विश्वासों की अपेक्षा, तर्कबुद्धि के आधारपर करना चाहता है। विद्वान फिंगरहीआर्थ अपनी पुस्तक' मानववाद के परिचय' में लिखते हैं कि ''मानववाद वह विचारधारा है जो मानव को केन्द में रखती है। यह मानवहित, मानव–कल्याण, मानव–गरिमा एवं मानवीय मूल्यों को सामने रख कर चलती है। इसमें तर्क बुद्धि को महत्व दिया जाता है। कुछ मानववादी अपने को बुद्धिवादी भी कहते हैं। पुनश्च, वे लिखते हैं कि मानववाद ईश्वर के स्थान पर मानव पर ध्यान केन्द्रित करता है। इसमें मनुष्य की स्वायत्तातापर बल दिया जाता है अर्थात् मनुष्य किसी अतिप्राकृतिक शक्ति पर निर्भर नहीं हैं। वह अपने भाग्य का निर्माता स्वंय है। इस अर्थमें 'मानववाद, धर्मनिरपेक्षता के समतुल्य है। मानववाद (Humanism), मानवतावाद (Humantarianism) से निम्नलिखित रूपों में भिन्न है–

- मानवतावाद ईश्वर को केन्द्र में रखते हुए मानवीय कल्याण एवं उसके उत्थान की बात करता है, जबकि मानववाद मनुष्य को ही सर्वशक्तिमान मानकर उसकी सेवा को परम धर्ममानता है।
- मानवतावाद एक प्रकार का नियतिवादी एवं भाग्यवादी दर्शन है, जबकि मानववाद मानव को ही अपनाभाग्य विधाता मानता है।
- मानवतावाद के अनुसार ईश्वर हीमूल्यों का अन्तिम स्रोत है, जबकि मानववाद के अनुसार मनुष्य ही मूल्यों का स्रोतहै, न कि ईश्वर। मानववाद वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, क्योंकि यह बौद्धिकता पर आधारित है, जबकि मानवतावाद धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टिकोण पर आधारित है, क्योंकि यह मूलतः आस्था पर आधृत है।

- मानवतावाद का केन्द्र सभी प्राणी (All human being) हैं, जबकि मानववाद का केन्द्र केवल मनुष्य है।
- मानवतावादियों का उद्देश्य ईश्वर–साक्षात्कार है, जबकि मानववादी ईश्वर की सत्ता का ही निषेध करते हैं।

मानववादी अवधारणा की शुरुआत ग्रीकदार्शनिक प्रोटागोरस के दर्शन से होती है, जब वह कहता है कि 'मनुष्य ही सभी वस्तुओं का मापदण्ड है' (Man is the measure of all things). यही मानववाद की मूल संकल्पना है। इसी प्रकार मार्क्सभी कहता है कि 'मनुष्य मानवता की जड़ है' (Man is the root of mankind)। भारतीय परम्परा में चार्वाकों एवं बौद्धों ने भी मानववाद का प्रतिपादन कियाहै। महात्माबुद्ध ईश्वर को नहीं मानते, क्योंकि ईश्वर को नित्य एवं पूर्ण होने के साथ–साथ जगत का स्रष्टा भी माना जाता है।

यदि ईश्वर नित्य है तो जगत में भी नित्यता होनी चाहिए, जबकि जगत प्रवाहशील है। अतः इस परिवर्तनशील जगत का कारण ईश्वर नहीं हो सकता। दूसरा, यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान है, तब जगतमें दुःख क्योंहै? क्या ईश्वर दुःखों को दूर नहीं कर सकता? इसी कारण वे ईश्वर का निषेध करतेहुए 'बहुजनहिताय, बहुजन सुखाय'' का उपदेश देते हैं, जो कालांतर में महायान दर्शन में 'बोधिसत्व की अवधारणा के रूप में विकसित हुआ। इसके अतिरिक्त चीन में कन्फ्यूशियस, पाश्चात्य दर्शन में ऑगस्तकाम्टे, जॉनडीवी, एरिकफ्रॉम, हर्बर्टस्पेंसर, जॉनहास्पर्स, बी०रसेल, मार्क्स एवंजे०पी० सार्त्रप्रभृति के दर्शनमें भीमानववादी अवधारणा निहित है।

आधुनिक भारतीय परम्परा में मानववाद के अग्रदूत के रूप में एम० एन० राय को जाना जाता है। जिन्होंने अपनी पुस्तक 'न्यूह्यूमेनिज्म' में नवमानव वाद की स्थापना की है। जिसका स्पष्ट रूप 'रेडिकलडेमोक्रेटिकपार्टी' के २२ प्रस्तावों में नहित है। जिसमें निम्न प्रमुख हैं–

- मनुष्य समाज का आदर्शहै, क्योंकि वह अस्तित्व एवं महत्व की दृष्टि से समाज से पहलेहै। यहीनहींमनुष्य हीसभीचीजों का मापदण्ड है और वही प्रत्येक दृष्टि से मूल्यों का निर्माताहै।
- व्यक्तिवास्तविक इकाई है, समाज नहीं। किसी भी प्रकार का अनुभव व्यक्ति को ही होताहै, समाजको नहीं।
- यद्यपि समाजव्यक्ति की भलाई के लिए है, तथापि व्यक्तियों में आपसी सहयोग से हीव्यक्ति की उन्नति सम्भव हो पाती है।
- 'स्वतंत्रता की खोज' तथा 'सत्य का अन्वेषण', ये मनुष्य की जन्मजात प्रवृतियाँ हैं।
- व्यक्ति की स्वतंत्रता की किसी भी स्थिति में बलि नहीं चढ़ाई जानी चाहिए।
- ईश्वर, आत्मा जैसी अतीन्द्रिय सत्ताओं एवं पुनर्जन्म में विश्वास एक प्रकार की धर्मान्धता है।

- मनुष्य की आर्थिक व्याख्या महत्वपूर्ण होते हुए भी अपूर्ण है, क्योंकि इस के अतिरिक्त कई अन्य महत्वपूर्ण तत्वहैं, जो व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करते हैं।
- आर्थिक समानता के साथ–साथ राजनीतिक समानता भी समाज में होनी चाहिए। एतदर्थ, सत्ता का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। इसके लिए संगठित प्रजातंत्र (Organised Democracy) का विकास व्यक्तिगत स्तर तक होना चाहिए। जिससे सभी प्रकार की तानाशाही का अंत हो सके।
- सभी प्रकार के शोषण एवं दमन का अंत होना चाहिए, तभी व्यक्ति की जन्मजात क्षमताओं का पूर्ण विकास हो सकता है।
- नैतिकता, मानवसमाज का एक आवश्यक पहलू है, जो बौद्धिकता पर आधारित है।
- मनुष्य इतिहास का निर्माता है और उसमें इतनी सामर्थ्य है कि वह आज के विश्व को बदल कर नूतन विश्व की स्थापना कर सकता है।
- सामाजिकशिक्षा हीक्रांति का उचितमार्गहै, न किहिंसा एवं रक्तपात ।
- धर्म–निरपेक्ष व्यक्तियों के संगठित प्रयत्नों से एक ऐसे विश्व का निर्माण किया जा सकता है, जहाँ व्यक्ति अधिकाधिक स्वतंत्रता का अनुभव कर सकेगा।
- साध्य के साथ–साथ साधन शुद्धता का होना आवश्यक है।
- हमारा दृष्टिकोण वैज्ञानिक होना चाहिए, जिससे हम वास्तविकता की तह तक पहुँच सकें।

11.4 सारांशः अतः हम कह सकते हैं कि एम.एन. राय का नवमानववादवहसिद्धान्तहैजोमनुष्य कोअपनेभाग्य का निर्माता बनताहै। इस वाद में न तो राष्ट्रवाद की भावना का समावेश है और न हीरंग भेद का। उन्होंने विचारोंमें मानव की व्यक्तिगत स्वतन्त्रताको सर्वोपरि माना। एम.एन. राय के अनुसार, व्यक्ति की तर्कशक्ति उसके ज्ञान के विस्तार के साथ जुड़ी है।अतः जहाँ अज्ञान की सीमाएं टूटती हैं, वहाँ वह नईजीवन–पद्धति की तलाशकरताहै। यही तलाश उसकी स्वतंत्रता को सार्थक करती है।अतः मनुष्य की स्वतंत्रताज्ञान के विस्तार के साथ–साथ अपनी आकांक्षाओं के विस्तार में निहित है। राय का नव–मानववाद 'मनुष्य' को संपूर्ण सृष्टि की धुरी मानताहै, ठीक उसी प्रकार जैसे सूर्य सभी ग्रहों की धुरीहै।वह शुद्ध 'मनुष्य' को मान्यता देता है–ऐसे मनुष्य को नहीं जो किसी 'वर्ग', 'राष्ट्र','समाज', 'देश', 'धर्म', 'जाति', 'पंथ' या अन्य प्रकार के सीमित समूह के पूर्व–निर्धारित लक्ष्य के साथ बँधा हो। स्वतंत्र मनुष्य अपनी सहज–स्वाभाविक तर्कशक्ति से प्रेरित होकर अपनी सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परस्पर सहयोग के सम्बन्ध में बंध जाते हैं। संक्षेप में, राय ज्ञान के अनंत विस्तार और मानव–विकास की अनंत संभावनाओं के प्रति आशावान हैं। चूंकि इस विकास की कोई सीमा नहीं है, इसलिए हमारे वर्तमान ज्ञान के आधार पर इसका कोई पूर्व–निर्धारित लक्ष्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। स्वतंत्रता की पहली शर्त वर्तमान बंधनों का तोड़ना है। मानवेन्द्रनाथ राय का आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन में विशिष्ट स्थान है।राय का राजनीतिक चिंतन लम्बी वैचारिक यात्रा का परिणाम है। वे किसी

विचारधारा से बंधे हुए नहीं रहे। उन्होंने विचारों की भौतिकवादी आधार भूमि और मानव के अस्तित्व के नैतिक प्रयोजनों के मध्य समन्वय करना आवश्यक समझा।

11.5 शब्दावली: नवमानववाद, मानवतावाद, भौतिकतवाद, स्वतंत्रता, स्वाधीनता, अतिन्द्रिय सत्ता, ईश्वर, साक्षात्कार, विकेन्द्रीकरण, वैचारिकता, जन्मजातप्रवृत्तियाँ, कन्फ्यूशियस, बोधिसत्व, राजनीतिक चिन्तक, विचारधारा, प्रासंगिकता, अन्धविश्वास, रूढ़िवाद, दुराग्रह, अग्रदूत और प्रजातंत्र।

11.6 प्रश्नावली:

- एम. एन. राय के नवमानववाद से आपक्या समझते हैं?
- मानववाद और मानवतावाद की सामान्य विशेषताएं क्या हैं?
- नवमानववाद और मानवतावाद के मध्य क्या विभेद हैं? विस्तार से चर्चा करें।
- समकालीन समय में एम.एन. राय के नवमानववाद सिद्धान्त कैसे और क्यो प्रासंगिक है?

11.7 सन्दर्भग्रन्थ:

8. दीक्षित, चन्द्रोदय, मानववादी विचारः एम.एन. राय, लोक भारती प्रकाशन, नईदिल्ली, 2007.
9. पाण्डेय, ऋषिकान्त, ''दार्शनिकविमर्श'', श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान, इलाहाबाद, सितम्बर, 2007
10. सक्सेना, लक्ष्मी, ''समकालीन भारतीय दर्शन'', उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2016
11. शर्मा, बी.एम., शर्मा, राम कृष्ण दत्त एवं शर्मा, सविता, भारतीय राजनीतिक विचारक, रावत प्रकाशन, जयपुर
12. राय, एम.एन., बियोन्ड कम्यूनिज्म टूह्यूमेनिज्म
13. https://en.wikipedia.org/wiki/M._N._Roy
14. https://www.jstor.org/stable/41856152

.....00.....

खण्ड–6 पं. दीनदयाल उपाध्याय

खण्ड परिचय :

प्रस्तुत खण्ड में बीसवीं सदी के उद्‌भट विद्वान, युगद्रष्टा पं0 दीनदयाल उपाध्याय के तात्विक चिंतन का प्रतिपादन किया गया है। यह खण्ड दो इकाइयों में विभाजित है। पहली इकाई में एकात्म मानववाद के सिद्धांत का निरूपण किया गया है। दूसरी इकाई में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के संप्रत्यय का विश्लेषण किया गया है।

इकाई 12 में पंडित जी के एकात्म मानव दर्शन पर प्रकाश डाला गया है। जिसमें पाश्चात्य जीवन दर्शन को भारतीय एकात्मवादी संस्कृति के साँचे में ढालकर कैसे बेहतर बनाया जा सकता है, उस पर चर्चा हुई है। एकात्म मानववाद एक बहुआयामी चिंतन है, इसलिए इसकी विवेचना में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, राज्य, धर्म, अर्थव्यवस्था आदि उन समस्त प्रत्ययों का विवेचन किया गया है, जिससे मानव प्रभावित होता है, क्योंकि इसका लक्ष्य मानव का समग्र विकास है।

इकाई 14 में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का विश्लेषण किया गया है। इसमें संस्कृति और राष्ट्र को परिभाषित किया गया है, उसे भारतीय संदर्भ में समझने का प्रयास हुआ है। अन्ततः यह निष्कर्षित किया गया कि पंडित जी का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राष्ट्र के सतत विकास को निश्चित करता हुआ जन–जन को भारत बोध से परिचित कराता है और दृढ़ता से यह स्पष्ट करता है कि भारत एक भौगोलिक सीमा में निर्मित राज्य मात्र नहीं है, अपितु एक सांस्कृतिक नींव पर खड़ा हुआ गौरवशाली राष्ट्र है।

.....00.....

इकाई 12 : एकात्म मानववाद

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 एकात्म मानववाद

12.3 सारांश

12.4 शब्दावली

12.5 प्रश्नावली

12.6 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ

.....0000.....

12.0 उद्देश्य–

- पं0 दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानव दर्शन पर विचार करना।
- पाश्चात्य जीवन दर्शन से उत्पन्न नकारात्मक प्रभावों को समझना एवं भारतीय संस्कृति के प्रकाश में सम्यक् उपाय खोजना।

12.1 प्रस्तावना– पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने मनुष्य का समग्रता में चिंतन करते हुए जिस दर्शन का प्रवर्तन किया, उसे एकात्म मानववाद कहते हैं। एकात्म मानववाद सिद्धांत के दो आयाम हैं, पहला, मानववाद जो मुख्यतः पाश्चात्य अवधारणा है, दूसरा, एकात्मकता जो भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है। अर्थात् कहा जा सकता है कि पाश्चात्य मानववाद के भारतीयकरण का परिणाम है–एकात्म मानववाद। पाश्चात्य जीवन दर्शन से उत्पन्न भौतिकवाद, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, फांसीवाद, यंत्रवाद, असंयमित भोगवाद जैसी विकृतियों ने मानव को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया। इन विकृतियों से मानव–समाज को उबारने के लिए पंडित जी ने भारतीय संस्कृति का सहारा

लिया, जिससे मनुष्य का सर्वांगीण अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समेकित उन्नयन संभव हो सके। व्यष्टि, समष्टि एवं परमेष्टि में एकात्मकता स्थापित हो। यही जीवन दर्शन 'एकात्म मानववाद' है।

12.2 एकात्म मानववाद सिद्धांत– एकात्म मानववाद सिद्धांत पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा 22 से 25 अप्रैल, 1965 को बम्बई में भाषण के रूप में प्रस्तुत किया गया। कुल चार व्याख्यान हैं जो एकात्म मानववाद की विशद् विवेचना करते हैं। वक्तव्य का प्रारम्भ करते हुए पंडित जी कहते हैं कि आजादी के बाद का भारत कैसा हो, इस पर ठीक से विचार नहीं किया गया। भारत की दिशा निश्चित करने का प्रयास नहीं हुआ। अब प्रश्न यह है कि भारत किधर जाने वाला है? इसके लिए हमें बड़े–बड़े नारों से अधिक आर्थिक, राजनीतिक कार्यक्रमों को व्यवस्थित करना होगा। हमें आत्माभिमुख होना पड़ेगा, हमें एक होना पड़ेगा, हमें राष्ट्र की सामान्य इच्छा को समझना होगा। स्व पर विचार करना होगा, तभी स्वराज्य का कोई अर्थ है। व्यक्ति या राष्ट्र का प्रकृति के विपरीत चलने पर पराभव हो जाता है। प्रकृति को मजबूत कर संस्कृति बनाने का काम करना चाहिए।

हम पश्चिम पर पूरी तरह निर्भर हो गए हैं। पश्चिमी सभ्यता ने एक तानाशाही का, अमानवीय धार्मिक सत्ता का ऐसा जीवन भोगा जिसकी तीव्र प्रतिक्रिया पुनर्जागरण के रूप में दिखाई दी। इसका परिणाम यह हुआ कि ईश्वरीय सत्ता, सामाजिक व्यवस्था, स्थापित मान्यताओं का विरोध हुआ और मानववाद, व्यक्तिवाद तथा अनुसंधान की प्रतिष्ठा स्थापित हुई। परन्तु इन सब प्रतिक्रियाओं के बाद परिणाम यह हुआ कि आध्यात्मिक तत्वों के विरोध से भौतिकवाद हावी हो गया, व्यक्तिवाद पूंजीवाद में बदल गया, राष्ट्रवाद फांसीवाद एवं नाजीवाद में, अनुसंधान से असंयमित भोगवाद उत्पन्न हो गया।

पश्चिम की इन्हीं विकृतियों के प्रति पं0 दीनदयाल उपाध्याय सचेत हैं और चिंतित भी कि लोग भारत को पश्चिम की अनुकृति बनाने में लगे हुए हैं। उनका मानना है कि हमने अपने संपूर्ण जीवन को तथा समस्याओं को अंगरेजियत के चश्में से देखा है। फलतः हमारी राजनीति, अर्थनीति, समाज व्यवस्था, साहित्य और संस्कृति पर अंगरेजियत की गहरी छाप है। भारतीयता केवल ऊपर–ऊपर दिखती है।

अब प्रश्न यह है कि भारत की दिशा कैसी हो? इसको लेकर दो तरह के विचार है– पहला, भारत के हजारों वर्षों से चली आ रही प्रगति जहां गुलामी से रुक गई थी, वहां से आगे बढ़ना।

लेकिन जरूरी कितना भी हो, यह असंभव सा कार्य है। समय को पीछे नहीं ले जाया जा सकता। हजार वर्षों में हमें जो मिला, जो हम आज कर रहे हैं, या बाहरी लोगों ने जो हमें दिया, हम उसका ऐसे ही प्रतिकार नहीं कर सकते। दूसरा, भारत की पुरानी चीज को अयोग्य मानते हैं, उसकी जगह पाश्चात्य की वकालत करते हैं। ये भी सही नहीं है। पाश्चात्य सभ्यता सार्वभौमिक नहीं है। कार्लमार्क्स आदि के सिद्धांत आज फीके पड़ गए हैं। हर देश की अपनी आर्थिक, ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थिति होती है। उस देश के नेता उसी के अनुरूप देश को आगे बढ़ाते हैं। **यद्देशस्य जो जन्तु, तद्देशस्य तु त्यौषधम्।**

लेकिन अपना देश, पराया देश कहकर ही पीछा नहीं छुड़ाना होगा। आखिरकार मानव ने ज्ञान अर्जित किया है। तो हमें देखना होगा कि किस हद तक वह तत्वयुक्त है, किस हद तक सारहीन। पश्चिम की राजनीति के आदर्श प्रजातंत्र, समाजवाद, राष्ट्रीयता आदि अधूरे हैं और विभिन्न समस्याओं को जन्म देने वाले हैं। उदाहरण के लिए, प्रजातंत्र में व्यक्ति की स्वतंत्रता है, लेकिन पूंजीवाद के साथ मिलकर वह शोषणकारी हो गया। या समाजवाद ने व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं गरिमा नष्ट कर दी। इसके लिए अब आवश्यक है कि हम अपनी संस्कृति पर विचार करें। क्योंकि वही हमारी प्रकृति है। संस्कृति का स्वराज्य से घनिष्ठ संबंध है। स्वराज्य तभी साकार और सार्थक होगा, जब वह अपनी संस्कृति की अभिव्यक्ति का साधन बनेगा। इससे विकास और आनन्द दोनों मिलेंगे। राष्ट्रीय और मानवीय दोनों दृष्टियों से आवश्यक है कि हम अपनी संस्कृति पर विचार करें। यदि उसके सहारे पश्चिम के आदर्शों के बीच कोई तालमेल बिठाया जा सके तो उत्तम होगा।

भारतीय संस्कृति एकात्मवादी (Integrated) है, क्योंकि वह सृष्टि का संकलित विचार करती है। पश्चिम ने हमेशा टुकड़ों में विचार किया है, फिर उसे पैबंद लगाकर जोड़ने का प्रयास किया है। हमारे यहां सदैव विविधता में एकता खोजने का प्रयास हुआ है। यह प्रयास वैज्ञानिक भी है। जैसे–विज्ञानी भी अव्यवस्था में व्यवस्था खोजने का प्रयास करते हैं। रसायन शास्त्रियों ने संपूर्ण भौतिक जगत में कुछ आधारभूत तत्व खोजकर निकाले और बताया कि सभी वस्तुएं उनसे ही बनी हैं। हमने संपूर्ण जीवन में मूलभूत एकता का दर्शन किया। भारत में जो द्वैतवादी रहे, उदाहरण के लिए सांख्य मतानुयायी, वो भी पुरुष और प्रकृति में संघर्ष या विरोध नहीं माने, बल्कि पूरकता ही माने। जीवन की विविधता अन्तर्भूत एकता से ही प्रकट होती है, इसलिए उसमें परस्पर पूरकता होती है, अनुकूलता होती है। जैसे–बीज ही वृक्ष के जड़, तने, पत्तियाँ, फल के अनेक रूपों में प्रकट होता है, फिर भी उनमें बीज के साथ एकत्व है। यही विविधता में एकता अथवा एकता का विविध रूपों में

व्यक्त होना भारतीय संस्कृति का केन्द्रीय विचार है। हमने अपनी संस्कृति का अंग उन्हें बनाया जो जीवन के अनुकूल हैं, हितकारी हैं। विकृतियों को कभी आदर्श नहीं माना।

ध्यातव्य है कि पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने व्यक्ति का एकात्म एवं सकलित विचार किया। सामान्यतः व्यक्ति का विचार उसके शरीर को केन्द्र में रखकर किया जाता है। माना जाता है कि शरीर सुखी तो व्यक्ति सुखी। लेकिन देखा जाता है कि मन में यदि कोई चिंता है या बुद्धि में कोई उलझन चल रही है तो व्यक्ति बहुत परेशान हो जाता है। इसलिए ये सब भी विचारणीय हैं। इस पर पंडित जी कहते हैं कि व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा का समुच्चय है। हम उसका टुकड़ों में विचार नहीं कर सकते। पश्चिम में जो परेशानी आई वह इसीलिए आई कि व्यक्ति पर एकांगी विचार हुआ, उसे केवल राजनीतिक पशु (Political Animal) समझा गया। भारतीय संस्कृति सर्वांगीण विवेचन करती है। यह सत्य है कि भारतीय संस्कृति में आत्म तत्व पर अधिक ध्यान दिया गया है, लेकिन उपनिषदों का ऋषि शरीर को प्रमुखता देते हुए यह भी कहता है कि बलहीन व्यक्ति आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता (नाऽयमात्मा बलहीनेन लभ्यः)। शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही हमारी संस्कृति में चार पुरुषार्थों–धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की संकल्पना है। उनका संकलित विचार हुआ है। यह पूर्ण मानव की, एकात्म मानव की कल्पना है।

इस पूर्ण व्यक्ति का समाज के साथ क्या संबंध होगा, व्यष्टि का समष्टि के साथ क्या संबंध है तथा समाज का संवर्धन कैसे होगा, इस पर विचार करते हुए पंडित जी कहते हैं कि समाज, मानवों का ही समूह है। लेकिन मानवों ने समाज नहीं बनाया है, समाज समझौते से नहीं बना है, बल्कि स्वयंभू है। समाज जैविक है। इसमें भी व्यक्ति की तरह ही मन, शरीर, बुद्धि एवं आत्मा होती है। यह व्यक्तियों का जोड़ नहीं है। व्यक्ति सीधा हो सकता है, समाज गुस्सैल। व्यक्ति अच्छा, समाज बुरा या समाज अच्छा, व्यक्ति बुरा। व्यक्ति और समाज के मध्य संबंध की व्याख्या करते हुए पंडित जी कहते हैं कि समाज और व्यक्ति में संघर्ष नहीं है। यदि संघर्ष है तो प्रकृति नहीं, विकृति है। हमारे यहाँ वर्ग संघर्ष को मानक नहीं माना गया। यहाँ वर्णों की कल्पना विराट् पुरुष के अंगों से कह गई, लेकिन उनमें एकात्मकता है, पूरकता है, आत्मीयता है, संघर्ष नहीं।

इस क्रम में पंडित जी समाज के पर्याय के रूप में राष्ट्र शब्द पर विचार करते हैं कि समुदायों के रहने से राष्ट्र या समाज का निर्माण नहीं होता। क्योंकि बेबीलोन, ग्रीक, यूनान में वंश परम्परा तो है लेकिन राष्ट्र समाप्त हो गया। प्रश्न है कि राष्ट्र किसे कहें? पंडित जी कहते हैं कि मानव समुदाय

जब एक मिशन, एक विचार या आदर्श, भूमि विशेष के प्रति मातृभाव रखता है तो उसे राष्ट्र कहते हैं। राष्ट्र की आत्मा को 'चिति' कहते हैं। जैसे–आत्मा नहीं तो शरीर नहीं, वैसे ही चिति नहीं तो राष्ट्र नहीं। जो चिति के अनुकूल है वही संस्कृति है। महाभारत का युद्ध, विभीषण की भूमिका, कंस वध इसी चित के कारण ही वैधता प्रदान करते हैं। इसी से मानव प्रकृति बनती है, उसी से संस्कृति। अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए राष्ट्र संस्थाओं को जन्म देता है। आत्मा और शरीर के अंग, कारखाना और विभाग में जो सम्बन्ध होता है, वही राष्ट्र और संस्था के बीच होता है। व्यक्ति इन संस्थाओं का उपकरण है और प्रतिनिधि भी। राष्ट्र की आत्मा को प्रकट करने का साधन भी है। सब संस्थाएँ राष्ट्र तथा मानव के अंगभूत हैं। उनमें एकात्मभाव चाहिए, वे परस्पर पूरक हैं तथा परस्पर अवलम्बी हैं। ध्यातव्य है कि राज्य भी एक संस्था है, जिसका निर्माता राष्ट्र है। इस प्रकार राज्य, राष्ट्र नहीं है, जैसा कि पश्चिम में माना जाता है। राज्य संविदा से पैदा हुआ है। ब्रह्मा ने दण्डनीति या राज्यशास्त्र मनु को दिया। भारत में राज्य सर्वोपरि नहीं है। ईरान में राज्य समाप्त होते ही राष्ट्र समाप्त हो गया। लेकिन भारत में राज्य केन्द्र में नहीं था।

राष्ट्र को मापदण्ड बनाकर देखें तो संविधान ने एक भूल की है कि वह भारत को संघीय मानता है। कुछ बातें तो ठीक हैं। जैसे–किसी प्रकार का भेदभाव नहीं, इकहरी नागरिकता, राज्य संघ से निकल नहीं सकते, राज्य की सीमायें और नाम राज्य नहीं तय करेगे, संसद करेगी। लेकिन बुराई संघ शब्द से है। क्योंकि उसमें इकाइयों की निजी सत्ता होती है। अपने अधिकार केन्द्र को सौंपते हैं। यह भारत की अखंडता के खिलाफ है। अगर संघीय न हो तो एकात्मक राज्य कैसा हो? एकात्मक का मतलब केन्द्रीकरण नहीं, बल्कि विकेन्द्रीकरण है। गांव तक को स्वायत्तता। जैसे आत्मा मुख्य है। लेकिन प्राण, मन, इन्द्रियां सबके पास ताकत रहती है।

यह एकात्मक राज्य हमारे धर्म के अनुसार चलेगा। धर्म की परिधि में संपूर्ण मानवता निहित है। राजा धर्म की रक्षा के लिए है। न राजा बड़ा है, न जनता, यहां तक कि ईश्वर भी नहीं। धर्म राज्य हो, थियोक्रेटिक स्टेट नहीं। न लेजिस्लेचर बड़ा है, न जूडीशियरी, न जनता। धर्मानुसार चलने वाला अल्पमत भी श्रेष्ठ होता है। अंग्रेजों के लिए कुछ लोग ही खड़े हुए। बहुमत शासक तय कर सकती है, सत्य नहीं, धर्म नहीं। बहुमत या जनता में धर्म नहीं है। धर्म शाश्वत है। सनातन है। इसलिए जनता का शासन पर्याप्त नहीं, जनता के हित में होना चाहिए। Government of the people, by the people and for the people में of स्वतंत्रता का, by जनतंत्र का और for धर्म का द्योतक है।

एकात्म मानववाद के अंतिम वक्तव्य में पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने अर्थव्यवस्था पर प्रकाश डाला। वे कहते हैं कि पश्चिम ने नए उपभोक्ता पैदा करने, नई मांग पैदा करने, अंधाधुंध उत्पादन को अपना लक्ष्य बना लिया, जो विनाशकारी सिद्ध होता जा रहा है। क्योंकि उत्पादन का संबंध प्राकृतिक संसाधनों से है जिसके उपभोग की एक मर्यादा है। एक कारखाने का मालिक मशीनों की घिसाई निधि की व्यवस्था रखता है, लेकिन प्रकृति के लिए इस तरह का विचार नहीं होता, जबकि होना चाहिए। इसलिए हमें संयमित उपभोग करना होगा। पश्चिम के घातक आर्थिक नारों ने स्थिति खराब कर दी। पूँजीवाद मानव की क्रयशक्ति पर जोर देता है, साधन सम्पन्न के लिए बहुत कुछ, साधनहीन के लिए कुछ नहीं, समाजवाद व्यक्ति निरपेक्ष होकर सबकुछ राज्य को सौंप देता है, वहीं कम्युनिस्ट कहते हैं कि श्रमिक को ही खाने का अधिकार है। जबकि व्यवस्था यह हो कि सभी की न्यूनतम् आवश्यकताएँ रोटी, कपड़ा और मकान पूरी हों। निःशुल्क शिक्षा एवं चिकित्सा, प्रत्येक को काम की गारण्टी मिले।

इस प्रकार पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने अपने एकात्म मानव दर्शन के अन्तर्गत मानव के समग्र एवं संकलित स्वरूप पर विचार किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति के मूल्यों के साथ राष्ट्रीयता, प्रजातंत्र, समता और विश्व एकता के आदर्शों को समन्वित रूप में रखने का प्रयास किया। इससे मानव अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा एवं जीवन के उद्देश्य को पा सकेगा। हमें राष्ट्र को सबल बनाने के लिए उसके विराट् को जाग्रत करना होगा जो उसका प्राण है। पंडित जी कहते हैं कि अपने प्राचीन के प्रति गौरव का भाव लेकर, वर्तमान का यथार्थवादी आकलन लेकर और भविष्य की महत्वाकांक्षा लेकर हमें इस कार्य में जुटना होगा। विश्व का ज्ञान और आज तक की संपूर्ण परंपरा के आधार पर ऐसे भारत का निर्माण करना होगा जो हमारे पूर्वजों के भारत से अधिक गौरवशाली होगा तथा जिसमें जन्मा मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ संपूर्ण मानव ही नहीं, अपितु सृष्टि के साथ एकात्मकता का साक्षात्कार 'नर से नारायण' बनने में समर्थ हो सकेगा।

12.3 सारांश– पं0 दीनदयाल उपाध्याय की एकात्म मानव दर्शन की संकल्पना बहुत व्यापक और सुगठित है। वे एक साथ व्यक्ति, समाज, राजनीति, धर्म, राष्ट्र आदि विषयों पर विचार करते हैं। एकात्म मानववाद के अन्तर्गत वे पश्चिम की नकारात्मकता का भारतीय एकात्मकता से शोधन करना चाहते थे। उन्होंने पश्चिम की उस अवधारणा का खण्डन किया जो व्यक्ति का एकांगी विचार करती है। वे मानव के सर्वांगीण विकास के पक्षधर थे। वे सम्पूर्ण व्यवस्था के केन्द्र में मानव को रखना

चाहते हैं। वे मानवमात्र का हर उस दृष्टि से मूल्यांकन करने की बात करते थे, जो उसके संपूर्ण जीवनकाल में छोटी अथवा बड़ी जरूरत के रूप में संबंध रखता है। उन्होने व्यष्टि–समष्टि या मानव और समाज की परस्पर सापेक्षता की बात कही। उनका कहना था कि मानव राष्ट्र का उपकरण है और प्रतिनिधि भी। उनका उद्देश्य एक ऐसा स्वदेशी सामाजिक–आर्थिक मॉडल प्रस्तुत करना था, जिसमें विकास के केन्द्र में मानव हो। अन्ततः हम कह सकते हैं कि दुनिया के इतिहास में केवल मानव मात्र के लिए यदि किसी एक विचार दर्शन ने समग्रता में चिंतन प्रस्तुत किया है तो वह एकात्म मानववाद का दर्शन है।

12.4 शब्दावली– मानववाद, संस्कृति, राष्ट्र, धर्म

12.5 प्रश्नावली–

1. पं0 दीनदयाल उपाध्याय के 'एकात्म मानववाद' सिद्धांत का वर्णन कीजिए।
2. पं0 दीनदयाल उपाध्याय पाश्चात्य मानववाद का भारतीय एकात्मकता से किस प्रकार सामंजस्य बैठाते हैं? स्पष्ट कीजिए।
3. एकात्म मानववाद मानव के सर्वांगीण विकास का दर्शन है। चर्चा कीजिए।

12.6 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ–

1. उपाध्याय, दीनदयाल, *एकात्म मानववादः तत्वमीमांसा सिद्धांत विवेचन*, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2020।
2. शर्मा, महेश चंद्र, *आधुनिक भारत के निर्माता : पंडित दीनदयाल उपाध्याय*, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, 2017।
3. गुरुदेव, डॉ0 गुप्तिसागर जी, *सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के अग्रदूत : पं0 दीनदयाल उपाध्याय*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023।
4. शर्मा, डॉ0 महेश चंद्र (संपादक), *दीनदयाल उपाध्याय : संपूर्ण वाङ्मय*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016।

इकाई 13

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 संस्कृति क्या है?

13.3 राष्ट्र क्या है?

13.4 सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

13.5 सारांश

13.6 शब्दावली

13.7 प्रश्नावली

13.8 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ

.....000.....

13.0 उद्देश्य–

पं0 दीनदयाल उपाध्याय की दृष्टि में राष्ट्र, संस्कृति और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की संकल्पना पर विचार करना।

13.1 प्रस्तावना– राष्ट्रवाद एक ऐसा विषय है, जो अनेक महापुरुषों यथा–महात्मा गांधी, टैगोर, विवेकानन्द इत्यादि के चिंतन का विषय रहा है। आधुनिक युग में पं0 दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रवादी चिंतन के प्रमुख उद्घोषक के रूप में दिखाई देते हैं। उनका राष्ट्रवाद अध्यात्म से स्पंदन करता है और सांस्कृतिक चेतना से स्फूर्त होता है। उनका राष्ट्रवाद व्यष्टि से समष्टि तक विस्तृत था, जिसकी

पूर्णता 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में होती है। वस्तुतः इस संकल्पना के मूल में उनका विचार था कि हमारी सारी व्यवस्थाएं सांस्कृतिक चेतना पर ही आधारित हों, जिससे कि सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना के सहारे भारत–बोध सम्भव हो सके।

13.2 संस्कृति क्या है?– संस्कृति किसी राष्ट्र–राज्य, जीवन या समाज की संपूर्ण मानसिकता का आदर्श एवं सुंदर रूप होती है। यह प्रत्येक समाज की परंपरा से जुड़कर हमारी जीवन पद्धति बन जाती है। संस्कृति का वर्तमान रूप किसी समाज के दीर्घकाल तक अपनाई गई पद्धतियों का परिणाम होता है। संस्कृति मनुष्य को विवेक सम्पन्न व मानवीय बनाती है। संस्कृति किसी भी देश अथवा समाज के सामूहिक आचरण का प्रतीक है। यह मानवीय संबंध, जीवन जीने के अर्थ की धुरी है। यदि भारतीय संस्कृति को देखें तो यह सबसे प्राचीन और समृद्ध है। यह विविध संस्कृतियों की समन्वयात्मक समष्टि है। यह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की संकल्पना पर अधिष्ठित है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण जीवन का, सम्पूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करती है। उसका दृष्टिकोण एकात्मवादी है, न कि टुकड़ों–टुकड़ों में विचार करना। विविधता में एकता अथवा एकता का विविध रूपों में व्यक्तीकरण ही भारतीय संस्कृति का केन्द्रस्थ विचार है। 'धर्म' भारतीय संस्कृति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है। धर्म के कारण भारत में राजा, प्रजा, समाज, व्यक्ति सभी सुसंयमित हुए, कोई भी उच्छृंखल नहीं हो सका। ध्यातव्य है कि यहां धर्म का अर्थ प्रकृति के शाश्वत् व खोजे हुए नियम हैं। धर्म मजहब नहीं है। भारतीय संस्कृति परमत–सत्कारवादी है अर्थात् दूसरे मतों के प्रति सहिष्णु है। यहाँ यह विचार ही है कि 'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति' अर्थात् एक ही सत्य को विद्वान लोग बहुत प्रकार से कहते हैं। भारतीय संस्कृति समन्वयवादी है। व्यक्ति व समाज में समन्वय, राष्ट्र एवं विश्व में समन्वय, भौतिकता एवं आध्यात्मिकता में समन्वय, विभिन्न विचारों व पंथों में समन्वय तथा हर प्रकार के संघर्ष को शासित करने की अद्भुत समन्वय क्षमता भारतीय संस्कृति का विशिष्ट लक्षण है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय मानते थे कि संस्कृति सृजित नहीं होती, बल्कि स्वतः क्रियाशील होती है। संस्कृति आत्म–तत्व है, जिसके विकास की प्रक्रिया में खान–पान के तरीके, पहनावा, भाषाएँ, सामाजिक–आर्थिक व्यवस्थाएँ, राजनीतिक प्रणालियाँ सन्निहित हैं और इस विकास की प्रक्रिया में यह आवश्यक है कि सबके बीच सौहार्द बना रहे, स्नेह का भाव बना रहे।

13.3 राष्ट्र क्या है?– राष्ट्र एक ऐसी अवधारणा है जो समय–समय पर परिभाषित होती रही। वैदिक युग में देखें तो राजनीतिक रूप से संगठित जन ही राष्ट्र या जनपद कहलाता था। संहिताओं में राष्ट्र शब्द का प्रयोग भूभाग के लिए किया गया। पश्चिम में राष्ट्र के लिए जिस अंग्रजी शब्द 'नेशन' का प्रयोग किया जाता है, वह लैटिन भाषा के 'नेशियो' शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है–जन्म या प्रजात। वह भी पहले अनेक अर्थों से भरा था। कभी आयरलैण्ड में कुलप्रमुख को राष्ट्र प्रमुख कहा जाता था तो जर्मनी और फ्रांस में राष्ट्र शब्द उच्च शासक वर्ग के लिए प्रयुक्त होता था। 17वीं शताब्दी तक आते–आते राष्ट्र शब्द किसी राज्य की विशेष आबादी को रेखांकित करने के लिए प्रयुक्त होने लगा, वहीं फ्रांस की राज्य क्रांति ने नेशन को देशभक्ति के रूप में लिया। वास्तव में देखा जाय तो राष्ट्र के सारे अर्थ बहुत सीमित दायरे में हैं। जबकि आज राष्ट्र शब्द का अर्थ भौगोलिक सीमाओं में आबद्ध वह भूभाग है, जहाँ के निवासियों में एक साथ मिलकर रहने की भावना हो और जिनकी अपनी संस्कृति, सभ्यता एवं परंपरा हो। जिस तरह मानव की रचना में शरीर, प्राण और मन आदि की अपनी–अपनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, उसी प्रकार राष्ट्र के निर्माण में भूभाग रूपी शरीर, जनसमूह रूपी प्राण और जनसंस्कृति रूपी मन से राष्ट्र का गतिशील रूप सामने आता है। भूमि राष्ट्र का कलेवर है, जन उसका प्राण है और संस्कृति उसका मानस है।

राष्ट्र का अस्तित्व पं0 दीनदयाल उपाध्याय के जीवन का ध्येयभूत भाव है। वे कहते हैं कि जब एक मानव समुदाय के समक्ष एक मिशन, विचार या आदर्श रहता है और वह समुदाय किसी भूमि विशेष को मातृभाव से देखता है तो वह राष्ट्र कहलाता है। इनमें से एक का भी अभाव रहा तो वह राष्ट्र नहीं बनेगा। पं0 दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि जैसे शरीर में आत्मा होती है, वैसे ही राष्ट्र की भी एक आत्मा होती है, जिसे वह 'चिति' कहते हैं। चिति समाज की वह प्रकृति है, जो जन्मजात है, किसी ऐतिहासिक कारण से नहीं बनी है। चिति वह मापदण्ड है, जिससे हर वस्तु को मान्य अथवा अमान्य किया जाता है। इसी आत्मा के आधार पर राष्ट्र खड़ा होता है और यही आत्मा राष्ट्र के प्रत्येक श्रेष्ठ व्यक्ति के आचरण द्वारा प्रकट होती है। व्यक्ति भी इस राष्ट्र की आत्मा को प्रकट करने का एक साधन है। व्यक्ति अपने स्वयं के अतिरिक्त राष्ट्र का भी प्रतिनिधित्व करता है। अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए राष्ट्र जितनी संस्थाओं को जन्म देता है, उसका उपकरण भी व्यक्ति ही। ध्यातव्य है कि राज्य भी एक संस्था है, जिसका निर्माता राष्ट्र है। इस प्रकार राज्य, राष्ट्र नहीं है, जैसा कि पश्चिम में माना जाता है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि आज समष्टि की सबसे बड़ी इकाई राष्ट्र है। राष्ट्र के लिए चार बातों का होना आवश्यक है। प्रथम

आवश्यकता है–देश। देश भूमि और जन दोनों को मिलाकर बनता है। केवल भूमि ही देश नहीं है। किसी भूमि पर जन या समाज रहता हो और वह उस भूमि को माता के रूप में पूज्य समझे, तभी वह देश कहलाता है। जैसे–दक्षिणी ध्रुव में कोई नहीं रहता, तो वह देश नहीं है। किन्तु भारत में हम रहते हैं, हम इसे माँ मानते हैं, इसलिए यह देश है। दूसरी आवश्यकता है– सबकी इच्छाशक्ति अर्थात् सामूहिक जीवन का संकल्प। तीसरी एक व्यवस्था, जिसे नियम या संविधान कह सकते हैं, इसके लिए हमारे यहाँ 'धर्म' शब्द प्रयुक्त हुआ है। और चौथी आवश्यकता है– जीवन–आदर्श या संस्कृति। इन चारों का समुच्चय ही राष्ट्र है।

13.4 सांस्कृतिक राष्ट्रवाद– पं0 दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रवाद को आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चिंतन से स्पंदित मानते थे। भारत की सांस्कृतिक एकता को स्वीकार करने के साथ–साथ उन्होंने भारत की सनातन प्रवाहमान बौद्धिक चेतना को सदैव महत्व दिया। वे मानते थे कि भारत का विभाजन सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के उच्छेद का परिणाम है। उनका चिंतन संपूर्ण भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता के दो मूलभूत तत्वों, देशभक्ति एवं ऐतिहासिक गौरवभाव से ओत–प्रोत था। वे अपने प्रबोधनों में विष्णु पुराण का वह श्लोक उद्धृत करते थे, जिसमें कहा गया है कि–

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्। वर्षं यद् भारतं नाम भारती यस्य संततिः।।

अर्थात् समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में, जो भूभाग स्थित है, उसका नाम भारत है और उसकी संतान को भारतीय कहते हैं। वहीं सांस्कृतिक गौरव के भाव को पुनः इन शब्दों में व्यक्त किया गया है–

गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतु भूते, भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।

अर्थात् देवता भी स्वर्ग में गीत गाते हैं कि धन्य हैं वे जिनका जन्म भारत भूमि पर हुआ है। यह भूमि स्वर्ग से भी महान् है। भारत का राष्ट्रवाद थोपने का राष्ट्रवाद नहीं है और न ही किसी को प्रताड़ित करने का राष्ट्रवाद है तथा किसी के संप्रभु भूखंड को छीनने का भी राष्ट्रवाद नहीं है, बल्कि यह एक वैश्विक परिवार का राष्ट्रवाद है। राष्ट्रवाद एक संस्कार की तरह है। इसे संकल्प के रूप में देखा जाता है। संकल्पकर्ता भारत भूमि को हाथ जोड़कर सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रति संकल्प लेता है–''जंबूद्वीपे, भरतखंडे, आर्यावर्ते देशान्तरे, गते अमुक क्षेत्रे, अमुक नगरे,'' आदि–आदि। सांस्कृतिक

राष्ट्रीयता के लोकशिक्षण की इतनी प्रभावी प्रक्रिया अन्यत्र नहीं मिलती है। यह तो निश्चित है कि भारत नामक विशाल भूखण्ड की भौगोलिक एकता का साक्षात्कार एक दिन में नहीं हुआ, बल्कि हजारों वर्षों की आध्यात्मिक–सांस्कृतिक यात्रा की सुसंपन्नता के उपरान्त हुआ, जिसका जुड़ाव सांस्कृतिक था, मन सांस्कृतिक था और धर्म उसका आधार था।

सांस्कृतिक चेतना से पूरित भारत एक राष्ट्र के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बनाया हुआ है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, राष्ट्रवाद का वह रूप है, जिसमें राष्ट्र को एक साँझी संस्कृति के रूप में देखा जाता है। विविधता से भरे भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद स्पंदित हो रहा है। वही है जो विविधता में एकता को चरितार्थ किए हुए है। उसी की वजह से भारत दुनिया के किसी कोने से आने वाले का निरन्तर स्वागत किया, उनकी शरणस्थली बना। इसी संकल्पना का प्रभाव है कि हमने मानव कल्याण की कामना की। कभी संकुचित विचारों को महत्व नहीं दिया गया। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद हमारे जीवन मूल्यों को महत्व देता है। यह हमें संवेदनशील, उदार, सहिष्णु, संस्कारी बनाता है, यही कारण है कि भारत में पत्थर, नदियाँ, पर्वत, पशु–पक्षी पूजे जाते हैं। हम अपने देश को माता के समान पूजते हैं। 'वन्दे मातरम', 'भारतमाता' जैसे शब्दों से आह्वान करते हैं।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के आधार के रूप में हमारी प्राचीन संस्कृति है, हमारी सांस्कृतिक एकता है, जो सबल और टिकाऊ है। यह लोगों को एकजुट करने में सक्षम है। इसी भारत की धरती से भारतीय संस्कृति के मूल्य उद्भूत हुए हैं। एकात्मकता, समन्वय, विशालता आदि सब यहीं की चेतना की देन है। अद्वैत वेदान्त के प्रतिष्ठापक आदिशंकराचार्य जैसे मनीषियों के अनथक परिश्रम का परिणाम है। भारतीय संस्कृति संश्लेषण प्रधान है। यह विज्ञानों की भांति विश्लेषणात्मक नहीं हैं, जो खण्डित रूप में विचार करे। इसलिए इसका स्वभाव समन्वयात्मक है। इस संस्कृति में एक ठहराव है, आस्था है, विश्वास है। यहां कोई भटकाव नहीं, भ्रम नहीं है। ऐसी संस्कृति से राष्ट्र सुदृढ़ होता है।

पं0 दीनदयाल उपाध्याय का मानना है कि राष्ट्र केवल भौतिक निकाय नहीं हुआ करता, राष्ट्र में रहने वाले लोगों के अन्तःकरण में अपनी भूमि के प्रति श्रद्धा की भावना होना राष्ट्रीयता की पहली आवश्यकता है। राष्ट्र की राष्ट्रीयता के निर्माण में संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रत्येक देश की अपनी एक संस्कृति होती है। देश में इतनी संस्कृतियों के होते हुए भी उन सबके मूल में एकता होती है। अनेकता में एकता की भावना होने पर भी सांस्कृतिक एकता ही राष्ट्रीय एकता की भूमि बन

पाती है। यह अन्तर्निहित सांस्कृतिक एकता हमारी राष्ट्रीय पहचान के सभ्यतामूलक आधार के साथ–साथ उच्च जीवन मूल्य भी है।

राष्ट्रवाद का स्वरूप राष्ट्र की संस्कृति एवं धर्म के द्वारा निर्धारित होता है। संस्कृति जहां राष्ट्र को उसकी प्राचीन स्वस्थ परम्पराओं के साथ सम्बद्ध करती है, वहीं धर्म राष्ट्र को उसकी अस्मिता का बोध कराता है। राष्ट्र के भौतिक स्वरूप के साथ धर्म एवं संस्कृति के अभिन्न होने पर ही राष्ट्रवाद का स्वरूप निर्मित होता है। भारतीय राष्ट्रतत्व के चिंतन में संपूर्ण विश्व के विकास की संकल्पना है। यह उदात्त संकल्पना पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा संपूर्ण मानवता को दिया गया एक अनुपम उपहार है, जो उनके सशरीर नहीं होने के बावजूद प्रखरता के साथ समूचे विश्व को प्रकाशित कर रहा है।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद संप्रदायवाद को प्रश्रय नहीं देता। यह सबको साथ लेकर चलने वाली विचारधारा है। यह अतीत, वर्तमान और भविष्य को समाहित कर देश को आगे बढ़ाता है। यह कोई भौगोलिक इकाई नहीं है, बल्कि एक अनुभूति है जो राष्ट्र के विभिन्न समुदायों और संस्कृतियों को परस्पर जोड़ती है। इसकी जड़ें भारतीय जनमानस में विद्यमान हैं, क्योंकि इस देश के चिंतन में मानव जाति के कल्याण की कामना की गई है। ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः'' की कामना की गई है।

पंडित जी का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राष्ट्र के सतत विकास को निश्चित करता हुआ जन–जन को भारत बोध से परिचित कराता है और दृढ़ता से यह स्पष्ट करता है कि भारत एक भौगोलिक सीमा में निर्मित राज्य मात्र नहीं है, अपितु एक सांस्कृतिक नींव पर खड़ा हुआ गौरवशाली राष्ट्र है, जिसका इतिहास वैभवशाली रहा है। भारत की सांस्कृतिक विरासत उसे एक राष्ट्र के रूप में पहचान देती है। संस्कृतिवाद ही राष्ट्र के लिए आवश्यक तत्व है और उत्तम मार्ग है। केवल संस्कृतिवादी लोग ही ऐसे हैं, जिनके समक्ष और कोई ध्येय नहीं है। संस्कृति ही भारत की आत्मा है, जिससे लोग भारत की रक्षा और विकास कर सकते हैं।

13.5 सारांश– पं0 दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवाद राजनीतिक नहीं, भौतिकवादी नहीं, सांस्कृतिक है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद राष्ट्रीय पहचान का सभ्यतामूलक आधार और नागरिक जीवन का चरम उत्कर्ष है। यह साँझी विरासत से सम्बद्ध समुदायों का जीवंत गठजोड़ है, जो एक जैसा स्वप्न जीते हैं और एक जैसे भविष्य की संकल्पना करते हैं। इसी के कारण विश्व–बन्धुत्व की भावना विद्यमान

है, मानव कल्याण की भावना है। इसी का प्रभाव है कि सभी मातृभूमि को पुण्यभूमि समझते हुए प्यार और सम्मान देते हैं, वन्दे मातरम का उद्घोष करते हैं। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की वजह से ही हमारे देश में विविधता में एकता है। यही सांस्कृतिक चेतना प्रत्येक विपरीत परिस्थिति में हमारे भीतर एकत्व का भाव पैदा करती है, समन्वयवादी बनाती है। इसी सांस्कृतिक विरासत के कारण ही हम एक राष्ट्र के रूप में सदैव अपने अस्तित्व को बचाने में सफल रहे।

13.6 शब्दावली– राष्ट्र, संस्कृति, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

13.7 प्रश्नावली–

1. पं0 दीनदयाल उपाध्याय के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की संकल्पना का विवेचन कीजिए।
2. पं0 दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवाद भौगोलिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक है। समझाइए।
3. भारतीय संस्कृति, राष्ट्र से किस प्रकार सम्बद्ध है? स्पष्ट कीजिए।

13.8 उपयोगी पुस्तकें एवं संदर्भ ग्रंथ –

1. उपाध्याय, दीनदयाल, *एकात्म मानववादः तत्वमीमांसा सिद्धांत विवेचन*, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2020।
2. शर्मा, महेश चंद्र, *आधुनिक भारत के निर्माता : पंडित दीनदयाल उपाध्याय*, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, 2017।
3. गुरुदेव, डॉ0 गुप्तिसागर जी, *सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के अग्रदूत : पं0 दीनदयाल उपाध्याय*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023।
4. शर्मा, डॉ0 महेश चंद्र (संपादक), *दीनदयाल उपाध्याय : संपूर्ण वाङ्मय*, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016।

.....000.....

खण्ड–7
बी.आर. अम्बेडकर

इकाई–14 सामाजिक दर्शन

14.0 प्रस्तावना

14.1 पृष्ठभूमि

14.2 अम्बेडकर –

14.3 जाति भेद के विरोध में तर्करू गांधी और अम्बेडकर

14.4 अम्बेडकर के तर्क

14.5 गांधी जी के तर्क–

14.6 जाति भेद का उन्मूलन

14.7 निष्कर्ष

.....000.....

14.0 प्रस्तावना

सामाजिक पुनर्निर्माण का स्वप्न किसी भी देश के लिए सबसे महत्वपूर्ण होता है। अम्बेडकर और गांधी दोनो ही भारत का सामाजिक पुनर्निर्माण करना चाहते थे। दोनों दलित उत्थान के लिए प्रतिबद्ध थे। भारत के सामाजिक पुनर्निर्माण के स्तम्भ थे। दोनों की सोच पृथक-पृथक होते हुए भी चिंता एक थी। किन्तु विचारों, रणनीतियों व तरीकों के स्तर पर देानों के बीच महत्वपूर्ण मतभेद था।

जाति जन्म के आधार पर बना कठोर या बन्द समूह है। जाति पर आधारित होने के कारण जाति वंशानुगति पर आधारित है। जाति समाज को वंशानुगत आधार पर विभिन्न समुदायों में बांटती है। इसके साथ ही यह समुदायों का पदक्रम निर्धारित करती है। इसके साथ ही यह पदक्रम स्थानीय (क्षेत्रीय भिन्नता) होता है। पद-क्रम के आधार पर ही एक जाति का सामाजिक स्तर उच्च या निम्न घोषित किया जाता है। पद-क्रम में आमतौर पर ब्राह्मणों का सबसे ऊँचा पदक्रम तथा अछूतों को निम्नतम पदक्रम दिया जाता है।

14.1 पृष्ठभूमि

जन्म या वंशानुगति और पद-क्रम के साथ अपनी ही जाति में विवाह भी जाति व्यवस्था की अनिवार्य व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त परंपरागत रूप से प्रत्येक जाति का एक निश्चित व्यवसाय भी होता है। जैसे उत्तर भारत की एक

जाति चमड़े के व्यवसाय में लगे रहने के कारण चमार कही गई। साथ ही जातियांे के बीच और जाति के भीतर भोजन तथा सामाजिक व्यवहार संबंधी निषेध होते हैं। इस निषेध का सर्वप्रमुख रूप है छुआछूत। जैसे -केरल के नायर लोग नंबूदारी ब्राह्मण से बात तो कर सकते थे किन्तु उन्हे छू नहीं सकते थे।

जाति सिर्फ एक समूह ही नहीं है यह सामाजिक स्तरीकरण की एक व्यवस्था भी है। भारत की सामाजिक संरचना में जाति एक आधारभूत व्यवस्था है। चूंकि जातियों के बीच और जाति के भीतर पदक्रम तथा निषेध होता है। इसलिए जाति सामाजिक रूढ़ता को प्रकट करती है। जाति सिर्फ पद-क्रम व्यवसाय, निषेध पर आधारित, वंशानुगत, अन्तर्विवाही समूह मात्र नहीं है। यह यह सामाजिक रूढ़िता मात्र भी नहीं है बल्कि यह श्रेष्ठता की मानसिक धारणा भी है। गांधी व अम्बेडकर ने जाति-भेद का विरोध किया। क्योंकि दोनो ही विचारक जाति को एक मानसिक धारणा के रूप में स्वीकार करते थे।

गंाधी जाति के आधुनिक अर्थ में विश्वास नहीं करते थे। आधुनिक अर्थ में जाति जन्म के आधार पर ऊँच नीच का भेद करती है। इसमें एक जाति का व्यक्ति स्वयं को दूसरी जाति के व्यक्ति से श्रेष्ठ समझता है। इस तरह गांधी के अनुसार जाति आधुनिक अर्थ में श्रेष्ठता की धारणा है। इस अर्थ में वह एक बुराई और पाप है। अम्बेडकर ने भी जाति का गहरा विश्लेषण किया। अम्बेडकर के अनुसार भी ‘‘हिन्दुस्तान में जाति ईंट गारे से बना कोई मकान नहीं है। यह वास्तव में एक धारणा अथवा मानसिक स्थिति है।’’ इस प्रकार अम्बेदकर और गांधी जाति को धारणा अथवा मानसिक स्थिति के रूप में स्वीकार करते हैं। किन्तु इस समानता के अतिरिक्त गांधी और अम्बेडकर में दूर तक कोई समानता नहीं दिखाई देती।

गांधी जी ने जाति भेद का विरोध किया किन्तु वे जाति प्रथा के सभी रूपों के स्पष्ट विरोधी नहीं थे। गंाधी वैदिक युगीन वर्ण व्यवस्था के भी समर्थक थे। दूसरी ओर अम्बेडकर जातिभेद, जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था तीनों के ही विरोधी थे।

गांधी जाति को वहीं तक बुराई मानते थे जहां तक वह ऊँच नीच का भेद करती है। वे आर्थिक दृष्टि से एक जमाने में जाति के महत्व को स्वीकार करते हैं गांधी के अनुसार जाति प्रथा से पैतृक कौशल की रक्षा होती थी। प्रतियोगिता मर्यादित होती थी। यह कंगाली को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय था। एक जाति के लोग एक दूसरे की सहायता करेंगंे। इससे व्यापार श्रेणियों को भी लाभ थे। यद्यपि इससे साहस अथवा आविष्कार को बढ़ावा मिलता था परन्तु यह साहस अथवा आविष्कार के मार्ग में बाधक भी नहीं था परन्तु वह साहस अथवा आविष्कार के मार्ग में बाधक भी नहीं था। गांधी जी इस प्रकार गांधी ने जाति प्रथाके उन्ही पक्षों का विरोध किया जो पक्ष जाति भेद को बढ़ाने वाले थे। अम्बेडकर ने जाति प्रथा और जाति भेद में संबंध देखा और दोनों का विरोध किया। गांधी जी ने जाति भेद का विरोध करके वैदिक वर्णव्यवस्था को फिर से समाज पर लगाने की धारणा प्रस्तुत की। अम्बेडकर वर्ण व्यवस्था को पुरातनपंथी दृष्टिकोण मानते थे। इसके साथ ही वे वर्णव्यस्था के आधार पर समाज का पुननिर्माण नहीं करना चाहते थे। गांधी ने आर्थिक सामाजिक अध्यात्मिक तर्कों के आधार पर वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया था।

वर्ण व्यवस्था का आर्थिक तर्क यह है कि इससे पैतृक कौशल की रक्षा होती है। वर्णव्यवस्था का सामाजिक तर्क है कि इससे प्रतियोगिता मर्यादित होती है और समाज में वैमनस्य कम होते हैं। अध्यात्मिक तर्क है कि व्यवसाय के चुनाव के लिए खर्च किए जाने वाले समय में कमी होती है और व्यक्ति अपनी ऊर्जा का कण-कण सत्य या ईश्वर के साक्षात्कार में लगाना है। अम्बेडकर ने इन सभी तर्कों को खारिज किया। वर्ण व्यवस्था श्रम का विभाजन न करके श्रमिकों का विभाजन करने लगती है। एक ही कौशल से जुड़े होने के कारण अयोग्य और हीन हो गये। इसके साथ ही

वर्ण व्यवस्था अगर कर्म या योग्यता के आधार पर व्यक्तियों का विभाजन है तो उन व्यक्तियों के समूहों को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जैसे नाम देने की आवश्यकता क्या है।

वास्तव में गाँधी और अम्बेडकर के बीच जाति व वर्ण का अंतर सामाजिक पुनर्निर्माण के बारे में सोच का अंतर था। अम्बेडकर सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए सामाजिक सुधारों को वरीयता देते थे, जबकि गांधी राजनीतिक सुधारों के बाद सामाजिक सुधारों की बात करते थे। गांधी के लिए भारत की आजादी के बाद भारत में आजादी का प्रश्न महत्वपूर्ण था। अम्बेडकर के अनुसार भारत में आजादी का प्रश्न भारत की आजादी से पहले महत्वपूर्ण था।

14.2 अम्बेडकर -

सामाजिक सुधार समाज के शक्ति संबंधों की संरचना को प्रभावित करते हैं। सामाजिक सुधारों को प्रथम वरीयता देने के समर्थन में अम्बेडकर के तर्कों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है-ऐतिहासिक तर्क व सैद्धांतिक तर्क। ऐतिहासिक तर्क से यह बात सिद्ध होती है कि सामाजिक या धार्मिक क्रांतियों के बाद राजनीतिक क्रांतियां घटित हुई हैं। जैसे अरब में मोहम्मद साहब की शिक्षाओं के द्वारा उत्पन्न जागरूकता के बाद खलीफा के शासन की स्थापना हुई। महात्मा बुद्ध द्वारा की गई सामाजिक व धार्मिक क्रांति के बाद ही चन्द्र गुप्त ने राजनीतिक क्रांति को उत्पन्न किया। महाराष्ट्र मंे भक्ति आंदोलन के संतों के उपदेशों से उत्पन्न सामाजिक तथा धार्मिक जागरूकता के बाद ही शिवाजी ने राजनीतिक क्रांति उत्पन्नकी। गुरू नानक देव की शिक्षाओं के बाद ही पंजाब में राजनीतिक शसक्तिकरण किया।

सैद्धांतिक तर्क यह है कि जब समाज के भीतर पायी जाने वाली शक्ति संरचना जब समताकारी होती है तो राजनीतिक अधिकारों का बंटवारा भी समतापरक होता है। अम्बेडकर ने फर्डीनिंड का उद्धरण दिया है -'' संवैधानिक प्रश्न अधिकार के नहीं शक्ति के प्रश्न होते हैं। किसी देश की वास्तविक शासन पद्वति का अस्तित्व उस देश में पाई जाने वाली शक्ति की वास्तविक दशा में होता है। इसलिए राजनीतिक कानून का मूल्य और स्थिरता तभी है जब वे समाज के भीतर पायी जाने वाली शक्तियों की वास्तविक अवस्थाओं को ठीक-ठीक प्रकट करें।'' दलितों के लिए विश्ेाष अधिकारोंकी मांग अम्बेडकर के लिए समाज की शक्ति-संरचना के बदलाव का प्रश्न था। राष्ट्रीय आंदोलन में अम्बेडकर द्वारा साम्प्रदायिक पुरस्कार की मांग की इसी दृष्टिकोण को रेखांकित करती है।

अम्बेडकर के लिए भारत में सामाजिक पुनर्निर्माण का प्रश्न सामाजिक सुधार की प्रक्रिया से जुड़ा था। लेकिन अम्बेडकर के लिए समाज सुधार का वह मतलब नहीं था जो भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के पहले चरण में कांग्रेस के लिए था। कांग्रेस आरंभिक दिनों में विधवा विवाह, बाल विवाह पर रोक जैसे परिवार के भीतर के सुधारों को संबोधित कर रही थी। किन्तु अम्बेडकर के जिस समाज समाज सुधार का अर्थ था - हिन्दू समाज का पुनर्जन्म। अम्बेडकर हिन्दू समाज की पुनर्रचना और उसका पुनर्गठन करना चाहते थे। हिन्दू समाज की पुनर्रचना का प्रश्न अमीर-गरीब, धर्म सम्प्रदाय, ऊँच नीच, छूत-अछूत के भेद के उन्मूलन से जुड़ा था। किन्तु समाज के ढांचे को प्रभावित करने वाले सभी कारक जाति प्रथा से संबंधित हो चुके थे। इसलिए अम्बेडकर को यह लगा कि जाति प्रथा को उन्मूलित करके ही समाज के ढांचे को बदला जा सकता है।

दूसरी तरफ गांधी सामाजिक पुनर्निर्माण में राजनीतिक सुधारों पर ज्यादा बल देते थे। उन्होंने सामाजिक सुधारों को उपेक्षित तो नहीं किया किन्तु वे राजनीतिक प्रश्नों के बाद ही सामाजिक बुराइयों के निराकरण पर बल देते थे। गांधी धीरे-धीरे ब्रिटिश उपनिवेशवाद को सबसे बड़ी सामूहिक बुराई मानने लगे थे। अम्बेडकर भारत की पराधीनता के प्रश्न को भी दलित मुद्दे से जोड़कर देखते थे।

14.3 जाति भेद के विरोध में तर्क: गांधी और अम्बेडकर

गांधी और अम्बेडकर दोनो ने ही जाति भेद का विरोध किया। दोनों के ही अनुसार जाति असमानता, ऊँच नीच, श्रेष्ठता निकृष्टता की धारणा है। दोनो का मानना है कि जाति लोगों की नियंिग्यता को जन्म देती है। जाति भेद को गलत मानने के बावजूद गांधी और अम्बेडकर के तर्क अलग-अलग हैं।

14.4 अम्बेडकर के तर्क -

अम्बेडकर ने जाति प्रथा का समर्थन करने वाले तर्कंि की चर्चा भी की है और उनका जोरदार खण्डन भी किया है। जाति प्रथा के समर्थक श्रम विभाजन, नस्लीय शुद्धता, उच्चता के आधार पर इसका समर्थन करते हैं। गांधी स्वयं वर्ण व्यवस्था और जाति प्रथा की श्रम विभाजन करने वाली व्यवस्था के रूप में प्रशंसा करते थे। किन्तु अम्बेडकर ऐसे किसी भी तर्क से सहमत नहीं थे। जाति प्रथाके समर्थन में कहा जाता है कि आधुनिक सभ्य समाज में कार्य कुशलता के लिए श्रम विभाजन को आवश्यक माना जाता है। जाति प्रथा भी श्रम विभाजन करती है। इसलिए यह ठीक है। इसके साथ ही जाति प्रथा के समर्थक एक दूसरा तर्क भी देते हैं। जातियां नस्ल का रूप हैं। इससे नस्ल एवं रक्त की शुद्धता की रक्षा होती है। किन्तु अम्बेडकर ने वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक वह वैज्ञानिक आधारों पर इसे खारिज कर दिया। एक व्यक्ति की दृष्टि से जाति प्रथा हानिकारक है। यह वेशों को तय करने के बाद अस्वाभाविक विभाजन करती है। इसमें इसमें व्यक्ति की भावना इच्छा रुचि का काई स्थान नहीं होता। इसमें मनुष्य की निजी क्षमता एवं प्रशिक्षण का भी काई स्थान नहीं होता।

सामाजिक दृष्टि से भी यह हानिकारक है। इससे हिन्दू समाज असंगठित बना रहा। विभिन्न जातियों के भिन्न-भिन्न आदर्श और स्वार्थ होते हैं। यह जातियों के बीच में संघर्ष का आधार बन जाते हैं। आदिवासियों के उत्थान तथा शूद्रों के उद्धार प्रयास में जाति, व्यवस्था बाधक है। आर्थिक दृष्टि से ीाी जाति प्रथा हानिकारक है क्योंकि व्यवसाय-परिवर्तन की अनुमति न देकर यह भारत मंे बेरोजगारी का प्रमुख व प्रत्यक्ष कारक बनी हुई है।

धार्मिक दृष्टि से भी जाति प्रथा हानिप्रद है। हिन्दू धर्म में विशेष रूप से पाये जाने के कारण यह हिन्दू धर्म के प्रसार में बाधक रही है। जाति प्रथा का कोई जीव-वैज्ञानिक आधार भी नहीं है। अम्बेडकर के अनुसार जातियांे (जीव वैज्ञानिक समानताएं) का कोई रूप नही होता है। संतान में पाये जाने वाले गुणों या लक्षणों पर जीव विज्ञान या आनुवंशिकी में आज तक सहमति नहीं बन पाई। इसलिए यहकहना कि जातियां नस्ल के रूप में जीव-वैज्ञानिक इकाईयां हैं -उस तरह से है कि हिन्दुओं के पूर्वजों केा आनुवंशिकता है उस ज्ञान की हजारों वर्ष पूर्व प्राप्ति कर सके हैं। उस ज्ञान की हजारों वर्ष पूर्व प्राप्ति का दावा करना हास्यास्पद है। दूसरे यदि जातियांे को नस्लों का रूप मान भी लिया जाये तो अन्तर्जातीय भोजों पर पाबंदी क्यों है? जातियां समाज का नस्लीय विभाजन नहीं है वरन ये नस्ल का सामाजिक विभाजन है।

समानता का सकारात्मक तर्क भी जातिभेद का खण्डन करता है। जाति-भेद योग्यता का हनन है और सक्षम तथा सुविधा-संपन्नों का समर्थन है। किसी मनुष्य की क्षमता तीन बातों पर निर्भर करती है। -शारीरिक वेष, परंपरा, सामाजिक उत्तराधिकार तथा व्यक्ति विशेष के अपने प्रयत्न। अगर किसी व्यक्ति विशेष के असमान प्रयत्न के कारण असमान व्यवहार किया जाये तो यह अनुचित नहीं है। परन्तु किसी व्यक्ति विशेष के शारीरिक वंश परंपरा के कारण, सामाजिक उत्तराधिकार के कारण असमान व्यवहार किया जाये तो यह अनुचित है। यह उत्तम कुल, शिक्षा, पारिभाषिक ख्याति, पैतृक संपदा तथा व्यवसायिक प्रतिष्ठा को लाभ देना होगा। यह याग्य का चयन नहीं है। सक्षम का चयन है। दूसरे अम्बेडकर समानता को व्यवहार्य सिद्धांत मानते थे। आधुनिक राजनीतिक सभी की अलग-अलग क्षमताओं तथा आवश्यकताओं के आधार पर अलग-अलग व्यवहार नहीं कर सकते।

14.5 गांधी जी के तर्क-

गांधी जी ने जाति भेद का विरोध मूलतः आध्यात्मिक तर्क द्वारा किया है। गांधी आध्यात्मिक समानता को जातिगत असमानता के विरोध में पार रहे थे। गांधी ने इस विरोध को खारिज कर सबके बिल्कुल बराबर होने की घोषणा की। गांधी के अनुसार -हम सब बिल्कुल बराबर हैं किन्तु यह बराबरी आत्मा की है न कि शरीर की। एक व्यक्ति का स्वयं को दूसरे से श्रेष्ठ समझना मनुष्य के प्रति पाप है। गांधी जाति भेद को वर्ण व्यवस्था का दुरुपयोग मानते थे। वे वर्ण व्यवस्था के चार विभाजनों को मौलिक और स्वाभाविक मानते थे। उन्होंने कहीं-कहीं जातियों केा अनावश्यक तथा प्रगति के लिए बाधक बताया है। प्रगति के लिए बाधक बताना-गांधी का आर्थिक तर्क है। लेकिन गांधी श्रम विभाजन करने वाली पैतृक कौशल को सुरक्षित करने वाली तथा प्रतियोगिता को मर्यादित करने वाली जाति प्रथा का समर्थन करते हैं। गांधी इस बिन्दु पर वर्ण और जाति के बीच की रेखा को मिटा देते हैं।

14.6 जाति भेद का उन्मूलन

गांधी जी जाति-भेद के उन्मूलन के लिए धार्मिक, आर्थिक व नैतिक सुधारों की बात करते हैं। गांधी के अनुसार जाति भेद का उन्मूलन सच्चे धर्म की स्थापना से संभव है।सच्चे धर्म का तकाजा है कि हम सभी स्वेच्छा से अतिशूद्र (अधिक सेवा भाव) बन जायें। चंूकि शूद्र शारीरिक श्रम द्वारा दूसरों की सेवा करके जाति भेद में छिपी उच्चता अथवा श्रेष्ठ होने का भाव नकार दिया जाता है। जहां अम्बेडकर जाति भेद को धार्मिक भावना पर आधारित मानते थे वहीं गांधी जी जाति भेद को धार्मिक मानने से इन्कार करते हैं। गांधी जी के अनुसार धर्म के साथ जाति का कोई प्रयोजन नहीं है। मुझे किसी धर्म ग्रन्थ में ऐसे अवरोधों और भेद भाव का विधान नहीं मिलता। अम्बेडकर जाति भेद के किले को तोड़ने के लिए जातियों के साथ पवित्रता और ईश्वरीय विधान की भावना को समाप्त करना चाहते थे। इसके ठीक विपरीत गांधी जी सबकुछ ईश्वर द्वारा रचित है, इसलिए सबकुछ समान है इस धार्मिक भावना की पुर्नवापसी चाहते थे। गांधी जी - मैं अद्वैत में विश्वास करता हूँ। मुझे मनुष्यों की ही नहीं प्राणि मात्र की एकता में विश्वास है। उदय और पतन सबका साथ-साथ होता है। इसी को सर्वोदय कहते हैं।

गांधी जी को अमीरी और गरीबी से जोड़ते हुए अमीरी-गरीबी के अंतर को समाप्त करने के लिए स्थानान्तरण के सिद्धांत की बात करते हैं। हमें स्वयं को अपने धन का स्वामी नहीं वरन् न्यासी मानना चाहिए। अपनी सेवा के उचित पारिश्रमिक से अधिक को अपने पास न रखते हुए समाज सेवा पर लगा देना चाहिए। इससे जाति या आर्थिक शिकायतों को आधार बनाकर उठने वाले तमाम झगड़े समाप्त हो जायेंगें। गांधी जी अन्नदायी श्रम के सिद्धांत द्वारा भी जाति भेद को कमजोर करने मंे विश्वास करते हैं। अन्नदायी श्रम के सिद्धांत के अनुसार जीवित रहने के लिए हर व्यक्ति को श्रम करना आवश्यक है। इससे मानसिक कार्याें को उच्च तथा शारीरिक श्रम को निम्न माने जाने की धारणा डूब जायेगी। गांधी जी ने कहा था -हर व्यक्ति को स्वयं अपना भंगी बनना होगा।

हृदय परिवर्तन के नैतिक कारक में भी गांधी जी का अटूट विश्वास था। गांधी जी विश्वास था कि पाप से घृणा करो पापी से नहीं क्योंकि पापी व्यक्ति भी भीतर से अच्छा होता है प्रत्येकव्यक्ति की आत्मा में सत्य का निवास है। इस सत्य को अहिंसा और प्रेम के मूल्यों के रूप में जागृत करना होगा। सच्चा प्रेम भेद की दीवारों को तोड़ देता है। इसमें जाति भी शामिल है। अम्बेडकर ने जाति उन्मूलन के लिए कुछ उपायों की चर्चा की है। अम्बेडकर के अनुसार - उपजातियों को समाप्त कर देने पर जाति प्रथा के प्रसार पर अंकुश लगेगा। अन्तर्जातीय विवाह व भोज को स्वीकार किया जाये। किन्तु स्वयं अम्बेडकर भी इन उपायों को अपर्याप्त मानते हैं। उनका विचार था कि जाति ईंट-गारे की दीवार या कांटेदार तारों की घेरा बंदी नहीं है जो लोगों को आपस में मिलने से रोकती है और जिसको गिरा देने से बाधा

दूर हो जायेगी। यह तो एक धारणा अर्थात् मानसिक स्थिति है। अतः जातिवाद की समाप्ति का अभिप्राय किसी भौतिक पदार्थ का अस्तित्व मिटाना नहीं है। वरन् धारणा अर्थात् भावनात्मक परिवर्तन से है।

अम्बेडकर जाति का संबंध धर्म से जोड़ते थे और इसीलिए वे धर्मशास्त्र में संशोधन की आवश्यकता पर बल देते थे। वे मानते थे कि पुरोहित था ब्राह्मण और पवित्र धर्मशास्त्र जाति प्रथा को बनाये रखने में सबसे बड़े कारण हैं। अम्बेडकर जातिवाद को ब्राह्मणवाद की उपज मानते थे। इसीलिए वे ब्राह्मण वादको समाप्त करके हिन्दू धर्म में व्यापक परिवर्तन करते हुए प्रथा के उन्मूलन की बात करते हैं। महात्मागांधी भी जाति प्रथा और छुआ छूत को सामाजिक पुननिर्माण में एक बड़ी बाधा मानते थे। किन्तु गांधी और अम्बेडकर के बीच जाति प्रथा के संबंध में कई महत्वपूर्ण मतभेद थे। गंधी जी ने जाति प्रथा व छुआछूत का विश्लेषण जिस रूप में किया अम्बेडकर उससे बिलकुल भिन्न रूप में करते हैं। अम्बेडकर जाति का कारण धर्म को मानते थे। जबकि गांधी जी जाति धर्म में संबंध नहीं मानते थे। गंाधी जी ने हरिजन में लिखा - धर्म के साथ जाति का कोई प्रयोजन नहीं है। दलित उत्थान के उपायों एवं रणनीतियों के बिन्दु पर भी दोनों में मतभेद था। गंाधी जी ने अछूतों को हरिजन का प्रेमपूर्ण नाम दिया था। इसके साथ ही गांधी दलित उत्थान के लिए किसी अधिकार या संघर्ष की मांग के बजाय सवर्णंि में पाप-बोध पैदा करना चाहते थे। जबकि अम्बेडकर अधिकार व संघर्ष की बात करते थे। गांधी जी के लिए पूना पैक्ट सवर्णंि का पाप-बोध था। जबकि अम्बेडकर के लिए दलितों के राजनीतिक संघर्ष का एक पड़ाव था।

वास्तव में महात्मा और अम्बेडकर के बीच राजनीति के मूलगामी सिद्धांत में ही फर्क था। महात्मा गांधी राजनीति को सत्य व अहिंसा से संचालित करना चाहते थे, अम्बेडकर समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व से। दलित मुक्ति के लक्ष्य पर भी दोनो में मतभेद था। महात्मागांधी हरिजनोत्थान को हिन्दू धर्म के भीतर की समस्या मानते थे। अम्बेडकर दलितोत्थान को हिन्दू धर्म के ढांचे की समस्या मानते थें महात्मा गांधी हरिजनों को हिन्दू धर्म के दायरे से बाहर जाने के विरोधी थे जबकि अम्बेडकर दलित समानता की मांग को हिन्दू धर्म से बाहर जाकर समाधान करने के पक्षपाती थे। अम्बेडकर द्वारा 1956 में लाखों दलितों के साथ बौद्ध धर्म का अपनाया जाना इसी बात की ओर संकेत करता है।

14.7 निष्कर्ष:

वास्तव में गांधी और अम्बेडकर दोनों ने जाति के नकारात्मक पक्षों को ज्यादा आधार बनाया किन्तु राजनीति ने जाति का आधुनिकीकरण कर दिया है। जातियों के पद-क्रम बदले हैं, छुआछूत की भावना कम हुई है। पारंपरिक निष्ठायें आधुनिक लोकतांत्रिक निष्ठाओं से जुड़ गई हैं। भारत में लोकतांत्रिक राजनीति में विभाजनकारी तत्वों के बजाय एकताकारी तत्वों को बल प्रदान किया है और इसका आधार जाति समूह रहे हैं। इसलिए जातियों के नकारात्मक तत्वों को बदलने की बात सोचनी चाहिए। आधुनिक राजनीतिक दृष्टि से भी जातियों के बदलाव के बारे में तो सोचा जा सकता है। किन्तु एक झटके में ही जातियों की सामूहिकता के बारे में सोचना एक यूटोपिया है।

.....000.....

खण्ड–8 : महात्मा गांधी

इकाई–16 : सत्य अहिंसा

ईकाई का रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 सत्य और अहिंसा

16.2.1 गाँधीजी के अहिंसा की अवधारणा

16.3 सत्य व अहिंसा का प्रभाव

16.4 सारांश

16.5 शब्दावली

16.6 उपयोगी पुस्तकें

16.7. बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने के बाद इस योग्य होना चाहिए कि आप –

- सत्य और अहिंसा के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा इसके द्वारा हम कैसे न्यास की स्थापना कर सकें।
- सामाजिक न्याय की स्थापना में सत्य और अहिंसा की विचार धारा को ग्रहण करायें
- कैसे सत्य और अहिंसा एक दूसरे के पूरक हैं।
- गाँधीजी ने सत्य और अहिंसा को निहत्थों का हथियार बताया इसकी जानकारी प्राप्त कर सकें।

16.1 प्रस्तावना –

इस इकाई का उद्देश्य सत्य और अहिंसा के द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं नैतिक परिवर्तन पर चर्चा करेंगे। गाँधीजी की मूल परिकल्पना में अहिंसा का स्थान सर्वोपरि है। अहिंसा और सत्य का गाँधीजी ने सूक्ष्म विष्लेषण कर उसे व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में प्रयोग किया। एक व्यवहारिक आदर्शवादी की तरह गाँधीजी ने हमेंशा सत्य व अहिंसा दोनों की बात की। अपने व्यवहारिक

आदर्शवाद की तह में जाकर उन्होंने अहिंसा के व्यवहारिक प्रयोग को अमली जामा पहनाया तथा विश्व को अहिंसक क्रांति का एक नया अस्त्र दिया।

गाँधीजी के अहिंसा के सिद्धांत एवं उसके प्रयोग की जितनी आवश्यकता उनके जीवित रहत थी आज इसकी आवश्यकता उससे ज्यादा महसूस की जा रही है।

गाँधीजी ने अहिंसा के विभिन्न प्रयोग किए। साथ ही इन प्रयोगों में वे सफल रहे। गाँधीजी की अहिंसा को समाज से विमुक्त नहीं करती बल्कि इसे समाज में अहिंसा के प्रयोग को करने को प्रेरित करती है।

16.2 सत्य और अहिंसा

हमारी सारी प्रवृत्तियों का केन्द्र सत्य होना चाहिए। सत्य हमारे जीवन का प्राण होना चाहिए। धर्म यात्री की प्रगति में जब एक बार यह मंजिल आ जाती है तब सही जीवन के और सब नियम अनायास या जाते हैं और उनका पालन स्वाभाविक बन जाता है। परन्तु सत्य के बिना जीवन में किसी भी सिद्धांत या नियम का पालन असंभव है।

सत्य ईश्वर का सही नाम है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य अपने ज्ञान के अनुसार सत्य का पालन करें तो उसमें कुछ भी बेजा नहीं हैं बेशक, वैसा करना उसका कर्तव्य है। फिर अगर इस प्रकार सत्य पालन में किसी से कोई भूल हो जाती है तो वह अपने आप ठीक हो जायेगी। क्योंकि सत्य की खोज में तप स्वयं सहने की जरूरत होती है, कभी–कभी उसके पीछे मर मिटना होता है। इसमें स्वाथ के लिए किंचित भी गुंजाइश नहीं हो सकतीं सत्य की ऐसी निःस्वार्थ खोज में कोई बहुत समय तक पथभ्रष्ट नहीं हो सकता। ज्योंही वह गलत रास्ते पर जाता है, त्योंही ठोकर खाकर गिरता है और इस प्रकार फिर सही मार्ग पर लग जाता है।

अहिंसा या प्रेम का जीवन में महत्वपूर्ण योगदान है। अहिंसा के सिद्धांत का भंग कर हर बुरे विचार से अनुचित जल्दबाजी से झूठ बोलने से, घृणा से और किसी का बुरा चाहने से भी होता है। दुनिया के लिए जो वस्तु जरूरी है उस पर अधिकार जमाने से भी इस सिद्धांत का भंग होता है। अहिंसा के बिना सत्य की खोज असंभव है। अहिंसा और सत्य आपस में इतने ओत–प्रोत है कि उन्हें एक दूसरे से अलग करना लगभग असंभव है वे सिक्के के दो पहलू हैं। अहिंसा साधन है सत्य साध्य है। साधन तभी साधन है जब वह हमारी पहुंच के भीतर हो, और इसलिए अहिंसा हमारा सर्वोपरि कर्तव्य है।

सत्य और अहिंसा एक दूसरे के पूरक हैं सत्य और अहिंसा एक दूसरे का अर्थ स्पष्ट करते हैं। गाँधीजी ने कभी भी अहिंसा के अमूर्त रूप की बात नहीं बल्कि हमेंशा उन्होंने इसे मूर्त रूप में प्रस्तुत किया। गाँधीजी ने बाद के वर्षों में इसके अर्थ को कुछ निश्चित तत्वों व घटनाओं से सम्बद्ध व सरलीकृत करने की कोशिश की। लेकिन सत्य के प्रति उनकी जागरूकता ने हमेंशा की तरह उन्हें सही रास्ता दिखाया।

गाँधीजी का सम्पूर्ण जीवन समझौतों और समायोजनों का समन्वय था परन्तु गाँधीजी ने अपनी मौलिकता से कभी समझौता नहीं किया। मानवीय अवधारणाएं जो कि मानवीय संवेदनाओं से किसी भी स्तर या कमतर नहीं है, हमेंशा से द्वन्, के इर्द–गिर्द ही घूमती रही है फिर वह द्धन्द अच्छाई बुराई का हो या ठंडे–गर्म का। हिंसा और अहिंसा भी इसका कोई अपवाद नहीं है। शुद्ध हिंसा की ही तरह शुद्ध अहिंसा भी मानवीय अस्तित्ववान हो सकता है। विरोधी की तरह नहीं। जिस स्थायी व निरंतर शांति की तलाश मानव अपने निर्माण काल से ही कर रहा है वह एक दिखावा मात्र है। युद्ध व शांति, द्धन्द व मिलन, मानवीय सामाजिक, राजनीतिक व मनोवैज्ञानिक विकास प्रक्रिया के दो अभिन्न अंग हैं। क्रम विकास युद्ध से शांति

की ओर गमन है, यह आम अवधारणा है विल्कुल तथ्यों से परे और भ्रामक है। वरन इसके बजाय मानवीय विकासक्रम एक प्रकार के शांति व युद्ध से दूसरे प्रकार की शांति व युद्ध की तलाश है। यह सापेक्ष है न कि सम्पूर्ण विकास क्रम।

गाँधीजी ने सत्य को मूल अर्थ में लिया है। सत्य का आदर्श प्रहलाद का आदर्श है। सत्य आत्मा है ईश्वर है अतः आचरण ही सत्य है। यही सत्याग्रह है। सत्याग्रह निष्क्रिय प्रतिरोध नहीं है। उन्होंने इसका प्रारम्भ 1908 में दक्षिण अफ्रिका में किया था। सत्याग्रह शारीरिक बल नहीं है अपितु आत्मबल है। आत्मा में प्रेम की लौ जलती है। सत्याग्रही कभी भी जिसका विरोध करता है उसका अहित नहीं चाहता। राम सत्याग्रह के प्रतीक है रावण की अनन्त भौतिक शक्ति आत्मबली राम के सामने कुछ भी नहीं है। सत्याग्रह कामधेनु है। सत्याग्रह से सत्याग्रही एवं विरोधी दोनों का लाभ होता है। हरिषचन्द्र, मीराबाई, सुकरात सत्याग्रही थे। सत्याग्रही अपने सत्य पर अड़ जाता है। हार शब्द उसके शब्दकोष में नहीं है। वह किसी अन्य की प्रतीक्षा नहीं करता, वह निर्भय होता है। सत्याग्रह मात्र सरकार के विरुद्ध ही नहीं होता वह किसी भी अत्याचार या अन्याय के विरोा में हो सकता है चाहे वह व्यक्ति द्वारा हो, समाज द्वारा हो या सरकार द्वारा। गाँधीजी लिखते है थोरो ने अपने ही समाज का जो दास व्यापार में सलग्न था, विरोध किया, इसी प्रकार मार्टिन लूथर किंग ने अपने ही लोगों के विरुद्ध सत्याग्रह के बल पर जर्मनी को स्वतंत्र किया।

सत्याग्रह का आदर्श 'सत्यमेंव जयते' है। ईश्वर की उपस्थिति एवं पथ प्रदर्शन सत्याग्रह की पूर्वमान्यता है। सत्याग्रही को शक्ति अपनी आत्मा से ईश्वर से मिलती है। वह अंतरात्मा की आवाज के अनुसार आचरण करता है। यही सत्याग्रह सर्वदा समष्टि के लाभ के लिए होना चाहिए। सत्याग्रही विजयी होता है किन्तु उसकी विजय उसके विरोधी ही पराजय नहीं होती अपितु उसकी वह अधिक महत्वपूर्ण विजय होती है क्योंकि सत्याग्रह के द्वारा असत्, अमंगल एवं अन्याय दूर होता है। इस प्रकार विरोधी पथभ्रष्ट होने से बचता है। यह विरोधी का परिवर्तन है। यह प्रश्न उठ सकता है कि सत्य क्यों वरेण्य है? क्या सत्याग्रह दुराग्रह नहीं है क्या आज आए दिन सत्याग्रह के नाम पर दुराग्रह का कारण बन जाता है। आदर्श का प्रयोग ज्यों ही अनुचित ढंग से होगा वह आदर्श नहीं रह सकेगा। गाँधी के अनुसार सत्य ईश्वर है। परमतत्व है। साथ ही वह परममूल्य, निःश्रेयस् भी है अतः वही तथ्य को कहना चाहता है। सत्य का शत्रु कोई नहीं होता क्योंकि उसकी आत्मा प्रेम से आप्लावित रहती है। सत्याग्रह की योग्यता पर इस प्रकार सचमुच अत्यन्त कठिन साधना से प्राप्त होती है।

अहिंसा मात्र हिंसा न करने से पूर्ण नहीं होती बल्कि इसके लिए मन, वचन और कर्म को एक जैसा रखना होता है। गाँधी ने सत्याग्रह का आदर्श प्रहलाद को बताया है। इस संदर्भ में विचारक के अनुसार जैन धर्म में अहिंसा पर गंभीरता पूर्व विचार किया गया है। किन्तु वह निषेधात्मक है। यह ठीक है किन्तु विचार का ध्यान विचार गौतम बुद्ध की अहिंसा के विधायक पक्ष महाकरुणा पर आधारित था। विचारक शायद पांतजल के योगसूत्र के 'अहिंसा प्रतिष्छायां तत्र सन्निद्यौ बैर त्यागः' के भाव को समझ सका। हिन्दू ऋषियों में गाय, हिरण एवं मयूर के साथ–साथ सिंह व्याघ्र एंव सांप भी विचरण करत है। हिन्दू ऋषिकुलों में पले सिंह शावकों के साथ खेलने वाले, उनके दाँत गिनने वाले भरत का यह भारत है। विचारक हिन्दू अहिंसा की परम्परा को कादम्बरी के जाबालि आश्रम के वर्णन में देख सकता है जब यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या अहिंसा सही अर्थ में व्यवहार्थ है। क्या हम खाते,पीते, चलते, श्वसन करते जाने अनजाने हिंसा नहीं करते? गाँधी ने इसे सविनय स्वीकारा है। हम आत्यान्तिक अर्थ में अहिंसक नहीं हो सकते। वह हमारी असमर्थता है। इस स्थिति में अहिंसा के व्रतों के कार्यो का एकमात्र स्रोत करुणा है। यदि वह भरसक अणुतम जीवों को भी नष्ट होने से बचा सके और इस प्रकार सतत् हिंसा से मुक्त होने का प्रयत्न करता है

तो वह अहिंसा व्रती होगा। गाँधीजी ने अपनी आत्मकथा में इस प्रकार लिखा है– सत्य का पूर्ण आभास अहिंसा के पूर्ण साक्षात्कार से ही संभव है। गाँधी ने अपनी आत्मकथा का अन्त मनसा, वाचा, एवं कर्मणा अहिंसा के वरदान हेतु ईश्वर से प्रार्थना किया है। इस प्रकार सत्य अहिंसा का व्रती ही सत्याग्रह का अधिकारी है।

16.2.1 गाँधीजी के अहिंसा की अवधारणा–

गाँधीवादी अहिंसा मुख्य रूप से आध्यात्मिक लक्ष्य तथा गौण रूप से राजनीतिक व सामाजिक लक्ष्यों से प्रेरित होने के कारण आधुनिक समाज में अपनी लोकप्रियता व स्वीकार्यता आज भी बरकरार है। एक नेता व विचारक के रूप में गाँधीजी की महानता इस बात में निहित थी कि उन्होंने अहिंसा के व्यक्तिपरक संदेश को जन आन्दोलन के सफल तकनीकी परिवर्तित कर दिया। महावीर, बुद्ध, नागसेन और शांतिदेव ने हिंसा को व्यक्तिगत क्रिया व प्रेरणा से जोड़ा है लेकिन गाँधीजी ने इसे एक सामाजिक व राजनीतिक तकनीकी में तब्दील कर दिया। उनके विचार में राजनीति में सुधार का सर्वोत्तम साधन अहिंसा ही हो सकता है।

हिंसा एक ऐसा व्यापक वर्ग है जिसकी अभिव्यक्ति, व्यक्तिगत व संस्थागत दोनों स्तरों पर होती है। बुरे विचार, बदले की भावना, ईर्ष्या, कटुता, निष्ठुरता तथा यहां तक कि अनावश्यक पदार्थों को अनावश्यक रूप से इकट्ठा करना भी व्यक्तिगत हिंसा की श्रेणी में आता है। अहिंसा दूसरों को कष्ट, हानि या चोट पहुंचाने से बचना मात्र नहीं है वरन यह सकारात्मक आत्म बलिदान व रचनात्मक दुख भोग के प्राचीन सिद्धांतों की भी अभिव्यक्ति करती है। गाँधीजी ने इसे पूर्ण निःस्वार्थ तथा वैश्विक प्रेम के रूप में रूपायित किया। अहिंसा के अंतिम लक्ष्य में तथा दुश्मनों या विरोधियों के प्रेम पूर्वक अंगीकार भी शामिल है। 1930 में गाँधीजी ने कहा –सर्पदंश से पीड़ित दुश्मन की जान बचाने के लिए वह उसके जहर को चूसना सहर्ष स्वीकार करेंगे।' अतः अहिंसा सकारात्मक करुणा व प्रेम का पर्याय है।

गाँधीजी सम्पूर्ण विश्व को परिवार मानते हुए अहिंसा को वैश्विक शांति व एकता को सुनिश्चित करने वाली एक अनिवार्य व अपरिहार्य ताकत मानते थे। गाँधीजी के अनुसार अहिंसा का सामाजिक अनुप्रयोग आध्यात्मिक तत्व में मीमांसा की स्वीकृति तथा सामाजिक सद्भाव के अनवरत उन्ननयन पर निर्भर करता है। उन्होंने अहिंसा को वैश्विक दैविक सत्ता में समाहित करते हुए कहा कि जीवन की प्रत्येक अंक पवित्र है। अहिंसा अब अपरिहार्य रूप से सत्य या ईश्वर की एकीकृत हैं। गाँधीजी प्रत्येक मानव को ईश्वर की संतान मानते थे। इसलिए किसी भी जीव को किसी भी रूप में सताने को वह इस व्यक्ति के दैवीय रूप का अपमान मानते थे।

अहिंसा के व्यवहार के लिए सत्य तथा ईश्वर की करुणा में अगाध श्रद्धा का होना नितान्त आवश्यक है। आत्मनिरीक्षण इनका एक प्रमुख तत्व है। अहिंसा के व्रतियों के लिए यह अपेक्षित है कि वह लोभ, दंभ वासना, ईर्ष्या, घृणा तथा कपट से मुक्ति का पूरेमन से प्रयत्न करें। यह निरन्तर गुणात्मक उन्नयन की ओर ले जाने का मार्ग है। प्रत्येक अहिंसक सत्याग्रहियों के लिए अहिंसा के व्रत का अनुपालन जरूरी है ताकि दूसरों के लिए यह प्रेरणा का सबब बन सके। इसलिए अहिंसा मानकों को स्वीकृति का मतलब है मूल्यों का नैतिक मूल्यांतरण। अगर प्रेम के नियम या व्रत का अनुपालन दृढ़ता पूर्वक किया जाए तो यह सम्पूर्ण समाज व सभ्यता को गुणात्मक व चारित्रिक उत्थान की ओर प्रेरित कर सकता है।

अहिंसा के व्रती अपने विरोधियों तक के जीवन को आदर व सरकार की भावना से देखें ऐसी अपेक्षा थी। हरिजन में अपने एक लेख में गाँधीजी ने लिखा– तुम सत्याग्रही नहीं हो यदि तुम अपने विरोधियों को

मरते हुए देखकर भी निष्क्रिय बने रहते हो। तुम्हें उसके जीवन की रक्षा हर कीमत पर करनी चाहिए भले ही तुम्हें इसके लिए अपनी जान की बाजी लगानी क्यों पड़े।

बोध प्रश्न–1– रिक्त स्थानों की पूर्ति करो –

सत्य के बिना जीवन में किसी भी सिद्धांत या नियम (1) ..... है। सत्य (2) .....नाम है। अहिंसा या प्रेम का जीवन में (3)..... है। सत्य और अहिंसा (4) .....है। अहिंसा के व्यवहार के लिए (5) ..... आवश्यक है। प्रत्येक अहिंसक सत्याग्रहियों के लिए ..... (6) ..... जरूरी है। तुम्हें (7) ..... चाहिए। भले ही क्यों न (8)..... पड़े।

16.3 सत्य व अहिंसा का प्रभाव–

गाँधीजी ने सत्य को मूल अर्थ में लिया। सत्य का आदर्श प्रह्लाद का आदर्श हैं सत्य आत्मा है ईश्वर है अतः अंतरात्मा के अनुसार जो सही हो उसका वाचा, कर्मणा आचरण ही सत्य आचरण है। सत्य का मानव के सम्पूर्ण जीवन में प्रभाव पड़ता है यदि मनुष्य सत्य का अनुकरण करता है तो उसे अपना उद्देश्य पूर्ण करने में सरलता न सहजता प्राप्त होती है। हां सत्य में बाधाएं अनेक हैं लेकिन ये बाधाएं जैसे ही दूर होगी मानव में स्थायित्व का भाव स्वतः ही आ जायेगा।

इसी प्रकार गाँधीजी ने अहिंसा का भी मानवीय जीवन पर गहरा प्रभाव दृष्टिगत किया है। मून के अनुसार मनसा, वाचा एवं कर्मणा किसी का अमंगल न होने देना अहिंसा है। ईंट का जवाब पत्थर के स्थान पर 'जो तूको कांटा बुवै ताहि बोई तू फूल' में विश्वास करना अहिंसा है। अहिंसा का कोई शत्रु नहीं होता। अहिंसा ही मनुष्य को जानवरों से पृथक करती है। यदि हम जानवरों जैसा व्यवहार करने लगेंगे तो हमारा अस्तित्व जानवरों जैसा ही माना जाएगा जो मानवीय जीवन पर गंभीर प्रभाव छोड़ता है।

सत्य और अहिंसा के पालना द्वारा मनुष्य अपने लक्ष्य को सामाजिक सहयोग की भावना से दूसरों को बिना कष्ट पहुंचाये पूरा करता है। यदि सत्य और अहिंसा को अपनी दृष्टि से सम्पूर्ण समाज का संचालन करना हो तो शांति, सद्भाव, भाईचारा, विकास, सहयोग, सहिष्णुता तथा सर्वधर्म समभाव की भावना स्वतः व्ययाप्त हो जायेगी। सत्य और अहिंसा मानव जीवन को खुशहाल करने, प्रगति करने तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने में पूर्ण सहयोग प्रदान करता है। इन दोनों का प्रयोग करने वाला मनुष्य कभी भी अनैतिक, अमानवीय, अराजक, तथा असंतुष्ट नहीं रह सकता है। सत्य और अहिंसा गाँधीजी के द्वारा व्यावहारिक जीवन में लाया गया महत्वपूर्ण परिवर्तन है। इसका अनुकरण सभी मानव जाति को करना चाहिए।

बोध प्रश्न–2– (1) सत्य का आचरण क्या है?

_____
_____
_____

(2) अहिंसा क्या है?

_____
_____
_____
_____

(3) 'जो तूको कांटा वुवै ताहि वोई तू फूल' का अर्थ क्या है?

_____
_____
_____
_____

(4) सत्य और अहिंसा किस प्रकार मानव जीवन पर प्रभाव डालता है?

_____
_____
_____
_____

16.4 सारांश

इस इकाई में हमने मुख्य तौर पर सत्य और अहिंसा का विस्तृत वर्णन किया है तथा मानव जीवन पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है का वर्णन किया हैं गाँधी जी की मूल परिकल्पना में अहिंसा का स्थान सर्वोपरि हैं। अहिंसा का गाँधीजी ने सूक्ष्म विश्लेषण कर उसे व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय प्ररिप्रेक्ष्य में प्रयोग किया गया है।

सत्य और अहिंसा एक दूसरे के पूरक हैं। सत्य और अहिंसा एक दूसरे का अर्थ स्पष्ट करता है। गाँधीवादी अहिंसा मुख्य रूप से आध्यात्मिक लक्ष्य तथा गौण रूप से राजनीतिक व सामाजिक लक्ष्यों से प्रेरित होने के कारण आधुनिक समाज में अपनी लोकप्रियता व स्वीकार्यता आज भी बरकरार है।

16.5 शब्दावली

सर्वधर्मसमभाव : सभी धर्मों के साथ समान भाव होना।

चारित्रिक उत्थान : चरित्र का विकास

अहिंसा के व्रती : अहिंसा का पालन करने वाले।

गाँधीवादी अहिंसा : गाँधीजी द्वारा बताया गया अहिंसा का मार्ग।

स्वीकार्यता : मान्यता

अनवरत उन्ननयन : लगातार वृद्धि, बिना रुकावट के आगे बढ़ना।

8.6 उपयोगी पुस्तकें

(1) हरिजन – 17.08.1934

(2) एम0के0 गाँधी–एन आटोबायोग्राफी या दि स्टोरी आप माई एक्सपेरीमेंट्स विथ ट्रुथ।

(3) वी0पी0 वर्मा : दि पोलिटिकल फिलोस्फी आपफ महात्मागाँधी एण्ड सर्वोदय।

(4) यंग इण्डिया : 18.12.1924

(5) सर्वोदय – एम0के0 गाँधी

(6) सक्सेना मिश्र शर्मा– समकालीन भारतीय दर्शन

बोध प्रश्नों के उत्तर –

बोध प्रश्न

(1) का पालन

(2) ईश्वर का सही

(3) महत्वपूर्ण योगदान है।

(4) एक दूसरे के पूरक

(5) सत्य तथा ईश्वर की करुणा में अगाध श्रद्धा का होना नितान्त

(6) अहिंसा के व्रत का अनुपालन

(7) इसके जीवन की रक्षा हर कीमत पर करनी चाहिए।

(8) जान की बाजी लगानी पड़े।

बोध प्रश्न–

(1)–मनसा, वाचा एवं कर्मणा आचरण ही सत्य आचरण है। समय का मानव के सम्पूर्ण जीवन में प्रभाव पड़ता है।

(2) हिंसा न करना ही अहिंसा है। गाँधीजी के अनुसार मनसा, वाचा एवं कर्मणा किसी का अमंगल न होने देना अहिंसा है।

(3) इसका अर्थ है कि यदि कोई दोस्त या दुश्मन भी तुम्हारी बुराई करे तो उसके बारे में सत्य और सही सोचना चाहिए। बुराई के कारण अपना नैतिक पतन नहीं कर सकते हैं।

(4) मानव के जीवन में सत्य ओर अहिंसा दो ऐसे मार्ग हैं जिस पर चलकर ही विकास किया जा सकता है। असत्य और हिंसा के द्वारा न तो किसी का विकास हुआ है और न होगा।

.....000.....

इकाई–17 सत्याग्रह

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 सत्याग्रह का अर्थ

17.3 सत्याग्रह की उत्पत्ति

17.4 सत्याग्रही की योग्यता

17.5 सत्याग्रह के व्रत

17.6 मुख्य व्रत

17.6.1 सत्य

17.6.2 अहिंसा

17.6.3 ब्रह्मचर्य व्रत

17.6.4 जीभ पर संयम

17.6.5 अस्तेय

17.6.6 अपरिग्रह

17.7 गौणव्रत

17.7.1 सामाजिक व धार्मिक सममानसिकता

17.7.2 जीविका श्रम

17.7.3 स्वदेशी

17.7.4 निडरता

17.7.5 विनम्रता

17.8 सारांश

17.9 शब्दावली

17.10 उपयोगी पुस्तकें

17.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

17.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको इस योग्य होना चाहिए कि आप –

- सत्याग्रह का अर्थ और उत्पत्ति को जान सकें।
- सत्याग्रही बनने के लिए आवश्यक योग्यताओं की जानकारी हो सके।
- गाँधीजी ने सत्याग्रह के सन्दर्भ में क्या विचार दिए को बता सकें।
- भगवतगीता और सत्याग्रह किस प्रकार मानवीय जीवन से प्रभावित करते हैं बता सकें।
- सत्याग्रही विचारधारा की प्रासंगिकता सबको बता सकें।

17.1 प्रस्तावना

इस इकाई का उद्देश्य सत्याग्रह का अर्थ और उत्पत्ति के बारे में जानकारी प्रदान करना है। सत्याग्रह मौलिक रूप से गाँधीजी से सम्बन्धित नहीं था उनसे पहले भी उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता, कुरान जैसे धार्मिक तथा अन्य अनेक पुस्तकों में सत्याग्रह के विचार का व्यापक उल्लेख मिलता है। इसे व्यवहार में उतारने का काम प्रहलाद, राजा हरिश्चन्द्र, सुकरात, प्लेटो, ईसा मसीह, सम्राट अशोक जैसे अनेक भारतीयों और पाश्चात्य चिंतकों ने समय–समय पर किया है। प्रहलाद शायद ऐसा पहला सत्याग्रही व्यक्ति था। जिसने अपने क्रूर पिता के अत्याचारों के खिलाफ सत्याग्रह का अभिनव प्रयोग किया। तब इसे सत्याग्रह के मूल अर्थ में नहीं समझा गया। गाँधी जी के अनुसार सत्याग्रह रूपी सिद्धांत का जन्म इसके नामकरण के पहले ही अस्तित्व में आ गया था। वास्तव में जब इसका जन्म हुआ था तो में खुद भी नहीं जानता था कि यह क्या है।

कुछ पाश्चात्य चिंतकों का विचार है कि गाँधीजी ने सत्याग्रह के विचार को, ईसा मसीह के न्यू टेस्टामेंट विशेष कर पर्वत पर के उपदेश से लिया है। कुछ अन्य लोगों का मानना है कि इस विचार को उन्होंने टालस्टाय की रचनाओं से लिया है, जबकि टालस्टाय ने खुद इसे न्यू टेस्टामेंट से लिया था। वास्तव में गाँधी जी के सत्याग्रह के विचार न तो ईसा मसीह और न ही टालस्टाय से प्रेरित है बल्कि उनकी प्रेरणा का मुख्य आधार उनके अपने वैष्णवी मत थे जिन पर उन्हें अटूट विश्वास था। देखा जाय तो सत्याग्रह भारतीय परम्पराओं से ही उपजी प्रतीत होती है।

17.2 सत्याग्रह का अर्थ

सत्याग्रह शब्द मूल रूप से संस्कृत शब्द है। यह दो शब्दों सत्य और आग्रह के मिश्रण से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है सत्य के लिए आग्रह। दूसरे शब्दों में सत्य पर टिके रहना तथा सत्य की उपलब्धि हेतु दृढ़तापूर्वक लगे रहना, जमें रहना ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह को परिभाषित करते हुए गाँधीजी ने लिखा है–

सत्य प्रेम पूर्वक आग्रह की मांग करता है और इस प्रकार यह आग्रह ताकत के एक पर्यायवाची के रूप में बदले जाते हैं। यही कारण है कि मेंने भारतीय आन्दोलन को निष्क्रिय प्रतिरोध के बजाय सत्याग्रह

कहना शुरू किया जिसका आशय ऐसी ताकत से है जिसकी बुनियाद सत्य, प्रेम व अहिंसा के मजबूत खंभों पर टिकी है।

गाँधीजी ने इंडियन ओपिनियन में सत्याग्रह को एक पवित्र उद्देश्य हेतु दृढ़ता के रूप में रेखांकित किया है। यंग इंडिया में वे इस बात की ओ संकेत करते हैं कि सत्याग्रह –'आत्म दुःखभोग के सिद्धांत' का एक नवीन रूप भर है और हिंद स्वराज में आत्मबलिदान को अधिक श्रेयस्कर कहते हैं। तथ एक आत्मबलिदानी यानी स्व दुःख भोगी अपनी गलतियों से दूसरों को कष्ट नहीं पहुंचाता है।

सत्याग्रह, जो गांधीजी का सर्वोच्च आविष्कार, खोज या कृति है जो सत्य के ऐसे अनवरत व अविराम खोज की बात करता है, जहां हिंसा, घृणा, ईर्ष्या, दंभ व द्वेष का कोई स्थान नहीं है। इस अवधारणा का मतलब निष्क्रिया, दुर्बलता, निःसहायता या स्वार्थपरायणता नहीं है। वास्तव में यह मानवीय मस्तिष्क की ऐसी सोच तथा जीवन दर्शन को इंगित करता है जिसकी बुनियाद पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति हेतु दृढ़ इच्छा तथा घृणा पर प्रेम के विजय के सिद्धान्त पर टिकी है। असीम श्रद्धा, हृदय परिवर्तन हेतु स्वैच्छिक आत्म दुःखभोग तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अहिंसक तथा न्याय पूर्ण तरीकों को धीरता तथा सक्रियता से इस्तेमाल करना सत्याग्रह के मूल में है।

सत्याग्रह का अर्थ राजनीतिक तथा आर्थिक आधिपत्य के खिलाफ मानवीय आत्मा के शक्ति की दृढ़ता भी है। आधिपत्य हमेंशा अपने झूठ व स्वार्थ के लिए सत्य को खारिज करता है। सत्याग्रह मानवीय चेतना की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति है। यह चेतना मानव के सत्य की प्राप्ति हेतु अहिंसक संघर्ष की ओर जोरदार ढंग से अभ्रिप्रेरित करती है।

सत्याग्रह लक्ष्य को प्राप्त करने का सरल व सहज मार्ग है। इस पर चलकर ही सत्य को प्राप्त किया जा सकता है। सत्याग्रह श्रद्धा, विश्वास, विवेक, प्रेम और विनम्रता की महानतम् अभिव्यक्ति है। यह अपने आप में एक महान विजय है। सत्याग्रह सत्य के अनसंधान तथा उस तक पहुंचने का अनवरत प्रयास है। यह अपना कार्य शांति, स्थिरता लेकिन तीक्ष्णतापूर्वक करता है। वास्तव में संसार में इसके समान लचीला, सौम्य व स्पष्ट कोई भी ताकत नहीं है। यह अन्याय, अनीति, दमन व शोषण के खिलाफ आत्मबल को खड़ा करता है। शाब्दिक रूप से इसका अर्थ होता है 'सत्य का दबाव' जो अपनी अभिव्यक्ति आत्मदुखभोग, श्रद्धा संकल्प, आत्मशुद्धि तथा आत्मविश्वास में साकार करता है।

सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक तथा नैतिक विकास में सत्याग्रह की महत्वपूर्ण भूमिका है। सत्याग्रह सभी लोगों के लिए उपयोगी नहीं है। इसका प्रयोग वही कर सकता है जिसमें सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को मानने तथा व्यवहार में लाने की इच्छा शक्ति हो। सत्याग्रह आत्मबल को बढ़ाकर आन्तिरिक शक्ति प्रदान करती है तथा स्थायी परिणाम का निर्धारण करती है।

प्रसिद्ध गाँधीवादी आचार्य जे0वी0 कृपलानी के शब्दों में सत्याग्रह प्रहार के अलावा भी कुछ और अधिक की मांग करता है। यह कुछ अधिक संघर्षरत लोगों के सतत् नैतिक उत्थान की बात करता है। इसका अर्थ विरोधियों को नैतिक रुप से परास्त करना भी है। एक सत्याग्रही हड़ताली की अपेक्षा कहीं अधिक बेहतर असहयोगी होता है। वास्तविक रुप में सत्याग्रह सत्य के लिए अनवरत कार्याभिमुख खोज तथा असत्य के खिलाफ अहिसंक संघर्ष है।

सत्याग्रह का अर्थ राजनीतिक में सत्य के प्रयोग से है। सत्याग्रह के अन्तर्गत मानव जाति के भाई–चारे पर जोर था। इसके अंतर्गत अस्तित्व के लिए संघर्ष तथा उसमें एक के ही बच पाने जैसे जैविक सिद्धान्तों को तिलांजलि दी गई थी। सत्याग्रह हाब्स द्वारा की गई मानव जीवन की परिभाषा 'सभी का सभी

के विरुद्ध संघर्ष' को भी नकारता है। इसमें प्रेम, परस्पर सहयोग तथा सहकार को मानव प्रगति का आधार माना गया है। यह वेदान्त के इस सिद्धान्त 'समग्र जीवन एक है' का पालन करता है अथवा ईसाईयों की मान्यता के अनुसार हम एक दूसरे से संबद्ध है। मानव जीवन तथा समाज जैविक है। अपने आप को नुकसान पहुचाँए बिना कोई अपने पड़ोसी का बुरा नहीं कर सकता। गाँधीजी कहते है ''मनुष्य को भगवान की सम्पूर्ण रचना की भलाई के बारे में दिल से सोचना चाहिए तथा उससे प्रार्थना करनी चाहिए कि वह ऐसा करने की योग्यता प्रदान करे।'' सभी प्राणियों के कल्याण के बारे में सोचने में ही व्यक्ति का कल्याण निहित है जो सिर्फ अपने अथवा अपने समुदाय के बारे में ही सोचता है वह स्वार्थी है और उसका कभी भला नहीं हो सकता।

बहादुरी, बलिदान, देशभक्ति, अनुशासन आदि जैसी कुछ अच्छाइयां पारम्परिक रुप में युद्ध से संबंध है लेकिन अब यह अप्रासंगिक है क्योंकि उसके लड़ने के लिए अब अत्यन्त विध्वंसक नए हथियार बना लिए गए है। युद्ध में सिर्फ भौतिक एवं नैतिक तबाही और बर्बादी होती है। समस्याओं का हल करने के बजाए इससे वह और पेचीदा हो जाती है। ऐतिहासिक रुप में अगर हम युद्ध के कारणों की पड़ताल करें तो पायेगें कि पिछली लड़ाई से पैदा हुए असंतुलन तथा अन्याय के कारण ही पहला विश्वयुद्ध पहले से मौजूद असंतुलन के कारण हुआ था लेकिन दूसरे विश्वयुद्ध का कारण दोनों युद्धों के बीच की अवधि में स्थापित थोपी हुई शान्ति थी। अब कोई भी विश्वयुद्ध पिछले युद्ध के बाद स्थापित अन्यायपूर्ण शांति के परिणाम स्वरुप होगा।

गाँधीजी ने सत्याग्रह का प्रयोग सर्वप्रथम द0 अफ्रिका में यह किया था। यह द0 अफ्रिका को श्वेतों का उपनिवेष बनाए रखने के समर्थकों के विरुद्ध उन्हें सूझा था। उन्होंने वहाँ पर सत्याग्रह की तकनीकों को आजमाकर उनमें महारथ हासिल की। लेकिन गाँधीजी ने इसको अपने तकनीक के रुप में कभी प्रचारित नहीं किया। ऐसा शायद उनकी विनम्रता अथवा हरेक नए विचार की उत्पत्ति प्राचीन बौद्धिक विरासत से जोड़ने की भारतीय विचारकों की मानसिकता के कारण भी हो सकता है। महान विद्वान तथा देशभक्त तिलक ने उद्गारों पर ध्यान देना चाहिए। तिलक ने भी गीता पर विद्वतापूर्ण भाष्य लिए था। वह कहते है, ''कोई भी नियम तोड़ने की सजा हमेंषा निहित है। लेकिन जब कोई नियम स्वंयमेंव अनैतिक हो और सरकारी अधिकारी उसे थोपना चाहता हो सत्य, न्याय एवं धर्म में हमारी आस्था की परीक्षा आवष्यक हो जाती है और उसके लिए अनैतिक कानून की अवज्ञा की जानी चाहिए। लेकिन सत्य एवं न्याय के प्रति आस्था एवं समर्पण इतने उच्चस्तर अथवा भावप्रवण होना चाहिए कि भक्त अथवा आस्थावान के दिमाग में कर्त्तव्यनिष्ठा के अलावा कोई और नैतिक विचार आना ही नहीं चाहिए। किसी भी बाधा के बावजूद अपने कर्त्तव्य पालन पर अडिग रहने की भावना ही सर्वोच्चता होनी चाहिए। यह गुण अध्ययन अथवा विद्वता से प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह अध्यात्मिक शक्ति है। यह उपनिषदों की शिक्षा है। यह अध्यात्मिक शक्ति हालांकि अध्ययन अथवा मनन से प्राप्त नहीं की जा सकती है बल्कि कोई प्रतिबद्ध व्यक्ति गीता के अनुसार प्रायष्चित करके इसे अभ्यास द्वारा प्राप्त कर सकता है।

बोध प्रश्न–

(1) सत्याग्रह का क्या अर्थ है?

_____

_____

_____
_____

(2) गाँधीजी ने सत्याग्रह की व्याख्या इंडियन ओपीनियन और यंग इंडिया में किस प्रकार की।

_____
_____
_____
_____

(3) सत्याग्रह के लक्ष्य को प्राप्त करने के मार्ग क्या हैं?

_____
_____
_____
_____

(4) आचार्य जे0बी0 कृपलानी ने सत्याग्रह के सन्दर्भ में क्या विचार दिये?

_____
_____
_____
_____

17.3 सत्याग्रह की उत्पत्ति

सत्याग्रह का सिद्धांत कोई नवीन खोज नहीं है। यह उतना ही पुराना हे जितना पतंजलि। गाँधीजी ने इसकी उत्पत्ति को शुद्धता के विचार से जोड़ने का जोरदार प्रयास किया। सत्याग्रह को कामधेनु बताते हुए गाँधी जी ने इसे सत्याग्रह और उसके विरोधी दोनों के लिए उपयोगी बताया। सत्याग्रह का सम्बन्ध वैदिक आर्य युग के यज्ञों से भी रहा है। 'मानव व पशु बलि' के मौलिक रूप तथा सत्याग्रह में इसके समकालीन अभिव्यक्ति के बीच (यह उपनिषदों के बौद्धिक शुद्धिकरण तथा जैनों व बौद्धों के मानवतावादी सरोकारों के तीक्ष्ण बदलावों के दौर से यह गुजरा है।)

गाँधी जी ने इस अनुपम हथियार की खोज दक्षिण अफ्रीका में नस्लीय भेदभाव के खिलाफ अपने अहिंसक संघर्ष के दौरान की। 1906 में गाँधीजी के दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों को संगठित किया तथा अन्यायपूर्ण कानूनों व सार्वजनिक व्यवहारों के खिलाफ प्रतिरोध के एक नवीन तरीके को ईजाद किया जिसे गाँधीजी ने –निष्क्रिय प्रतिरोध' का नाम दिया लेकिन समय बीतने तथा संघर्ष के तीक्ष्ण होने के साथ ही यह नाम संदेह व संशय के घेरे में आ गया तथा इसे कमजोरों के हथियार के रूप में माना जाने लगा। परिणाम स्वरूप एक ऐसे अंग्रेजी शब्द का इस्तेमाल शर्मनाक माना जाने लगा जो कि आसानी से बोधगम्य नहीं हो।

उन्होंने यह महसूस किया कि जिस आन्दोलन को उन्होंने शुरू किया था वह निष्क्रिय प्रतिरोध से भिन्न कुछ अधिक गहरे अर्थों वाला था।सो इस नवीन किस्म के प्रतिरोध के पुनर्नामांकन की महती आवश्यकता को महसूस करते हुए गाँधीजी ने अपने साप्ताहिक पत्र इंडियन ओपीनियन में एक नवीन व उपयुक्त शब्द सुझाने हेतु एक छोटे से पुरस्कार की घोषणा की। उनके एक सहयोगी मगन लाल गाँधी ने 'सदाग्रह' शब्द सुझाया जिसका अर्थ होता है पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अनवरत प्रयास। गाँधीजी ने इसे पसंद किया लेकिन साथ ही यह भी महसूस किया कि यह इनके विचारों को सम्पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं करता है कयोंकि उनकी नजरों में यह एक ऐसा सत्य बल था जिसकी अभिव्यक्ति, सत्य प्रेम व अहिंसा जेसे दिव्य गुणों से परिचालित होता था। इसलिए उन्होंने इसमें थोड़ा सा संशोधन किया और इसे सत्याग्रह नाम दिया जिसका शाब्दिक अर्थ –सत्य के लिए आग्रह' है। सत्याग्रह की उत्पत्तियों पर जोसेफ जे डाक के साथ विचार–विमर्श करते हुए गाँधीजी ने निम्न विचार व्यक्त किए उन्होंने कहा–

में याद करता हूं कि कैसे अपने स्कूल में सीखे एक गुजराती कविता की एक पंक्ति ने मुझे बेहद आकर्षित किया था। इसका भावार्थ कुछ इस प्रकार था– यदि कोई व्यक्ति आपकी जिज्ञासा शांत करता है और बदले में यदि आप भी उसकी जिज्ञासा शांत करते हैं तो इसमें उल्लेखनीय कुछ भी नहीं। असली बात तो तब है जब आप किसी की बुराई के बदल भलाई का दान करते हैं। बचपन की इस अवस्था में इस पंक्ति ने मेंरे ऊपर जबरदस्त प्रभाव डाला और मेंने इसे अपने व्यवहार में परिणित करने का भरसक प्रयत्न कियां

भगवद्गीता का आप पर पहला प्रभाव पड़ा होगा? के जवाब में कहा नहीं, हां यह जरूर है कि संस्कृत में लिखी भगवद्गीता से में पूरी तरह वाकिफ हूं, लेकिन इसकी शिक्षाओं को इस विशेष कार्य हेतु सन्दर्भ नहीं बनाया। वास्तव में न्यू टेस्टामेंट ने मुझे निष्क्रिय प्रतिरोध की उपयुक्तता तथ मूल्य के सही रूप में समझाया। जब मेंने पर्वत पर के उपदेश की इन लाइनों को पढ़ा कि बुरे आदमी का नहीं वरन बुराइ का प्रतिरोध करो। यदि कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारता है तो झट से अपना बांया गाल भी आगे कर दो तथा अपने दुश्मन को भी अपने प्रियजनों की तरह ही प्रेम करो तथा उसकी भलाई के लिए प्रार्थना करो क्योंकि वह स्वर्ग में रहने वाले तुम्हारे पिता के पुत्रों में कोई एक हो सकता है तो में आनन्द और हर्ष से अभिभूत हो गया तथा मुझे लगा कि इसने मेंरे अपने विचारों को वहां पक्का कर दिया जहां इसकी मुझे सबसे कम आशा थी। भगवद्गीता ने इस सोच को गहराई प्रदान की तथा टाल्सटाय के स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है ने इसे स्थायित्व प्रदान किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सत्याग्रह की उत्पत्ति सामाजिक शान्ति बढ़ाने तथा नैतिक उत्थान के लिए आवश्यक मानी गयी। सत्याग्रह ने आपसी समझ, शान्ति व सौहार्द्र बढ़ाने का कार्य किया है इसकी उत्पत्ति जगत में क्रांतिकारी घटना थी।

बोध प्रश्न :

1. सत्याग्रह की उत्पत्ति कहां हुई?

   _____
   _____
   _____
   _____

2. मगन लाल गाँधी ने सत्याग्रह के सन्दर्भ में क्या विचार दिए।

_____
_____
_____
_____

3. गाँधीजी गुजराती कविता से किस प्रकार प्रभावित हुए।

_____
_____
_____
_____

4. बुरे आदमी का नहीं बल्कि बुराई का प्रतिरोध करो से क्या आशय है?

_____
_____
_____
_____

17.4 सत्याग्रह की योग्यता

महात्मा गाँधी ने कहा में भारतवर्ष के प्रत्येक सत्याग्रही के लिए इसे अनिवार्य योग्यता मानता हूं सत्याग्रही की निम्न योग्यताएं हैं।

1. ईश्वर के प्रति उसके मन में जीवन्त आस्था होनी चाहिए।
2. किसी भी प्रकार के नशा से उसे मुक्त होना चाहिए।
3. स्वभाव से वह खादी बुनने वाला तथा कातने वाला हो हिन्दुस्तानी के लिए यह परम आवश्यक है।
4. समय–समय पर तय किये जाने वाले सभी अनुशासनात्मक नियमों के प्रति वह वफादार हो।
5. सत्य के प्रति उसके मन में अगाध श्रद्धा होनी चाहिए। अर्थात उसे मानवीय प्रकृति में चिन्हित भलमनसाहत के प्रति उसके मन में पूरी श्रद्धा होनी चाहिए। जिसे वह अपने प्रेम व सत्य से सराबोर कर जागृत करने की अपेक्षा रखता है।
6. जेल के नियमों को वह तन–मन से तब तक स्वीकार करें तब तक कि वह उसके आत्मसम्मान को विशेष रूप से ठेस पहुंचाने वाला न हो।

इस प्रकार सत्याग्रह का पालन वही कर सकता है जो उपरोक्त नियमों का पालन सहृदयता के साथ कर सके। सत्याग्रह की योग्यता ही उसे सफलता तक ले जाता है।

सत्याग्रह का मर्म यह है कि जिन्हें अत्याचार सहना पड़े सिर्फ वे ही सत्याग्रह करें। ऐसे मामलों की कल्पना की जा सकती है, जिसमें सहानुभूति पूर्ण कहा जा सकने वाला सत्याग्रह करना उचित हो।सत्याग्रही

की जड़ में विचार यह है कि अन्यायी का हृदय परिवर्तन किया जाए कि पीड़ित पक्ष के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग के बिना अन्यायी मन चाहा अन्याय नहीं कर सकता। दोनो ही स्थितियों में अगर लोग अपने ध्येय के लिए कष्ट सहने को तैयार न हो तो सत्याग्रह के रूप में किसी बाहरी सहायता से उनकी सच्ची मुक्ति नहीं हो सकती।

सत्याग्रह के आन्दोलन में लड़ाई का तरीका और रणनीति का चुनाव अर्थात आगे बढ़े या पीछे हटे सविनय कानून भंग करे या रचनात्मक कार्य तथा शुद्ध निःस्वार्थ मानव सेवा के द्वारा अहिंक बल संगठित करें आदि बातों का निर्णय परिस्थिति की विशेष आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है। सत्याग्रही के लिए जो भी योजना बना दी जाए उस पर उसे ठंडे निश्चय के साथ अमल करना चाहिए, न उसे उत्तेजित होना चाहिए और न निराश होना चाहिए।

17.5 सत्याग्रह के व्रत :

सत्याग्रह की सफलता तथा सत्याग्रही को विषम परिस्थितियों में कार्य हेतु शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक रूप से तैयार करने के लिए गाँधीजी ने कुछ विशेष व्रत निर्धारित किये हैं जो एकादश व्रत के नाम से प्रसिद्ध है, सत्याग्रहियों को उन विशेष व्रतों को अपने निजी तथा सार्वजनिक जीवन में पूरी तरह अपनाने की अपेक्षा रची गई। इस व्रतों को मुख्य तथा गौण दो वर्गों में बांटा गया है।

17.6 मुख्य व्रत

17.6.1 सत्य

सभी वतों में सत्य का व्रत सबसे पहले आता है, सत्य के व्रत के अनुपालन को सामान्यतः सत्य बोलने मात्र तक सीमित मान लिया जाता है। लेकिन गाँधीजी के अनुसार इसका वास्तविक अर्थ है विचार, तथाकार्य में सात्विकता सत्यता का अनुपालन। इसलिए सत्य के अनुपालन के दौरान, दुराव, छिपाव,चालाकी, धोखेबाजी तथा कपट को पूर्णतः परे रखा जाता है। सत्य का अनुपालन अनवरत प्रयास तथाजीवन के अन्य निहित स्वार्थों के प्रति उदासी के भाव के साथ किया जाना चाहिए।

इसका अर्थ है सतत् तथा पूर्ण अनाशक्ति। गाँधी जी के अनुसार सत्य के दर्शन का अनुभव अनाशक्ति से ही संभव है। क्रोध, लोभ, डर, दंभ आदि ऐसी बुराई है जो साधनों को भटकाने का कार्य करती है।

गाँधीजी ने सत्य को मूल अर्थ में लिया है। सत्य का आदर्श प्रहलाद का आदर्श है, ईश्वर है अतः अन्तरात्मा के अनुसार जो सही हो उसका मनसा, वाचा एवं कर्मणा आचरण ही सत्य आचरण है। यही सत्याग्रह है। सत्याग्रह निष्क्रिय विरोध नहीं है। उन्होंने इसका प्रारम्भ 1908 में दक्षिण अफ्रिका में किया था। सत्याग्रह शारीरिक बल नहीं है अपितु आत्मबल है आत्मा में प्रेम की लौ जलती है। सत्याग्रही कभी भी जिसका विरोध करता है उसका अहित नहीं चाहता, राम सत्याग्रह–आत्मबल के प्रतीक है। रावण की अनन्त भौतिक शक्ति आत्मबली राम के सामने कुछ भी नहीं है। सत्याग्रह कामधेनु है। सत्याग्रह से सत्याग्रही एवं विरोधी दोनों का लाभ होता है। हरिष्चन्द्र, मीराबाई, डेनियल, एवं सुकरात सत्याग्रही थे। सत्याग्रही अपने सत्य पर अड़ जाता है, 'हार' शब्द उसके शब्दकोष में नहीं है। वह किसी अन्य की प्रतिक्षा नहीं करता, वह निर्भय होता है। सत्याग्रह मात्र सरकार के विरुद्ध ही नहीं होता, वह किसी भी अत्याचार या अन्याय के विरोध में ही सकता है चाहे वह व्यक्तिगत द्वारा ही, समाज द्वारा हो सरकार द्वारा। गाँधी लिखते है कि वह

व्यक्ति द्वारा हो, समाज द्वारा हो या सरकार द्वारा। गाँधी लिखते है कि थोरो ने अपने ही समाज का जो दास व्यापार में संलग्न था, विरोध किया। इसी प्रकार महान लूथर ने ही अपने ही लोगों के विरुद्ध सत्याग्रह के बल पर जर्मनी को स्वतंत्र किया। गैलीलियों सत्याग्रही था। उसने समाज का विरोध कर, मृत्यु को स्वीकारना अच्छा समझा, किन्तु सत्य से प्रतिमुख नहीं हुआ और इस प्रकार खगोल विज्ञान को उसी अक्षुण्ण देन पृथ्वी गोल है जो सूर्य को चारो ओर चक्कर लगाती है सत्याग्रही का प्रतीक है।

17.6.2 अहिंसा

गाँधी जी कहते हैं मेंरी राय में अहिंसा केवल व्यक्तिगत सद्‌गुण नहीं है। वह एक सामाजिक सद्‌गुण भी है जिसका विकास अन्य सद्‌गुणों की भांति किया जाना चाहिए। अवश्य ही समाज का नियमन ज्यादातर आपस के व्यवहार में अहिंसा के प्रकट होने से होता है। मेंरा अनुरोध इतना ही है कि इसका राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर अधिक विस्तार किया जाए।

अहिंसा का शाब्दिक अर्थ हिंसा का परित्याग है। किसी जीवित प्राणी के प्राण नहीं लेने ही काफी नहीं है। इस व्रत के अनुपालक उन लोगों को भी शारीरिक या मानसिक नुकसान पहुंचाते हैं या पहुंचाने की चेष्टा नहीं करते हैं। जो उनके विचार में अन्यायी व अत्याचारी हैं। सो एक अहिंसा व्रती से इस बात की अपेक्षा की जाती है कि वह अपने धुरविरोधियों पर भी क्रोध न करें वरन् उसे प्रेम करें। अन्याय व अत्याचार का विरोध करना अहिंसा व्रतियों का धर्म है फिर वह अन्याय माता–पिता का हो, सरकार का हो या किसी और का हो लेकिन अन्यायियों या अत्याचारियों को चोट पहुंचाने की किसी की कार्यवाही अहिंसा में पूर्णतः निषेध हैं अहिंसा व सत्यव्रत के साधक अत्याचारियों पर प्रेम से विजय पाने की कोशिश करते हैं। वे शोषकों की इच्छा को ढोने के बजाय सजा भोगना पसंद करते हैं तथा उनकी अवज्ञा तब तक जारी रहती है जब तक शोषक खुद परास्त नहीं हो जाते।

मात्र हिंसा न करना ही हिंसा नहीं है। इसका गाँधी ने अत्यन्त व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है। मनसा, वाचा, कर्मणा किसी का अमंगल न होने देना अहिंसा है। ईट का जवाब पत्थर के स्थान पर 'जो तू को काँटा बुवै ताहि बोई तू फुल' में विश्वास करना अहिंसा है। अहिंसक का कोई शत्रु नहीं होता। गाँधी के अनुसार अहिंसा की साधना के द्वारा संसार अहिंसा के व्रती के पैरो में नतमस्तक हो जाता है। सचमुच गाँधीजी अहिंसा को सत्य का पयार्य मानते है। उन्होंने सत्य एवं अहिंसा की अभिन्नता पर बार–बार बल दिया; वे दोनो इस प्रकार गुथे है कि व्यवहारतः दोनों को पृथक कर पाना असंभव है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू है। कौन कह सकता है कि सीधा है और कौन उल्टा? कभी–कभी गाँधी के सत्य एवं साध्य अन्त में एक ही हो जाते है किन्तु स्वयं ईश्वर अत्यन्त प्रेम है। गाँधी ने अहिंसा को प्रेम माना है। अहिंसा मात्र निषेधात्मक अमंगलताहीनता ही नहीं है बल्कि प्रेम की विधायक स्थिति है।

17.6.3 ब्रह्मचर्य व्रत

उपर्युक्त दोनों व्रतों का अनुपालन तब तक संभव नहीं है जब तक ब्रह्मचर्य व्रत पालन नहीं किया जाए। इस व्रत के लिए सिर्फ यही काफी नहीं है कि कोई किसी औरत को कामुक नजरों से नहीं देखें वरन् उसे अननी पाशविक इच्छाओं को इस तरह से काबू में रखना चाहिए कि वह अपने विचार या कल्पना में भी इन इच्छाओं के वसीभूत नहीं हो पाए। यदि व्यक्ति शादी शुदा है तो उसे अपने पत्नी के प्रति विषयासक्त नहीं

रहना चाहिए। वरन् इसके बजाय उसे अपनी पत्नी को जीवन पर्यन्त सखा मानना चाहिए तथा उसके साथ पूर्णतः संबंध स्थापित करना चाहिए।

सचमुच कामेंच्छा पर अधिकार है। राष्ट्र सेवी अथवा धर्मव्रती के लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य है, चाहे वह विवाहित हो अथवा अविवाहित। गॉधी के अनुसार विवाह से एक पुरुष एवं एक स्त्री मात्र जीवन साथी बनते है– इस जीवन में एवं आने वाले जीवनों में भी। विवाह का आदर्श मांसल प्रेम एवं विषय वासन की तृप्ति नहीं है। अपितु धर्म साधन हेतु सन्तानोत्पत्ति। कामेंच्छा मात्र पुत्रषैण का साधन है गाँधी हिन्दूषास्त्र की इस उक्तियों में अक्षरषः विश्वास करते है गाँधी ने तो यहाँ तक लिख है कि सत्य एवं अहिंसा का व्रत बिना ब्रह्मचर्य के संभव नहीं है।

17.6.4 जीभ पर संयम (अस्वाद)

जीभ पर संयम रखे बिना उपर्युक्त वर्णित व्रतों पर खरा उतरना संभव नहीं है यह व्रत विशेषकर ब्रह्मचर्य को साधने का सबसे पहला मंत्र है। यौन पिपासा भी निश्चित रूप से स्वाद से इस तरह जुड़ी हुई है कि बिना इस पर प्रभावी नियंत्रण के पाशविक इच्छाओं पर नियंत्रण संभव नहीं हैं सो एक ब्रह्मचर्य व्रत के साधक को भोजन इस विचार से करना चाहिए कि वह इसे स्वाद के लिए नहीं वरन शरीर मस्तिष्क व आत्मा को पूर्णतः स्वस्थ रखने के लिए खाता है।

17.6.5 अस्तेय

किसी दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति उसकी अनुमति या जानकारी के बिना लेना या यह सोच रखना कि यह बेनामी सम्पत्ति है, निश्चित रूप से चोरी है। लेकिन गाँधीजी के अनुसार चोरी में बिना वास्तविक जरूरत के दूसरों से कुछ ग्रहण करना या तत्काल जरूरत से कहीं अधिकमात्रा में किसी सामान को प्राप्त करना या फिर तय समय सीमा से अधिक उसका उपभोग करना इच्छाओं में बेलगाम गुणोत्तर वृद्धि तथा भविष्य हेतु संचय की असीमित ख्वाहिश जबकि किसी और को इसकी तत्काल जरूरत है। वे सब शामिल हैं। उनकें अनुसार अपनी वैध जरूरत से अधिक सम्पत्ति रखना या उसकी चाह करना चोरी है।

गाँधीजी के अनुसार प्रकृति हमारी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है। सिवाय लालच को छोड़कर। इसका तात्पर्य है कि यदि जरूरत भर की चीजों को लिया जाए तो सभी को सब कुछ मिल सकता है समस्या तब होती है जब व्यक्ति लालच के चक्कर में भण्डारण करने लगता है तो इससे दूसरों को वह वस्तु नहीं मिल पाती जिसकी उसे जरूरत है।

17.6.6 अपरिग्रह

सिर्फ यही काफी नहीं है कि संचय अधिक नहीं किया जाए वरन यह भी आवश्यक है कि अपनी शारीरिक जरूरतों के लिए अत्यंत जरूरी सामानों के अलावा कुछ और नहीं रखा जाए। सो यदि कोई कुर्सी के बिना कार्य करता है तो उसे ऐसा अवश्य करना चाहिए। अतः इस व्रत के अनुपालक अपने जीवन को निरंतर सरलीकृत करेंगे।

अपरिग्रह का अस्तेय के साथ चोली दामन का सम्बन्ध है। कोई चीज वास्तव में चुराई न गई हो तो भी अगर आवश्यकता के बिना उसका संग्रह करते हैं तो वह चोरी का माल समझा जाना चाहिए। परिग्रह का अर्थ है भविष्य के लिए संग्रह करना। सत्य शोधक, प्रेम धर्म का पालन करने वाले कल के लिए कोई चीज

संग्रह करके नहीं रख सकता। ईश्वर परिग्रह नहीं करता। वह जिस समय कितनी चीज की जरूरत है उससे अधिक कभी उत्पन्न नहीं करता।

17.7 गौण व्रत –

17.7.1 सामाजिक व धार्मिक सम मानसिकता (सर्व धर्म समभाव)

गाँधीजी के अनुसार सत्याग्रही को सामाजिक, धार्मिक तथा लैंगिक समानता में पूर्ण विश्वास होनाचाहिए। उसे जाति, रंग, नस्ल, लिंग, व्यवसाय, धर्म, जन्मस्थान तथा वास–स्थान से इतर सभी लोगों के प्रति सम मानसिकता की भावना का विकास करना चाहिए इसके साथ ही उसे सभी धर्मों के प्रति सम–आधार भाव रखना चाहिए। उसे छुआ–छूत सहित समाज की सभी विद्रूपताओं तथा असंगतियों के उन्मूलन का प्रयास करना चाहिए। उसे सांप्रदायिकता समरसता कायम करते हुए समाज के दबे कुचले तबकों के निरंतर उत्थान में अपने आपको समर्पित कर देना चाहिए।

17.7.2 जीविका श्रम (ब्रेड लेबर)

जीविका श्रम के व्रत से आशय है कि प्रत्येक व्यक्ति विशेषकर एक सत्याग्रही को अपनी जीविका पोषण अपने हाथों से उपार्जित श्रम से करनी चाहिए। क्योंकि प्रत्येक आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में शारीरिक श्रम की पहली भूमिका होती है। जीविका श्रम उन लोगों के लिए सच्चा आशीर्वाद है जो अहिंसा का पालन करते हैं। सत्य की पूजा करते हैं तथा ब्रह्मचर्य को अपने जीवन का सहज स्वाभाविक धर्म मानते हैं। यह आज्ञा पालन आत्म सम्मान तथा आत्म दृढ़ता, दूसरों के साथ एकत्व की भावना, सहयोग व व्यवस्था, ऊर्जा साहस, समरसता तथा भौतिक मूल्यों पर दृढ़ रहने जैसी आदतों में निर्णायक भूमिका अदा करता है। गाँधीजी ने जीविकोपार्जन हेतु चरखे को एकमात्र वैश्विक साधन बताया लेकिन उन्होंने कृषि को भी हमेंशा आदर्श व सम्मान के भाव से देखा। कताई के अतिरिक्त गाँधीजी ने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना सफाई कर्मी खुद होना चाहिए।

उन्होने महसूस किया कि इस समय समाज में निश्चित रूप से कुछ ऐसी जगह मौजूद है जहां सफाई कार्य में संलग्न लोगों को समाज का बहिस्कृत अंग बनने पर मजबूर किया जाता है। सो प्रत्येक को एक सफाई कर्मी के रूप में अपनी रोटी कमानी चाहिए। इस प्रकार यदि सफाई–कर्म को सही रूप में किया जाय तथा इस पर बुद्धिमत्ता पूर्ण विचार किया जाए तो यह मानवीय एकता की वाहक बन सकती है।

17.7.3 स्वदेशी

गाँधी जी का स्वदेशी प्रेम भारत की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक गतिविधि का मूल था। उन्होंने अपने व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक प्रयास द्वारा अधिकाधिक स्वदेशी वस्तुओं का उत्पादन तथा प्रयोग करने का प्रयास किया। इनका मानना है था इसके द्वारा न केवल लोगों को रोजगार प्राप्त होगा बल्कि सभी सम्पन्न होंगे। उद्योग धन्धे विकसित होंगे तथा स्वावलम्बन को बढ़ावा मिलेगा। स्वदेशी एक विचार है। उनका मानना था कि यदि हम एक एक रूपया बचाते हैं तो भारत को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में प्रयास करते हैं। स्वदेशी के द्वारा श्रम को भी सुरक्षित, सुविधापूर्ण तथा लाभकारी बनाने के लिए गाँधी जी स्वदेशी पर सर्वाधिक बल दिये।

स्वदेशी का उपासक अपने निकट के पड़ोसियों की सेवा को प्रथम कर्तव्य मानकर अपने को समर्पित कर देगा इसमें बाकी के लोगों के हितों को छोड़ने या कुर्बान करने की भी नौबत आ सकती है।

इन वस्तुओं को उपयोग करना जिसके निर्माता के प्रति यह भाव हो कि वह संभवतः धोखा दे रहा है, सत्य के सरोकारों के विपरीत है। जो सत्य के व्रती मेंनचेस्टर, जर्मनी या फिर अपने खुद के देश के मीलों जहां कि कपट विहीनता के बारे में वे सुनिश्चित नहीं हो में वस्तुओं का प्रयोग किसी प्रकार से नहीं करेंगे।

स्वदेशी व्रत का अनुपालन करने के लिए यह जरूरी है कि वह सादे, सरल तथा फैशन विहीन वस्तुओं का उपयोग करें। उसके कपड़े साधारण ढंग से निर्मित व सादे हों तथा उसमें फैशनेबल बटनों, विदेशी कटावों का भी पूर्णतया निषेध हो। स्वदेशी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होगी। स्वदेशी का पालन करते हुए मृत्यु भी हो जाए तो अच्छा है, परदेशी तो भयानक है ही।

'स्वधर्मो निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः'

स्वदेशी का व्रती ऐसी किसी वस्तु का प्रयोग न करे जिसके निर्माण में ऊपर के व्रतों का उल्लघंन होता हो। इस प्रकार स्वदेशी भावना का व्यक्ति मेंनेचेस्टर जर्मनी अथवा भारत में भी मिल की बनी वस्तुओं का प्रयोग नहीं कर सकता क्योंकि वह निष्चित रुप से नहीं जाना जा सकता कि मिलों में अस्तेय के व्रत का उल्लघंन नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त मिलों में मजदूरों का शोषण तो होता ही है, मिल की मषीनों के निर्माण में उनके जीवन के साथ खेल खेला जाता है। यही नहीं, अत्याधिक गर्मी से अन्य जीवों की भी हत्या होती है। गंभीर चिंतन से मिलों में ऊपर के कई व्रतों का उल्लघंन होता है। अप्राकृतिक ढंग से शरीर को सुन्दर बनाने से ब्रह्मचर्य में भी बाधा होती है। स्वदेशी भावना का विकास कई स्तरों पर हुआ है। आगे चलकर स्वदेशी खादी–हाथ का कटा–बुना कपड़ा हो गया। खादी चरखा है क्योंकि बिना चर्खे क खादी का निर्माण हो नहीं सकता और भी आगे चलकर स्वदेशी स्वराज का पयार्य हो गया। स्वदेशी भावना के पीछे 'स्वयमदासाः तपस्विंन' का मूल विचार है।

गांधी जी का स्वदेशी प्रेम भारत की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक गतिविधि का मूल था। उन्होंने अपने व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक प्रयास द्वारा अधिकाधिक स्वदेशी वस्तुओं का उत्पादन तथा प्रयोग करने का प्रयास किया। इनका मानना था इसके द्वारा न केवल लोगों को रोजगार प्राप्त होगा बल्कि सभी सम्पन्न होंगे उद्योग–धन्धे विकसित होंगे तथा स्वावलंबन को बढ़ावा मिलेगा। स्वदेशी एक विचार है उनका मानना था कि यदि हम एक एक रुपया बचाते हैं तो भारत को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में प्रयास करते हैं। स्वदेशी के द्वारा श्रम को भी सुरक्षित, सुविधापूर्ण तथा लाभकारी बनाने के लिए गाँधी जी स्वदेशी पर सर्वाधिक बल दिये।

17.7.4 निडरता

सत्य और अहिंसा या प्रेम सत्याग्रह के प्रमुख अस्त्र हैं तथा इसके लिए अपेक्षित है पूर्ण निडरता या डरपोक यानी डरने वाला सत्य का अन्वेषण नहीं कर सकता है। सो सत्याग्रहियों को राजा, प्रजा, जाति, परिवार, चोर, डकैत, भयानक, जानवरों तथा मृत्यु तक के भय से अपने आप को आजाद करने की जरूरत है। साहसी बनने तथा अपने आप को बलिदान तथा पीड़ा–भोग हेतु तत्पर रहने के लिए भी निडरता एक आवश्यक शर्त है क्योंकि एक अहिंसक संघर्ष कर्ता को उनकी जरूरत हर वक्त होती है। सभी प्रकार से निडर को बिना पूर्णतः त्यागे अहिंसा के व्रत के मूल रूपेण पालन करना संभव नहीं है।

17.7.5 विनम्रता (विनयशीलता)

सत्याग्रह में विनम्रता का महत्वपूर्ण स्थान है। अखण्डता, अहंकारिता, आत्म महत्व, क्रोध तथा दंभ –सारे सत्य के साधनों के लिए बुराई के प्रतीक हैं। अनाशक्ति, निस्कपटता तथा मन की प्रशांति,

पूर्वाग्रहमुक्त तथा कार्य करने में कर्तापन की भावना का अभाव, सौम्यता, उत्कृष्टता, क्षमाशीलता तथा धरिताएं ये सब सत्य व अहिंसा के साधनों के वास्तविक गुण हैं। इन सब गुणों को मिला दिया जाए तो उसे विनयशीलता कहा जाता है। इसलिए गाँधीजी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं 'सत्यान्वेषण के सहायक तत्व जितने सरल हैं उतने कठिन भी हैं ये किसी अक्खड़ व्यक्ति के लिए बिलकुल असंभव, लेकिन एक निर्दोष बच्चे को बिलकुल संभव जान पड़ सकता है। सत्य के साधकों को धूल से भी अधिक विनम्र होना चाहिए।

बोध प्रश्न –

1– सत्याग्रही के मन में क्या होनी चाहिए?

———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————

2– हिन्दुस्तानी के लिए परम् आवश्यक क्या है?

———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————

3– सत्याग्रही की दो प्रमुख योग्यताएं बताइए।

———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————

17.8 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत हमने सत्याग्रह, इसका अर्थ तथा उत्पत्ति के बारे में गहनता से अध्ययन किया। सर्वप्रथम हमने सत्याग्रह की परिभाषा इसका अर्थ के साथ–साथ इमें शामिल तत्वों के बारे में विवेचना किया। सत्याग्रह के अनिवार्य तत्वों में सत्य, अहिंसा, ईश्वर में श्रद्धा, भाई चारा, नैतिक मूल्यों की सर्वाच्चता तथा साधनों की सुचिता।

तत्पश्चात हमने सत्याग्रह की उत्पत्ति तथा उसका गीता से तुलनात्मक अध्ययन किया। सत्याग्रही की आवश्यक योग्यता के बारे में गहनता से विवेचन किया। सत्याग्रह सत्य को सर्वश्रेष्ठ मानकर उस पर चलने की सीख देता है जो समाज के सभी लोगों के लिए लाभदायक है।

17.9 शब्दावली

तत्पश्चात – एक के बाद दूसरे का वर्णन करना।

आत्मविश्वास– आत्मा की बातों पर विश्वास करना।

पाश्चात्यवासियों पर विचार– पश्चिमी देशों के विचार का वर्णन।

अनुपम हथियार– इसके समान कोई दूसरा हथियार नहीं।

बुराई का प्रतिरोध– बुराई को रोकना/विरोध करना।

आधार : बुनियाद, मूल।

कार्यात्मक : सकारात्मक, उपयोगी, समाज के एकीकरण के लिए अनावश्यक।

अनवरत प्रयास : लगातार प्रयास करना।

जीविका पोषण : जीवन जीने के लिए रोटी की आवश्यकता।

स्वदेशी : अपने देश का, देश में बनने वाला।

प्रत्यक्ष कार्यवाही : जो आंखों के सामने किया गया कार्य हो।

17.10 उपयोगी पुस्तकें

1. गौरीकांत ठाकुर– महात्मागाँधी फिलासफी आफ सत्याग्रह किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी।
2. महत्मागाँधी – सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका, प्रथम संस्करण, एस. गणेशन, मद्रास।
3. जे.बी. कृपलानी– गांधियन टर्निनलाजी
4. यंग इण्डिया
5. सम्पूर्ण गाँधी वाड्0मय खण्ड –XIII
6. हरिजन
7. अनिल दत्त मिश्र– गांधी एक अध्ययन
8. एम.के. गाँधी– आटोबायोग्राफी

17.11 बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न खण्ड–1

1. सत्याग्रह शब्द मूल रूप से संस्कृत से बना है। यह दो शब्दों सत्य और आग्रह के मिश्रण से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है सत्य के लिए आग्रह।
2. गाँधी जी ने इंडियन ओपीनियन में सत्याग्रह को एक पवित्र उद्देश्य हेतु दृढ़ता के रूप में रेखांकित किया है। यंग इंडिया में वे इस बात की ओर संकेत करते हैं कि सत्याग्रह –आत्म दुःखभोग के सिद्धांत' का एक नवीन रूप भर है।
3. सत्याग्रह लक्ष्य को प्राप्त करने का सरल व सहज मार्ग है इस पर चलकर ही सत्य को प्राप्त किया जा सकता है। सत्याग्रह श्रद्धा, विश्वास, विवेक प्रेम और विनम्रता की महानतम् अभिव्यक्ति है।

4. आचार्य जे.बी. कृपलानी के शब्दों में सत्याग्रह प्रहास के अलावा भी कुछ और अधिक की मांग करता है। यह कुछ अधिक सघर्षरत लोगों के सतत नैतिक उत्थान की बात करता है।

बोध प्रश्न खण्ड–2

1. सत्याग्रह की खोज गाँधीजी ने अनुपम हथियार के रूप में दक्षिण अफ्रीका में नस्लीय भेदभाव के खिलाफ अपने अहिंसक संघर्ष के दौरान की।
2. मगन लाल गाँधी जो गाँधीजी के सहयोगी थे ने सत्याग्रह के स्थान पर सदाग्रह शब्द सुझाया था जिसका अर्थ होता है पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अनवरत प्रयास।
3. गाँधीजी गुजराती कविता से प्रभावित होते हुए कहा–यदि कोई व्यक्ति आपकी पिपाशा शांत करता है और बदले में आप भी उसकी पिपाशा शान्त करते हैं तो इसमें उल्लेखनीय कुछ भी नहीं।
4. गाँधी जी का मानना था कि यदि बुराई का प्रतिरोध करो तो बुरे व्यक्ति ही नहीं मिलेंगे इससे बुराई व्याप्त नहीं होगी। इसी प्रकार इनका कहना था कि मरीज को न समाप्त करके मर्ज को समाप्त करना ज्यादा हितकारी है।

बोध प्रश्न खण्ड–3

1. सत्याग्रही के मन में ईश्वर के प्रति जीवन्त आस्था होनी चाहिए।
2. हिन्दुस्तानी के लिए परम् आवश्यक खादी बुनने वाला तथा कातने वाला होना चाहिए।
3. (i) किसी भी प्रकार के नशा से उसे मुक्त होना चाहिए।

   (ii) सत्य के प्रति मन में अगाध श्रद्धा होनी चाहिए।

.....0000.....

इकाई–18 सर्वोदय का अर्थ एवं उत्पत्ति

ईकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 अर्थ एवं उत्पत्ति

18.2.1 सर्वोदय के स्रोत

18.2.2 रस्किन की अन टू द लास्ट

18.2.3 भगवद्गीता

18.2.4 ईश्वस्योपनिषद

18.2.5 बुद्धवाद

18.2.6 जैनवाद

18.3 सारांश

18.4 शब्दावली

18.5 उपयोगी पुस्तकें

18.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.0 उद्देश्य –

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि सर्वोदय का अर्थ एवं उत्पत्ति क्या है तथा इसका स्रोत क्या है? समाज के सभी वर्गों का उदय करना सर्वोदय का मूल आधार है। आज सर्वोदय मात्र एक विचार का स्वप्नलोकीन धारणा का प्रतिनिधित्व नहीं करता है बल्कि मानवीय मस्तिष्क को मानवीय समाज की पुनर्संरचना के लिए पुनर्भिमुख करने का प्रयास करता है।

विश्व समय–सयम पर विभिन्न सामाजिक–आर्थिक विचार धाराओं पूंजीवादी, समाजवादी और साम्यवादी के प्रचार, प्रयोग और क्रियान्वयन का साक्षी रहा है। लेकिन समस्त दृष्टिकोणों से सर्वोदय निःसन्देह गुणी प्रारूपों से बहुत अधिक श्रेष्ठ है। यह हमारे सामने एक राष्ट्र के संतुलित और एकीकृत विकास के सामने रखता है जिसमें धनी और निर्धन, विशेषाधिकार सम्पन्न और विशेषाधिकारहीन शासक और शासितों के बीच कोई अंतर नहीं होता। सर्वोदय में हठधर्मिता का कोई स्थान नहीं होता है।

18.1 प्रस्तावना

इस इकाई का उद्देश्य सर्वोदय के अर्थ, उत्पत्ति तथा स्रोत के बारे में विस्तृत चर्चा करना है। इसके विभिन्न पक्षों का अवलोकन कर हम इससे प्राप्त होने वाले लाभों का भी ज्ञान प्राप्त करते हैं। लियो टालस्टाय, थोरो, भगवद्गीता, जैनवाद तथा बुद्धवाद में सर्वोदय का हम स्पष्ट व्याख्या देखते हैं। इन सबक मूल एक है बस कहने का तरीका अलग–अलग है। सभी इस बात पर बल देते हैं कि समाज के सभी वर्गों का सभी प्रकार से उदय हो इसमें किसी को भी कोई भेदभाव नहीं करना चाहिए।

18.2 अर्थ एवं उत्पत्ति

सर्वोदय की उत्पत्ति संस्कृत से हुई जो 'सर्व' और 'उदय' से मिलकर बना है। सर्वोदय का उत्पत्ति मूलक अर्थ सभी का विकास हैं। इसमें सभी जीवित प्राणी शामिल हैं। अन्य शब्दों में सर्वोदय का अर्थ सभी का जनकल्याण है। यह शब्द पहली बार गुजराती में अनुवाद के लिए शीर्षक के रूप में जान रस्किन की पुस्तक अन टू द लास्ट में प्रकट हुआ। सर्वोदय नौ आलेखों की श्रृंखला का शीर्षक था जिसे गाँधीजी ने लिखा और जिस 1908 में दक्षिण अफ्रीका की साप्ताहिक इंडियन ओपीनियन में गुजराती में प्रकाशित किया।

यह बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक सभी को शामिल करता है। उपभोक्तावाद के विपरीत मत–एक और सभी की भलाई, ऊपर और नीचे, मजबूत एवं कमजोर तथा बुद्धिमान एवं मूर्ख सभी के लिए लागू होता है। अहस्तक्षेप नीति के विपरीत, जो सर्वोत्तम ही जीवित रहता है।' सर्वोदय सभी के अस्तित्व और विकास में विश्वास करता है। बिनोवा भावे के लिए 'सर्वोदय का विचार' गीता ने उपदेश के अनुसार एक व्यक्ति को सभी की भलाई के लिए स्वयं में समाविस्ट होना।

सब के जनकल्याण के संकेत के अतिरिक्त सर्वोदय दो और अर्थों को बताता है पहला– वैश्विक जनकल्याण और दूसरा सभी का एकीकृत विकास। अस्तक्षेप का दर्शन कुछ के द्वारा बहुतों के शोषण पर आधारित है। उपयोगितावादी विचारधारा अल्पसंख्यक की पूरी तरह उपेक्षा करते हुए बहुसंख्यक समर्थन करता है। सर्वोदय इन सिद्धांतों को अस्वीकार करता है जा कुछ के आनन्द के लिए है और वर्ग, वंश, रंग, प्रजाति क्षेत्र और धर्म से परे सभी के जन कल्याण की वकालत करता है। सर्वोदय का दर्शन मानवीय समाज की पुनर्संरचना का प्रयास करता है, या मानवीय मस्तिष्क को पुनराभिमुख करता है। इसका अर्थ जनकल्याण एवं सौभाग्य सबके लिए है। सभी हितों की टकराहट के बिना एक साथ विकास करें।

सर्वोदय के अर्थ की व्याख्या करते हुए दादा धर्माधिकारी ने कहा कि सर्वोदय एक बृहद संकेत वाला शब्द है और यह न केवल बहुतों या अधिकांश बल्कि सबों को आत्मसात करता है।

सर्वोदय एक दर्शन है जो मानवीय मस्तिष्क और आत्मा की अपूर्णता के विरुद्ध रोक लगाता है जो मानवीय मस्तिष्क और आत्मा की अपूर्णता के विरुद्ध रोक लगाता है। सर्वोदय शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में बृहद तौर पर दृष्टिकोण है– पहला यह सूक्ष्म रूप है, जिसका सामान्य अर्थ है एक और सब का उदय, दूसरा इसका बृहद रूप सभी के उदय का संकेत देता है। वैश्विक जन कल्याण सब के सर्वांगीण विकास का संकेत देता है। लेकिन यह कई अन्य अर्थों का भी संकेत देता है। इसके नकारात्मक अर्थ में, यह कभी भी किसी एक व्यक्ति को शेष मानव जाति से अलग आनन्द के लिए नहीं छोड़ता है। एक सकारात्मक अर्थ यह व्यक्ति के विकास के सभी संकल्पों को प्रोन्नत करता है। बिनोवा भावे के अनुसार इसका अर्थ सब पीड़ाओं को दूर, सभी को प्रसन्न करना ही नहीं है बल्कि समानता पर आधारित एक विश्व स्थिति को लाना है। गाँधीजी के लिए सर्वोदय एक बृहद अर्थों में स्व–त्याग एवं स्वार्थहीन सेवा सहित एक का सभी से

समाविष्ट होना है। इसका उद्देश्य न केवल न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति है बल्कि सभी व्यक्तियों के नैतिक आध्यात्मिक आशय का विकास करना है।

आज के युग की जो अकांक्षा है उससे सर्वोदय के लिए अनुकूल वातावरण पैदा हुआ है। उस अकांक्षा की पूर्ति के लिए सर्वोदय के सिद्धान्त और नीति के सिवाय दूसरा कोई चारा नहीं है। सर्वोदय का दर्शन समग्र जीवन के लिए होना चाहिए, निरपेक्ष होना चाहिए और सार्वभौम होना चाहिए। उसमें देश–काल की मर्यादाएं न होनी चाहिए। लोग कालानुक्रम में और इतिहास के सिद्धान्त में विश्वास करते है। यहाँ कालक्रम और इतिहास की बात नहीं कही जा रही है। कालातीत सिद्धान्त के माने यह है कि सिद्धान्त के विनियोग बदलते रहेगे; उसे लागू करने की पद्धति में 'परिवर्तन होता रहेगा लेकिन सिद्धान्त नहीं बदलेगा। बात यह है कि अहिंसा का पुजारी उपयोगितावाद का समर्थन नहीं कर सकता। वह तो सर्वभूतहितवाद यानी सबके अधिकतम् लाभ के लिए ही प्रयत्न करेगा और इस आदर्श की प्राप्ति में मर जायेगा। इस प्रकार वह इसलिए मरना चाहेगा कि दूसरे जी सके। दूसरों के साथ–साथ वह अपनी सेवा भी आप मर कर करेगा। सबके अधिकतम् सुख के भीतर अधिकांश का अधिकतम् सुख भी मिला हुआ है और इसलिए अहिंसावादी और उपयोगितावादी अपने रास्ते पर कई बार मिलेंगे। किन्तु अंत में ऐसा भी अवसर आयेगा जब उन्हें अलग–अलग रास्ते पकड़ने होगें और किसी–किसी दषा में एक दूसरे का विरोध भी करना होगा। तर्कसंगत बने रहने के लिए उपयोगितावादी अपने को कभी बलि नहीं कर सकता।

अहिंसावादी हमेशा मिट जाने को तैयार रहेगा। यदि हम चाहते है कि हमारा सर्वोदय अर्थात सच्चे लोकतंत्र का सपना सच्चा साबित हो तो हम छोटे से छोटे भारतवासी को भारत का उतना ही शासक समझेंगे जितना देश के बड़े से बड़े आदमी को। इसके लिए शर्त यह है कि सब शुद्ध हो, या न हुए हो तो शुद्ध हो जाएं। और शुद्धता के साथ–साथ बुद्धिमानी भी होनी चाहिए। तब कोई भी अपने दिल में जाति–अजाति और सवर्ण–अवर्ण के बीच भेदभाव नहीं रखेगा। हर एक सबकों अपनी बराबरी का समझेगा और उन्हें प्रेम के रेषमी जाल में बांध रखेगा। कोई किसी हो अछूत नहीं मानेगा। हम मेंहनत करने वाले मजदूर और घनी पूँजीपति को समान समझेंगे। सबको अपने पसीने की कमाई से ईमानदारी की रोजी कमाना आता होगा और वे मानसिक और शारीरिक श्रम में कोई फर्क नहीं करेंगे। यह आदर्श स्थिति जल्दी लाने के लिए हम अपने आपको स्वेच्छाा से भंगी बना लेगे। जिस किसी में भी बुद्धि होगी वह कभी अफीम, शराब या किसी नषीली चीज को नहीं छुऐगा। प्रत्येक पुरुष स्वदेशी का पालन जीवन व्रत के रुप में करेगा और हर एक स्त्री को जो अपनी पत्नी नहीं है उसकी उम्र के हिसाब से अपनी माता, बहन या पुत्री समझेगा और अपने हृदय में उसके प्रति कभी काम वासना नहीं रखेगा। जब जरुरत पड़ेगी वह अपने प्राण देने को तैयार होगा मगर दूसरे की जान लेने की कभी इच्छा नहीं करेगा। ध्येय की सबसे स्पष्ट व्याख्या और कद्रदानी से भी हम उस ध्येक नहीं पहुँच सकेंगे अगर हमें उसे प्राप्त करने के साधन मालूम नहीं होंगे और हम उनका उपयोग नहीं करेंगे। इसलिए मुझे तो मुख्य चिन्ता साधनों की रक्षा और उनके अधिकाधिक उपयोग की है। गाँधी जी का मानना था कि अगर हम साधनों की चिन्ता रख सके तो ध्येय की प्राप्ति निष्चित है। में भी अनुभव करता हूँ कि ध्येय की ओर हमारी प्रगति ठीक उतनी ही होगी जितने हमारे साधन शुद्ध होंगें। दादा धर्माधिकारी तथा विनोबा भावे ने सर्वोदय के सन्दर्भ में अपने मत दिये है जो सर्वोदय को उच्च स्थान प्राप्त कराते है।

मित्रों का सम्मान करते हुए विनोबा भावे ने सर्वोदय को स्पष्ट करते हुए कहा कि भारत के गाँवों को स्वावलम्बी बन जाना चाहिए और उन्हें जहाँ तक संभव हो कीमतों के उतार–चढ़ाव से बचा लेना चाहिए। जरुरी कच्चा माल गाँव में ही पैदा होता हो तो उन्हें अपने ही गांव में अपनी जरुरत का पक्का

माल तैयार कर लेना चाहिए। यंत्रों पर सारे समाज का अधिकार होना चाहिए। उत्पादन और अंतिम वितरण के बीच में कोई दलाल नहीं होने चाहिए। अहिंसा के आधार पर खड़ा समाज बीच के दलालों के मारफत काम नहीं कर सकता। सबको खाना मिलना चाहिए और सबको काम करना चाहिए। राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था की योजना सम्मिलित परिवार के ढंग पर होनी चाहिए। अगर चरखे से सबको काम मिल सके तो उसे काम में लेना चाहिए। अगर आप सारे राष्ट्र के लिए योजना नहीं बना सकते और आपको भेदभाव करना ही पड़े तो उस सूरत में में अपने को साम्यवादी मानकर कहता हूँ कि अपनी योजना बनाने में अपको गरीबों के पक्ष में भेदभाव करना चाहिए संक्षेप में सर्वोदय की मेंरी रुपरेखा यही है।

18.2.1 सर्वोदय के स्रोत

सर्वोदय का सिद्धांत किसी एक ग्रंथ से नहीं लिया गया है बल्कि यह कई ग्रंथों का समन्वय है। विभिन्न स्रोतों ने गाँधीजी को उनके सर्वोदय के आशय को विकसित करने में सहयोग किया। ये थे– रस्किन की पुस्तक –अन टू द लास्ट, टालस्टाय की– द किंगडम ओर गाड विद इन यू, थोरो की सविनय अवज्ञा, भगवद्गीता, ईशावाश्योपनिषद, बुद्ध, जैन और इस्लाम इत्यादि।

18.2.2 रस्किन की अन टू दिस लास्ट –

गाँधीवादी दर्शन का सर्वोदय की खोज भारतीय अध्यात्म और धार्मिक विरासत की शिक्षाओं में की जा सकती है। यद्यपि गाँधी जी इस तथ्य को स्वीकारते हैं कि उन्हें तात्कालिक प्रेरणा रस्किन की अन टू दिस लास्ट से मिली, जिसमें सर्वोदय का अर्थ चित्रित था। सर्वजन कल्याण गाँधीजी के दर्शन का मूलाधार उसी दिन से बन गया जब उन्होंने गुजराती में छपे सर्वाधिक प्रसिद्ध 30 हजार शब्दों वाली पुस्तक हिंद स्वराज या इण्डियन होमरूल 1909 में लिखी।

गाँधीजी के अनुसार अन टू दिस लास्ट की मुख्य शिक्षाएं हैं –

(1) व्यक्ति की भलाई में सब की भलाई निहित है।

(2) एक वकील के कार्य का मूल्य एक नाई के कार्य के बराबर है। इसी प्रकार सब को अपने कार्यों द्वारा जीविकोपार्जन का अधिकार है।

(3) एक श्रमिक का जीवन जैसे खेत जोतने वाला और दस्तकारों का जीवन अन्य लोगों के जीवन की तरह ही है।

गाँधीजी ने स्वयं मत व्यक्त किया कि उन्होंने इसे बाद में सर्वोदय शीर्षक से गुजराती में अनुवाद किया। गाँधीजी और रस्किन दोनों ही गंभीरतापूर्वक सामाजिक जन कल्याण से संबंधित थे।

18.2.3 भगवद्गीता –

गाँधीजी ने अपनी प्राथमिक शक्ति और प्रेरणा भगवद्गीता से ही ग्रहण की। गाँधीजी के लिए गीता 'शाश्वत मां' है। उनके अनुसार गीता का सार आत्मानुभूति है। वह कहते हैं कि आत्मानुभूति और इसका अर्थ गीता की विषय वस्तु है। आगे वह कहते हैं जो गीता की भावना को जो पढ़ता है वह अहिंसा के रहस्य, व स्वयं को अनुभव करने का रहस्य–भौतिक शरीर के द्वारा करने की शिक्षा देती है।

गीता का मुख्य उद्देश्य धर्म की स्थापना करना है। यह सभी के लिए शांति और सौभाग्य लाना चाहता हैं यह संक्षिप्त रूप में हिन्दू विचारधारा को प्रस्तुत करता है जो बदले में, सभी प्राणियों के लिए भाई

चारे की बात करता है। जैसे कि ईश्वर और इसकी सभी रचनाएं एक हैं यह सभी स्वार्थहीन सेवाओं का, सभी जीवों के जन कल्याण को बढ़ावा देने की महत्ता को रेखांकित करता है। सर्वधर्म के द्वारा गीता का लक्ष्य –सर्वभूतहित' या सभी प्राणियों की भलाई भी है। इस प्रकार गीता सर्वजन कल्याण या सर्वोदय का उपदेश देती है जिससे गाँधीजी के विचार और क्रिया को प्रभावित किया।

18.2.4 ईशावास्योपनिषद –

ईशावास्योपनिषद का पहला श्लोक सर्वोदय की विचारधार से संबंधित है। छंद का पहला हिस्सा समानता और भ्रातृत्व को समाविष्ट करते हैं और दूसरा हिस्सा समाज के लिए त्याग, अ–ग्रहणशीलता, अशोषण के विचार पर आधारित है। गाँधीजी के अनुसार ईश्वर पूरे विश्व में व्याप्त हैं। यह श्लोक समानता और भ्रातृत्व का उपदेश देता है जो सर्वजन कल्याण के मौलिक, सिद्धांत है। वे जोर देते हैं कि –विश्व बंधुत्व केवल मानवीय प्राणियों का भ्रातृत्व नहीं है बल्कि यह सभी जीवित प्राणियों का है। में इस मंत्र को प्राप्त करता हूं।

18.2.5 बुद्धवाद

महात्मा बुद्ध के अनुसार सभी के जीवन से दुःखों को समाप्त करना होगा ताकि निर्वाण के परमानंद की प्राप्ति हो सके। यह उनके जीवन में यहां और वहां अनुभव किया जा सकता है। यह सभी प्राणियों के पूर्ण और निश्चित ज्ञान के लिए जाना जाता है। गाँधीजी बुद्ध के दर्शन से अत्यधिक प्रभावित और गहराई से प्रभावित हुए थे। जिसने विश्व प्रेम, जीवित प्राणियों के प्रति अहिंसा, त्याग और सन्यास को सभी के लिए जनकल्याण को बढ़ावा देने के लिए उपदेश दिया। बुद्ध ने पवित्रता पर जोर दिया। इस विचार ने गाँधीजी को प्रभावित किया, उन्होंने स्थिर भाव से कहा कि साधन और साध्य में गहरा सम्बन्ध होता है। बुद्ध ने मध्यम मार्ग का सन्देश दिया, इसी प्रकार सर्वोदय में, यह माना गया कि कोई भी चरम कदम नहीं उठा सकता है।

18.2.6 जैनवाद

जनकल्याण जैन धर्म का आदर्श है। पांच महाव्रतों में एक का निर्माण अहिंसा करता है। अहिंसा का सकारात्मक पक्ष सभी प्राणियों के लिए प्रेम है, न केवल मनुष्य बल्कि सभी के लिए। एक जैन तीर्थंकर का यह कर्तव्य हे कि वह अपना सम्पूर्ण जीवन पूरे ब्रह्माण्ड के जीवों की प्रसन्नता के लिए समर्पित कर दे।

संक्षेप में महात्मा गाँधी ने सर्वोदय को लेकर व्यापक रूप में अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है उनके अनुसार यही हम चाहते हैं कि हमारा सर्वोदय अर्थात सच्चे लोकतंत्र का सपना सच्चा साबित हो तो हम छोटे से छोटे भारतवासी को भारत का उतना ही शासक समझेंगे जितना देश के बड़े से बड़े आदमी को। इसके लिए शर्त यह है कि सब शुद्ध हों या न हुए हो तो शुद्ध हो जाए और शुद्धता के साथ–साथ बुद्धिमानी भी होनी चाहिए। तब कोई भी अपने दिल में जाति–पांति और सवर्ण–अवर्ण के बीच भेदभाव नहीं रखेगा। हर एक सबको अपनी बराबरी का समझेगा और उन्हें प्रेम के रेशमी जाल में बांध रखेगा। कोई किसी को अछूत नहीं मानेगा।

हम मेंहनत करने वाले मजदूर और धनी पूंजीपति को समान समझेंगे। सबको अपने पसीने की कमाई से ईमानदारी की रोजी कमाना आता होगा और वे मानसिक और शारीरिक श्रम में कोई फर्क नहीं करेंगे। यह आदर्श स्थिति जल्दी लाने के लिए हम अपने आप को स्वेच्छा से भंगी बना लेंगे। जिस किसी में

भी बुद्धि होगी वह कभी अफीम, शराब या किसी नशीली चीज को नहीं छुएगा। प्रत्येक पुरुष स्वदेशी का पालन जीवन व्रत के रूप में करेगा और हर एक स्त्री को जो अपनी पत्नी नहीं है उसकी उम्र के हिसाब से अपनी माता, बहन या पुत्री समझेगा और अपने हृदय में उसके प्रति कभी काम वासना नहीं रखेगा। जब जरूरत पड़ेगी वह अपने प्राण देने को तैयार रहेगा मगर दूसरे की जान लेने की कभी इच्छा नहीं करेगा, यही सर्वोदय का सर्वोच्च आदर्श जो व्यक्ति के जीवन को सुखमय बनाता है।

बोध प्रश्न –1

(1) सर्वोदय शब्द का अर्थ बताइए?

———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————

(2) विनोबा भावे के अनुसार सर्वोदय की व्याख्या करिए।

———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————

(3) दादा धर्माधिकारी के अनुसार सर्वोदय की व्याख्या करिए।

———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————

(4) सर्वोदय के स्रोत कौन–कौन से हैं?

———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————

(5) अन दू दिस लास्ट से गाँधी जी किस प्रकार प्रभावित हुए।

———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————————————————————
———————————————————

18.3 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत हमने सर्वोदय का अर्थ, उसकी उत्पत्ति तथा विभिन्न ग्रन्थों व विद्वानों द्वारा सर्वोदय के सन्दर्भ में दिये गये विचारों का अध्ययन किया है। सर्वप्रथम हमने सर्वोदय के उसकी उत्पत्ति का वर्णन किया तत्पश्चात, दादा धर्माधिकारी, बिनोवा भावे, गीता, जैन व बौद्ध धर्म, अन टू द लास्ट, इत्यादि के विचारों का विस्तृत अध्ययन किया है।

सर्वोदय भारत के प्राचीन आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की नींव पर आधारित एक नया समाज बनाना चाहता है और समकालीन समस्याओं की चुनौतियों को पूरा करने का प्रयास करता है। सर्वोदय सामाजिक और राजनीतिक अभिमुखीकरण के मुक्तिदाता का दर्शन है जहां पीड़ा है सर्वोदय उसका दमन करता है। यह मानवीय भावनात्मक एकीकरण और सर्वोच्च बौद्धिक आकांक्षा का चरमोत्कर्ष है।

18.4 शब्दावली –

(1) उद्धरण – ऊपर उठाना, उद्धार करना। लेख या ग्रंथ से गृहीत अंश।

(2) चकराना– चकित होना।

(3) जनाधिकार – जनता को कानून द्वारा प्राप्त अधिकार

(4) अल्प संख्यक– समाज में जिसकी भागीदारी संख्या में कम हो।

(5) जन कल्याण– सभी लोगों का हित/कल्याण।

18.5 उपयोगी पुस्तकें –

(1) विनोवा भावे– स्वराज शास्त्र, नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मंडल

(2) अनिल दत्त मिश्र– गाँधी एक अध्ययन

(3) यंग इंडिया – एम0के0 गाँधी

(4) हरिजन– एम0के0 गाँधी

(5) के0एम0 रघुनाथ चेट्टी– सर्वोदय एण्ड फ्रीडम ए गांधियन एप्रेजल डिस्कवरी पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली।

(6) बी0पी0 पाण्डेय– गाँधी सर्वोदय एण्ड आर्गेनाइजेशन, चुग पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

(7) जे0एन0 मोहंती– सर्वोदय एण्ड अरविंदो – ए एप्रोचमेंट, गाँधी मार्ग खण्ड–4

18.6 बोध प्रश्नों के उत्तर–

(1) सर्वोदय शब्द की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है जो सर्व यानी सभी और उदय यानी उत्थान से मिलकर बना है। जिसका अर्थ है सभी का उत्थान, सभी का कल्याण।

(2) आचार्य विनोवा भावे के अनुसार सर्वोदय शब्द दो स्तरीय अर्थ पर नियंत्रण रखता है, पहला सर्वोदय का अर्थ वैज्ञानिक ज्ञान से पीड़ा और गरीबी दूर कर सभी को प्रसन्न करना है। दूसरा देवत्व, दया और समानता से पूर्ण विश्व राज्य की स्थापना सर्वोदय कहलाता है।

(3) सर्वोदय की व्याख्या करते हुए दादा धर्माधिकारी ने कहा कि सर्वोदय एक वृहत संकेत वाला शब्द है और यह न केवल बहुतों या अधिकांशों का बल्कि सबों को आत्मसात करता है।

(4) सर्वोदय का स्रोत एक ग्रंथ नहीं है न तो एक विद्वान बल्कि इसमें कई ग्रन्थों का समन्वय है। विभिन्न स्रोतों ने गाँधी जी को उनके सर्वोदय से आशय को विकसित करने में सहयोग किया यह हैं– रस्किन की पुस्तक अन टू दिस लास्ट, टालस्टाय की – द किंगडम आफ गाड विद इन यू, थोरो की सविनय अवज्ञा, भगवद्गीता, ईशावास्योपनिषद, बुद्ध, जैन व इस्लाम हैं।

(5) अन टू दिस लास्ट की मुख्य शिक्षाएं जैसे व्यक्ति की भलाई में सब की भलाई निहित है, एक वकील और नाई का कार्य बराबर है तथा श्रमिक का जीवन अन्य जीवों की तरह है। यही सब सिद्धांत से गाँधी जी प्रभावित हुए थे।

.....000.....